॥ श्रीः ॥

❋ इन्द्रविजयः ❋

❋ भारतवर्षीयार्य्योपाख्यानम् ❋

समीक्षाचक्रवर्ति, विद्यावाचस्पति, महामहोपदेशक विद्वद्वर

स्व० पण्डित श्रीमधुसूदनशर्म्ममैथिल विरचितः ।

सोऽयम्

तदात्मजेन पण्डित श्रीप्रद्युम्नशर्म्मणा संपादितः ।

श्रीमान् धर्मरक्षक, न्यायपरायण, वीराग्रगण्य, रघुकुलभूषण, नरूवंशावतंस,

भारतधर्मसुधाकर, राजराजेश्वर, अलवरेन्द्र —महाराजाधिराज

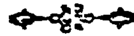
लैफ्टिनैन्ट कर्नल सर

सवाई श्री १०८ श्री तेजसिंहजी बहादुर

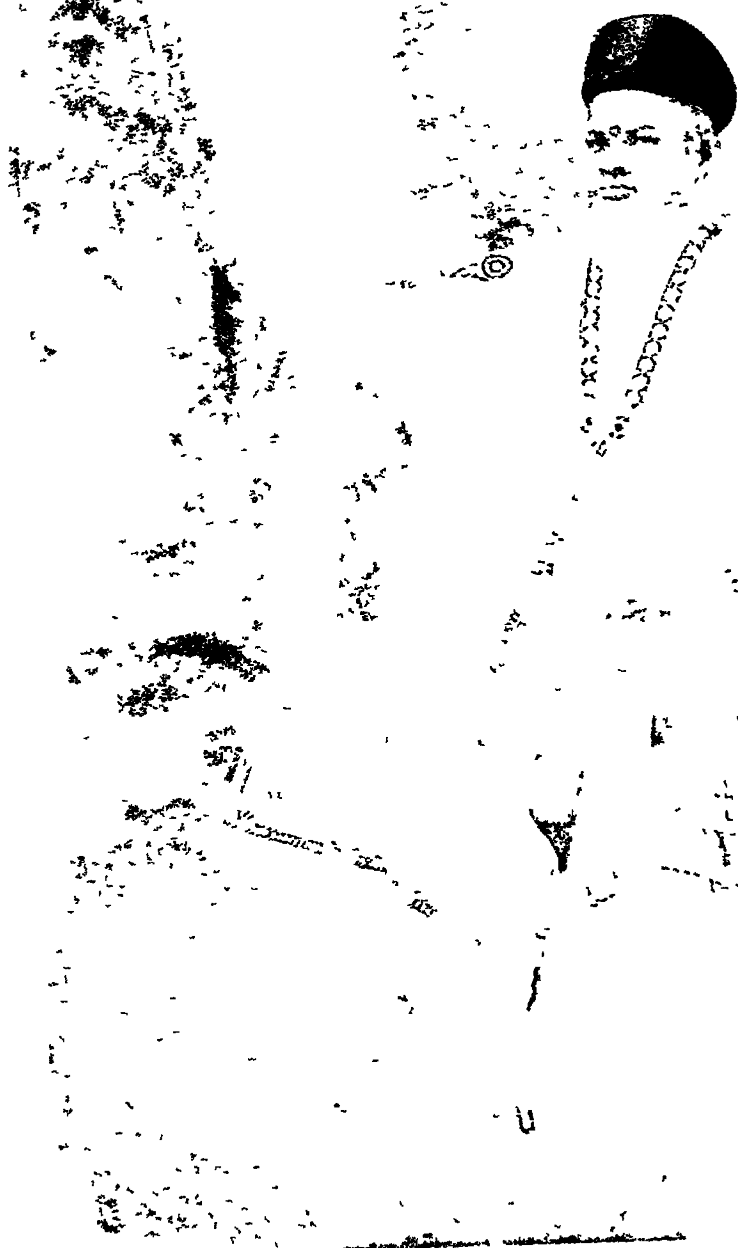
के० सी० एस० आई

सहाय्येन

मुद्रापयित्वा प्रकाशितः ।



द्वितीयावृत्तिः५०० } वि० सं० २००१ { मूल्यम् २



॥ श्रीः ॥

* निवेदन *



इस इन्द्रविजय का प्रथम संस्करण पूज्य पिताजी के समक्ष ही सन् १९३० ई० में लखनऊ के गङ्गा फाइन आर्ट प्रेस से पण्डित श्री आद्यादत्त जी ठाकुर एम-ए के निरीक्षण में प्रकाशित हुआ था। यह अभूतपूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ शिक्षित समाज को बहुत उपयोगी प्रतीत हुआ जिसके फलस्वरूप इसकी मांगे अधिक आने लगीं और इसका क्रमशः बड़ा प्रचार हुआ यहाँ तक कि यह संस्कृत कालेज के पाठ्य पुस्तकों में अध्ययनार्थ रखा गया जो यथावत् चल रहा है।

पूज्य पिताजी ने इस अलौकिक ग्रन्थ के मुद्रित होने के अनन्तर इसके कुछ मन्त्रों के अर्थ लिखकर उसका पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण कर दिया और कुछ स्थानों मे इसके विषय को भी थोड़ा बढ़ाया तथा हिरण्यगर्भ नामक एक मानचित्र भी बनाया जो सब कुछ इस द्वितीयावृत्ति मे दिये गये हैं।

यह हम पूर्व में कह आये हैं कि इस ग्रन्थ का उपयोगी सिद्ध होने के कारण बड़ा प्रसार हुआ और मांगें भी दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गई जिससे इस ग्रन्थ की प्रथमावृत्ति समाप्त होगई और द्वितयावृत्ति (2nd addition) के लिये हमे शीघ्र से शीघ्र प्रयत्नशील होना पड़ा।

यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत है किन्तु वह पाठकों के सुविधा के लिये अत्यन्त सरल लिखने का प्रयास किया गया है। इस ग्रन्थ को सार्वजनिक रूप से विशेष उपयोगी बनाने के लिये श्रीमान् १०८ श्री अलवरेन्द्र महाराज ने हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रकाशित करने की मुझे आज्ञा प्रदान की थी किन्तु कुछ दिनों से मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है, इस कारण मैं कुछ न कर सका और न तद्योग्य किसी विद्वान का समागम हुआ जिससे यह कार्य हो सकता। पं० श्री आशादत्तजी ठाकुर एम० ए० का स्वास्थ अनुकूल नहीं है अतः वे भी असमर्थ हैं। महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधरशर्म्मा चतुर्वेदीजी इस कार्य को भली प्रकार कर सकते हैं किन्तु वे अब वार्धक्यता के कारण कुछ स्थगित से रहते हैं तथा कार्य बाहुल्य से उन्हें [illegible] अति न्यूनता रहती है फिर भी उनने समय समय पर जितना कुछ [illegible]

तुसार शनैः इस कार्य को करना स्वीकार किया परन्तु उनसे यह कार्य निकट भविष्य में
ा असम्भव था। वर्ष दो वर्ष या कितना समय लग जाता इसका कोई निश्चय नहीं। अतः
: प्रकाशित करना परमावश्यक होने के कारण अब इसकी हिन्दी भाषानुवाद का इस
ाय प्रतीक्षा न कर "भूमिका" उन्हीं म० म० जी द्वारा हिन्दी भाषा
उद्धृत करा दिया है जिससे हिन्दी जानने वालों को इस ग्रन्थ के विषय
ा इसकी उपयोगिता का भली प्रकार दिग्दर्शन हो सके।

हमारे इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य के सम्पादन आदि कार्यों में जितनी सहायता म०म०
श्रीगिरिधरशर्म्माजी से मिल सकती थी उतना पूज्य पिताजी के अन्य किसी भी विद्यार्थियों
होना सम्भव नहीं था क्यों कि अन्य किसी को हमारे इस कार्य में विशेष रुचि नहीं
, एक स्वामी सुरजनदासजी एम० ए० कुछ समय से बड़ी अभिरुचि रखते हैं और वह
ापने सुविधानुसार मनोयोग देते हैं। म० म० जी पूज्य पिताजी के ग्रन्थों के विषयों
और शैलियों से इतने अभिज्ञ हैं जितना शायद ही कोई हो और उनकी सहानुभूति में भी
मी नहीं। वह मेरे इस कार्य से बड़े सन्तुष्ट रहते हैं साथ ही कैसे यह कार्य सुचारू रूप से
ीघ्र से शीघ्र सम्पन्न होजाय इसकी भी उन्हें बड़ी इच्छा रहती है परन्तु इतना होने पर
ी मुझे इस बात का खेद है कि वह अपने हार्दिक सहानुभूति को कार्यरूप में परिणत नहीं
रपाते। अभी तक उनकी इच्छा कुछ समय इस कार्य को करने की हो ही रही है और मुझे भी
ूर्ण आशा बनी हुई है; परन्तु इसके लिये हम कब तक सफल मनोरथ होंगे यह भविष्य
ी जाने।

यद्यपि हम श्रीमान् अलवरेन्द्र के आदेशानुसार इस ग्रन्थ का अनुवाद नहीं करा सके
किन्तु विद्यानुरागी श्रीमान् महाराज ने आवश्यक समझ कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित करादेने
की उदारता प्रदान की है। श्रीमान् इससे पूर्व भी १—यज्ञसरस्वती और २—छन्दोभ्यस्ता
ये दो ग्रन्थ प्रकाशित कराकर बड़ी सहायता कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त जब जब हम इस
महान् कार्य में हतोत्साह होने लगते हैं, श्रीमान् अलवरेन्द्र महाराज आर्थिक सहायता
देकर हमारे उत्साह को पुनर्जागृत करने की महान् कृपा करते हैं जिससे हमारा यह
कार्य स्थगित होने नहीं पाता।

श्रीमान् के उपरोक्त सहानुभूति के लिए हम बड़े कृतज्ञ हैं और भगवान से निरन्तर
शुभकामना सहित यही प्रार्थना करते रहते हैं कि श्रीमान् को सपरिवार सर्वदा सुखी रखें।

जयपुर।
ता० ७-१-५३

प्रद्युम्नशर्म्मा ओझा।

॥ श्री ॥

* भूमिका *

गुरुप्रवर श्रीश्री विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी ओझा ने जिन वेद-विषयक शताधिक ग्रन्थों की रचना की है, वे ग्रन्थ चार भागों मे विभक्त है—१—यज्ञ-२—विज्ञान-३-इतिहास ४—प्रकीर्णक। इनमें विज्ञान-विषयक ग्रन्थ सबसे अधिक हैं। इसलिये उसे प्रथम श्रेणी मे समझना चाहिये। प्रकीर्णक विषय मे वेदाङ्ग धर्मशास्त्र आदि अनेक विषयों का समावेश है। इनमे इतिहास-रचना दो प्रकार की है, एक स्वतन्त्र, दूसरी विज्ञान के प्रसङ्ग से। विज्ञान-प्रसङ्ग में जो इतिहास-ग्रन्थ हैं, उनका शीर्षक विज्ञानेतिवृत्तवाद नाम से उनने निश्चित किया है। विज्ञानेतिवृत्तवाद मे पॉच उपाख्यान है, उनमे तीसरा यह 'इन्द्र-विजय' है। इसका दूसरा नाम 'भारतवर्षीयार्योपाख्यान' भी है। यह ग्रन्थ ऐतिहासिकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है और इसका प्रसार भी देश मे बहुत हुआ है। श्रीमान् विद्यावाचस्पतिजी के जीवनकाल में ही यह ग्रन्थ मुद्रित हो गया था और उनने द्वितीय संस्करण के लिये इसमें कुछ परिवर्धन भी कर दिये थे। वह प्रथमावृत्ति समाप्त हो चुकी, अब यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित हो रही है। अधुना मैं संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ विद्याप्रेमी बान्धवों के अनुरोध से इस ग्रन्थ के विषयों का यहाँ संक्षिप्त परिचय हिन्दी भाषा में दे दिया जाता है।

ग्रन्थ के आरम्भ में तीन प्रकार की त्रिलोकी का निरूपण है, दिव्य, आन्तर और भौम। भौम त्रिलोकी मे भी पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिव नाम के तीन भाग हैं। दक्षिण समुद्र से हिमालय तक पृथ्वी लोक है। अल्ताई पहाड़ से उत्तर समुद्र तक दिव्य लोक है। हिमालय और अल्ताई पहाड़ के बीच का भाग अन्तरिक्ष है। इनके भी अधिपति अग्नि वायु और इन्द्र नाम से प्रसिद्ध थे। इस त्रिलोकी को आजकल 'एशिया' कहा जाता है। इनमें भी प्रत्येक के दो दो विभाग हैं। वर्तमान में इन देशों को क्या क्या कहते हैं इसका विवरण स्पष्ट दिया गया है और वैज्ञानिक युक्ति से यह सिद्ध किया है कि उत्तर समुद्र प्रान्त पहले इस प्रकार हिमाच्छन्न नहीं था। वहाँ भी निवास-देश थे। अब भी जो इन प्रान्तों के पुराने चिह्न मिलते हैं उनका विवरण भी यहाँ दिया गया है।

भौम और दिव्य दोनों त्रिलोकियों का प्रसङ्ग श्रुति-स्मृतियों में मिलता है। उनका विभाग समझने की युक्ति संक्षेप में बताई गई है और सप्रमाण यह स्पष्ट किया गया है कि स्वर्ग दो प्रकार का है, एक सूर्य्यमण्डल रूप द्युलोक स्वर्ग कहलाता है और दूसरा यह भौम स्वर्ग, इन दोनो में देवता भी दो प्रकार के हैं। सूर्य मण्डल प्राणरूप देवता है जो कि अमर वा नित्य हैं, किन्तु भू-स्वर्ग के निवासी देवता मनुष्यविशेष ही थे। हमारी अपेक्षा उनकी आयु अधिक होती थी, यह दूसरी बात है (ग्रन्थ के अन्त में दिखाया गया है कि यह भौम स्वर्ग संस्था वा भौम देव संस्था महाभारत युद्ध के अनन्तर नष्ट हो चुकी है। अब वह देश अनार्य्य जातियों का देश बन गया है।) आगे भारतवर्ष के चार नाम पुराण प्रसिद्ध बताये गये हैं और भारत नाम पड़ने के चार कारण विस्तार से निरूपित हैं। उनमें मन्त्रप्रमाणों से एक विशेष खोज है कि भरत नाम का अग्नि स्वर्गीय इन्द्र के द्वारा दूत रूप से नियुक्त होकर वहाँ रहता था। उसी के कारण इसका नाम भारत पड़ा। आगे कहा गया है कि हिन्दुस्तान शब्द से जो देश आज कहा जाता है वह भारत का एक छोटा अंश है। हिन्दुस्तान नाम का कारण ही जिन्दावस्ता के प्रमाण से निरूपित है।

आगे भारतवर्ष की सीमा बताते हुए पूर्व में फार्मोसा और पश्चिम में लाल समुद्र (Red sea) को भारतवर्ष की सीमा बताया गया है। इसी सीमाप्रसङ्ग के चौदह प्रमाण यहाँ विस्तार से उपस्थित किये हैं जो विशेष मनन के योग्य हैं। इसी प्रसङ्ग में इन्द्र और वरुण के महत्व के सम्बन्ध में ब्राह्मणों का परस्पर विवाद विस्तार से श्रुतियों में दिखाते हुए भारतवर्ष के सिन्धुस्थान (हिन्दुस्तान) और पारस्थान (फारस) नाम के दो विभाग होजाने का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें वैज्ञानिक इन्द्र, वरुण और मनुष्य शरीरधारी इन्द्र, वरुण दोनों का बड़ा विस्तृत विवेचन है और भिन्न भिन्न ऋषियों के सूक्तों का विस्पष्ट संग्रह है तथा भारतवर्ष के उपद्वीप जो पुराणों में बताये गये हैं, उनका भौगोलिक पता भी बड़ी खोज के साथ दिया गया है। यवन शब्द प्राचीन काल में यूनानियों के लिये प्रयुक्त होता था। इसका भी विस्पष्ट विवेचन है। त्रिपुरासुर की तीनों पुरियों का ऐतिहासिक रूप मे विवरण दिया गया है। यह प्रकरण बहुत ही विस्तृत और बहुत ही मननीय है।

इसके आगे जम्बू द्वीप के आठ उपद्वीपों का भौगोलिक पता दिया गया है। इसी प्रसङ्ग में, आजकल लोग (Cylon) सीलोन को लंका कहते हैं। इस भ्रान्त किंवदन्ति का बारह प्रमाणों से विस्तृत खण्डन किया गया है और इसके बहुत दक्षिण लङ्का द्वीप नाम का जो छोटा सा भूखण्ड अवशिष्ट है, वही मुख्य लंका थी। यह सिद्धान्त स्थिर किया है।

आगे भारत की भाषा लिपि, सभ्यता और धर्म का विस्तार से निरूपण है। प्राचीन (वैदिक) काल में लिपि नहीं थी, इस पाश्चात्यों के मत का आठ प्रमाणों से खण्डन है।

धर्म के प्रसङ्ग मे वर्णाश्रम धर्म का विवेचन बहुत ही रोचक और मननीय है। आगे भारतवर्षीय विद्याओं का प्रसङ्ग उठाकर बहुत विस्तृत विवेचन लिखा है और कई प्रकार से विद्याओं के ६४, ६४ विभाग सप्रमाण निरूपित हैं। इस प्रकरण के अध्ययन से किसी भी भारतीय का आत्मगौरव जागृत हो सकता है और किस किस प्रकार के विद्या और कलाओं के आविष्कार भारत मे थे, यह देख सुनकर विद्वानों को भी आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

वर्णभेद से विद्याओं का भेद भी इस प्रसंग में विशिष्ट रूप से निरूपित है। इस प्रसङ्ग को प्रत्येक भारतवासी को अपने आत्माभिमान के लिए और देश की भविष्योन्नति के लिये मननपूर्वक पढ़ना चाहिये। यहाँ भारत-परिचय नामके ग्रन्थ का पहला प्रकरण समाप्त होता है।

इसके आगे द्वितीय प्रकरण आर्यदासीय नाम का है। पाश्चात्य विद्वानों ने जो यह कल्पना बद्धमूल कर रखी है कि भारतीय आर्य्य बाहर से आकर भारत में रहे हैं और यहाँ के प्राचीनवासी अनार्यों को युद्धों मे परास्त कर उनने अपना प्रभुत्व यहाँ जमाया है, इस कल्पना का इस प्रकरण मे समूल उन्मूलन किया गया है। आरम्भ मे हिन्दुओं की सामान्य संस्कृति का दिग्दर्शन किया है। आगे पाश्चात्य विद्वानों के उन पांच प्रमाणों का [illegible] जिन्हें वे आर्यों के बाहर से आने में उपस्थित करते हैं। इनमें चार प्रमाणों का खंडन [illegible] पाचवाँ प्रमाण जो उनने दिया है कि वेदों मे जो देवासुर संग्राम वर्णित हैं वे [illegible] के ही संग्राम है इस प्रमाण का यहाँ विस्तृत खण्डन है और [illegible] प्रमाणों से सिद्ध [illegible] है कि इस ही पृथ्वीमण्डल पर देव, मनुष्य और देवविरोधी अदेव इन तीनों [illegible]। उनमें अदेवों के चार विभाग थे, दानव, दैत्य, दस्यु और पणि। इन अदेवों [illegible] देवताओं के पाँच प्रकार के संग्राम हुए थे जिनका वर्णन वेदमन्त्रों मे है। इनके [illegible] भिन्न निमित्त भी दिखाये गये हैं।

एक संग्राम गौओं के उद्देश्य से हुआ था। एक [illegible] के [illegible] भवन मे प्रतिष्ठापित सूर्य्य के निमित्त, एक सोम के निमित्त [illegible]। [illegible] भूमि-निमित्त का संग्राम बहुत प्रबल है और पाँचवाँ [illegible]। [illegible] भी आरम्भ मे लड़े थे। यह भी दिखाया गया है कि पुराणों में [illegible] निरूपित हैं, किन्तु वे इन्हीं के रूपान्तर भेद [illegible] [illegible] सदा ही आर्य्यों के साथ रहा, इनका आर्य्यों से कोई संग्राम [illegible]

सिद्ध नहीं होता। आगे अनार्य्यों के बहुत से अवान्तर प्रभेद और इनके देश विभाग भी विस्तार से बताये गये हैं और भारत की सीमा का यहाँ भी पुनः विस्तृत विवेचन है। भारत से बाहर के अनार्य्यों का आर्य्यों से कहीं कहीं संग्राम मन्त्रों में श्रुत हैं किन्तु भारतीय अनार्य भारतीय आर्य्यों से कहीं लड़े हो ऐसा वेद मन्त्रों में कहीं प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकरण में भारत के कुछ अद्भुत वैज्ञानिक शिल्प भी मन्त्र प्रमाणों से दिखाये गये हैं जिनमें ऋभुओं के शिल्प बहुत ही अद्भुत थे उनका विस्तार से निरूपण है और उन ऋभुओं को अद्भुत शिल्पों के कारण ही देवत्व प्राप्त होगया यह भी सिद्ध किया गया है। वैदेशिक विद्वानों की कल्पना को विध्वस्त करते हुए मन्त्रों में यह स्पष्ट दिखाया है कि जिस समय देवासुर संग्राम होरहे थे उस समय भारतवर्ष में सुदृढ़ राज्य-व्यवस्था चल रही थी और भारत के नरेश देवताओं की सहायता के लिये स्वर्ग में गये यह भी विस्पष्ट वर्णन है। तब ये युद्ध आर्य्यों और अनार्यों के थे, और उनके अनन्तर आर्य्यों ने भारत में प्रभुत्व जमाया इस कल्पना को स्थान ही नहीं मिलता। इस पाश्चात्य कल्पना के खण्डन में ही यह दूसरा प्रकरण समाप्त होगया है। इसका मनन करने से वैदिक इतिहासों का स्पष्ट तात्पर्य सबकी समझ में आसकता है।

इससे आगे विज्ञानभवन नाम का तीसरा प्रकरण है। इसके आदि में सिद्ध किया गया है कि वितस्ता और सिन्धु इन दोनों नदियों के बीच में एक सरस्वती नाम की नदी विख्यात थी और उसके तट पर ही एक सरस्वती नाम की पुरी भी थी। इन दोनों का ऋग्वेद के मन्त्रों में विस्तार से वर्णन आता है। इसी सरस्वतीपुरी में वसिष्ठ आदि ऋषियों ने एक विज्ञानभवन बनाया था और उसमें एक सूर्य्य स्थापित किया था। यहीं बैठकर ये ऋषि लोग तारा मण्डलों की वैज्ञानिक परीक्षा किया करते थे। किस प्रकार का यह भवन था? कैसा वहाँ सूर्य्य बनाया गया था? किस प्रकार वहाँ परीक्षाएँ होती थी? इन सब बातों का बड़ा अद्भुत निरूपण यहाँ है जिसे देखकर बड़े बड़े रिसर्च के विद्वानों को आश्चर्य में डूब जाना पड़ता है। आगे यह भी दिखाया गया है कि बहुत काल के अनन्तर इन्द्र इस सूर्य्य को स्वर्ग में ले गया और तब से स्वर्ग में (भू-स्वर्ग) सूर्य्य-भवन की प्रतिष्ठा की गई। यहीं तीसरा प्रकरण समाप्त हो जाता है।

इसके आगे चतुर्थ प्रकरण दस्युनिग्रह नाम का है। इसमें यह दिखाया गया है कि देवासुर संग्रामों के अनन्तर बहुत समय बाद भारतवर्ष के आर्य्यों पर दस्युओं का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण से कुत्स आदि कई राजाओं को बहुत हानि पहुँचाई गई और सिन्धु आदि नदियों का जल भी भारत में आने से रोका गया। पूर्वोक्त सूर्य्यस्थान (विज्ञानभवन) पर भी इन दस्युओं ने पुनः आक्रमण किया। तब खिन्न हो कर कुत्स आदि राजाओं ने स्वर्गाधिपति इन्द्र से रक्षा का निवेदन किया और बहुत विकल हो कर कुत्स स्वयं इन्द्र की नगरी

अमरावती में गये । इन्द्र स्वयं भी सूर्य्यस्थान (विज्ञानभवन) की रक्षा चाहते थे इस लिये स्वयं चढ़ाई कर इन राजाओं की रक्षार्थ आये और गान्धार देश से पश्चिम भाग में दस्युओं का हनन किया । इस प्रसङ्ग का वर्णन इस प्रकरण में विस्तार से किया गया है । इसका अधिकतर भाग इस प्रसङ्ग के वैदिक सूक्तों से ही परिपूरित है । इन्द्र कहाँ कहाँ ठहरे, कहाँ जाकर उनका कैम्प लगा; उनको भोजनादि प्रबन्ध किस प्रकार हुआ और किस किस तरह उनने युद्ध कर दस्युओं का संहार किया इत्यादि सब बातों का विस्तृत वर्णन इसमें है जो कि ऐतिहासिकों के बहुत काम की वस्तु है । जिन जिन देश, नदी, पर्वत आदि का नाम मन्त्रों में आया है, वे आज किस नाम से प्रसिद्ध हैं, यह भी भौगोलिक दृष्टि से युक्तिपूर्वक इसमें बताया है । इसीलिये भूगोल के विचार से भी इस प्रकरण का बहुत महत्त्व है ।

इस युद्ध के विजय के अनन्तर जहाँ जहाँ अभिनन्दनोत्सव हुए और उनमें भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न ऋषियों ने जो सूक्त इन्द्र के पढ़े उनका संग्रह विजयाभिनन्दन नामक पञ्चम प्रकरण में है । यह भी प्रकरण वैदिक सूक्तों से ही अधिकांश परिपूरित है । यद्यपि इन सूक्तों और मन्त्रों का वैज्ञानिक अर्थ भी है । यह प्रकरण में वही अर्थ अपेक्षित है । इन्हीं ग्रन्थकार ने अन्यान्य स्थान में इन मन्त्रों का वैज्ञानिक अर्थ लिखा है किन्तु [illegible] ने ही अन्यान्य ग्रन्थों में कई जगह यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि वैदिक मन्त्र [illegible] होते हैं । वे वैज्ञानिक अर्थों का प्रकाशन करते हुए ही ऐतिहासिक संकेत भी [illegible] हैं । इन्हीं ऐतिहासिक संकेतों के आधार पर यहाँ का यह संग्रह है । [illegible] ने सूर्य्यस्थान पर पुनः आक्रमण कर उस वैज्ञानिक सूर्य्य का अपहरण कर लिया और उसे सीरीया में लेजाकर 'बालबक' नाम के भवन में स्थापित किया इसका वर्णन है । इस प्रकार यह वैज्ञानिक सूर्य्य तीन स्थानों में रहा । उन तीनों स्थानों का पूरा पता दिया गया है । [illegible] भी बतलाया गया है कि इसके अनन्तर आर्य्यों ने पुन कश्मीर देश में सूर्य [illegible] जो स्थान आज भी मार्तण्ड (मटन) नाम से प्रसिद्ध है और उसका [illegible] वर्णित है । आगे यह रहस्यमय वर्णन है कि इतना उन्नत भारत देश [illegible] पराधीन क्यों हो गया उसका कुछ दैवकारण भी है, वह विस्पष्ट [illegible] केअनुकूल होने पर पुनः भारत वैसा ही उन्नत होगा इस सूचना [illegible] किया गया है ।

यह ग्रन्थ के विषयों का संक्षिप्त वर्णन है । इसमें प्रत्येक विषय [illegible] विस्तार से है यह स्थान स्थान में कह चुका हूँ । [illegible] करने से पुराणों का समन्वय भी इन विषयों में [illegible] की यह एक बहुत बड़ी सामग्री प्रस्तुत की गई है । [illegible] अनुवाद परमावश्यक है । जिससे इसकी उपयोगिता और भी [illegible] है ।

इस संबंध में विद्वानों का मतभेद है कि वेद में इतिहास है या नहीं। किन्तु इसका विस्तृत विवेचन मैं महर्षि कुल-वैभव की भूमिका में कर चुका हूँ, इसलिए यहाँ उसको पुनरावृत्ति करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। भारतवासियों के स्वरूप-परिचय और स्वाभिमान की जागृति के लिये इस ग्रंथ का अधिकाधिक प्रचार ईश्वर से वाञ्छनीय है, इति।

जयपुर
२५-१०-५२

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
महामहोपाध्याय, वाचस्पति,
आनरेरी संस्कृत-शिक्षा-संचालक
हिन्दूयूनिवर्सिटी, काशी,

॥ श्री ॥

समीक्षाचक्रवर्ति महामहोपदेशक विद्वद्वर्य पं० श्रीमधुसूदन विद्यावाचस्पति प्रणीते ब्रह्मविज्ञानशास्त्रे द्वादशवादग्रन्थाः

१—विज्ञानेतिवृत्तवादः
२—सदसद्वादः
३—रजोवाद
४—व्योमवादः
५—अपरवाद.
६—आवरणवाद
७—अम्भोवाद
८—अमृतमृत्युवाद
९—[illegible]
१०—[illegible]
११—[illegible]
१२—[illegible]

एषु प्रथमे विज्ञानेतिवृत्तवादे

पञ्चोपाख्यानानि

१—जगद्गुरुब्रह्मोपाख्यानम्
२—स्वर्गदैवतोपाख्यानम्
३—[illegible]
४—[illegible]
५—द्वादशविज्ञानोपाख्यानम् [partly illegible]

तेषु तृतीयो भारतवर्षीयार्योपाख्यानसन्दोहः

※ इन्द्रविजयः ※

* इन्द्रविजयः *



तत्र पञ्च प्रक्रमाः

—:**:—

अथेन्द्रविजयनाम्नि वैदिके ऐतिहासिके काव्ये पञ्चप्रक्रमाः । तद् यथा—भारतपरिचयप्रक्रमः । आर्य्यदासीयप्रक्रमः । विज्ञानभवनप्रक्रमः । दस्युनिग्रहप्रक्रमः । विजयाभिनन्दनप्रक्रमः—इति । तत्रादौ भारतपरिचयस्य विषयसूची प्रदर्श्यते—

भारतपरिचयप्रक्रमे ११ प्रसङ्गाः—

विषयाः पृष्ठः

इति भारतपरिचयस्य विषयसूची समाप्ता।



आर्यदासीयाख्यो द्वितीयः प्रक्रमः ।

———

विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः ।

विषयाः पृष्ठ

दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः।

विषयाः — पृष्ठः

विषयाः पृष्ठः



इन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चमः प्रक्रमः ।

॥ ग्रन्थसम्पूर्तिः ॥



❁ श्री ❁

॥ ॐ तत् सत् ॥

अथ इन्द्रविजयः

विज्ञानेतिवृत्तवादस्य पञ्चोपाख्यानस्य तृतीयोपाख्यानरूपं
भारतवर्षीयाख्योपाख्यानं आरभ्यते ।

भारतपरिचयोपक्रमे त्रैलोक्यप्रसंगः ॥ १ ॥

(१) दिव्यशारीरभौमभेदात् त्रैलोक्यं त्रिविधम्

देवयुगे त्रैलोक्यं त्रिविधमिदं ब्रह्मणाऽऽदिष्टम् ॥
अधिदैवतमध्यात्मं तत्साम्येनाधिभूतं च ॥ १ ॥

दिव्यत्रैलोक्यम् ।

तद्दिव्यं शारीरं भौमं चेति क्रमादुक्तम् ॥
अग्निर्वायुरिन्द्रश्चेति त्रैलोक्यमुच्यते दिव्यम् ॥ २ ॥
पृथ्वीयमग्निलोकः सूर्यो द्यौरिन्द्रलोकः सः ॥
अनयोर्मध्ये वायोर्लोकः स्यादन्तरिक्षमिदम् ॥ ३ ॥
एतेऽतिष्ठावानो देवास्तेषु त्रयश्चिरात् ॥
वसुरुद्रादित्याख्या द्वावन्यावश्विनौ चेति ॥ ४ ॥

शारीरत्रैलोक्यम् ।

गुदनाभ्यन्त पृथ्वीवोर्हृत्कण्ठान्तरन्तरे व्योम ॥
उदरमुरश्च शिरश्चेत्यथवा देहे त्रिलोकी स्यात् ॥ ५ ॥
उदरगुहाऽग्नेर्लोको लोको वायोरुरोगुहाऽध्यात्मम् ॥
लोकः शिरोगुहेन्द्रः सर्वे प्राणास्तदायत्ताः ॥ ६ ॥

	अ[illegible]लोक पृथ्वी १	वायुलोक अन्तरिक्षं २	[illegible] ३
अधिदैवम्	८ त्रिवृत (२१.तौम.) [illegible] ८।१६।२।१	१४ [illegible]	[illegible]
अध्यात्मं	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	उदरगुहा	[illegible]	[illegible]
अधिभूतं	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]

भौमत्रैलोक्यम् ।

एवं कृतमविभूतं भूमौ त्रैलोक्यमत्र देवयुगे ॥
अधिदैवतवत् तत्र च विहितानि हि नामरूपकर्माणि ॥ ७ ॥
मनुजास्तैर्य्यग्योना देवा भौमत्रिलोकीति ॥
वैवस्वतमनुविट्त्वं व्यवस्थितं त्वत्र मनुजत्वम् ॥ ८ ॥
मानुषलोकः पृथ्वी तैर्य्यग्योनोऽन्तरिक्ष स्यात् ॥
दैवो लोको द्यौरिति भौमं त्रैलोक्यमाख्यातम् ॥९॥
अधिपतिरग्निः पृथ्व्या वायुरधीशोऽन्तरिक्षस्य ॥
इन्द्रो दिवस्पतिश्चाध्यक्षाख्या दिव्यवत् कल्प्याः ॥१०॥
दक्षिणसमुद्रतोऽग्नेर्लोकोऽस्ति हिमालयं यावत् ॥
अलतायिगिरैन्द्रो लोकश्चोत्तरसमुद्रान्तः ॥११॥
यत्तु हिमाचलशैलादलतास्यचलान्त आन्तरो देशः ॥
वायोर्लोकः स इदं त्रैलोक्यं भूतले विद्यात् ॥१२॥
भारतमग्नेर्लोकोऽस्त्यैरावतवर्षमिन्द्रलोकोऽन्यः ॥
अनयोर्मध्ये मरुतां लोको देवाः स्थितास्तेषु ॥१३॥
उत्तरकुरवः कथिताः शृङ्गिगिरेरुत्तराः पुराणेषु ॥
नीलगिरेरुत्तरतस्तूक्तास्ते भारते भैष्मे ॥ १४ ॥

भौमत्रैलोक्यवासिषु औपचारिकाः शब्दव्यपदेशाः ।

भारतवर्षस्थानामासीत् क्लृप्तं मनुष्यदेवत्वम् ॥
उत्तरकुरुस्थितानां देवत्वं वा मरुत्त्वमन्येषाम् ॥ १५ ॥
अग्ने. प्रजा मनुष्या भारतवर्षे नियन्त्रिता मनुना ॥
ऐन्द्री प्रजा तु देवा उत्तरकुरुषु स्थिता अभवन् ॥ १६ ॥

प्राचीनत्रैलोक्ये एशियादेशेऽद्यापि त्रैलोक्यविभागाभासः ।

भौमं यत् त्रैलोक्यं तदिदानीमेशियानाम्ना ॥
ख्यातं, तत्र च देवासुरसन्ताना वसन्त्यद्य ॥ १७ ॥
अद्याप्येते देशास्त्रिधा विभक्ता प्रदृश्यन्ते ॥
ते च त्रयोऽपि लोका. प्रत्येकं स्युर्द्विधा भिन्नाः ॥ १८ ॥

हिन्दुस्तानं पारस्तानं चेत्यस्ति दक्षिणतः ॥
चीनस्तातारो वा मध्ये रूसो द्विधोत्तरतः ॥ १९ ॥

तातारस्य रूसदेशस्य च पुरायुगे भौमस्वर्गत्वम् ।

क्षुद्रैशियान्ततः प्राक् चीनात् प्रत्यक् तु विष्टप त्वाह्वन् ॥
रूक्करियादिपश्चिमरूसप्रान्तोऽत्र विष्टपं विष्णोः ॥ २० ॥
आसीद् विष्टपमन्द्रं प्रागूरूसः सायिबीर्याख्य. ॥
इत्थं प्रसिध्यति स्म त्रिविष्टपं स्वर्गलोकोऽसौ ॥ २१ ॥

सायिबीरियोत्तरीयकतिचिद्भागस्य समुद्रमग्नत्वम् ।

यावानद्य स रूसस्तावानखिलः पुराऽभवत् स्वर्ग ॥
अपराजिता दिगेषा यो देश सायिबीरिया नाम ॥ २२ ॥
इह सायिबीरियासौ यद्यप्यद्यास्त्यसभ्यजनताढ्या ॥
कृच्छ्रप्रधानभूमि' किन्त्वासीत् सा न चेदृशी पूर्वम् ॥ २३ ॥
इह सायिबीरियातो यदुदक्प्रान्ते समुद्रतटम् ॥
यश्च समुद्रप्रान्तो भूरितुषारावृतोऽद्यास्ति ॥ २४ ॥
न्यू सायिबीरिया या प्रसिध्यति म्लेच्छभाषायाम् ॥
तत्र पुराऽसीन्नगरं सोद्यान विबुधजनताढ्यम् ॥ २५ ॥
अपि वनमासीन्नानावृक्षचित पशुभिरावृतं बहुभि ॥
कालेन तत् तुषारप्रवर्षणाद् भ्रंशमायातम् ॥ २६ ॥
अतएव तत्र कूले समुद्रगर्भे कदा च लभ्यन्ते ॥
मेमाथनाम करिणां दन्ता बहुधाऽस्थिपञ्जरा अपि वा ॥ २७ ॥
सपादषड्ढस्तमित. स उच्च पादोनितैकादशहस्तदीर्घ ॥
सपादषड्ढस्तमितेन दन्तद्वयेन मेमाथकरी युतोऽभूत् ॥ २८ ॥
दन्तोस्य वक्रो महिषस्य शृङ्गवत् कृष्णानि लोमानि तनौ तस्य ॥
न चेदृश. सम्प्रति दृश्यते करी यथा स मेमाथकरी पुराऽभवत् ॥ २९ ॥
एकोदराश्च द्विशिरोधराः पुरा भेरुण्डनामान खगाभवन् तथा ॥
न चेदृशा संप्रति पक्षिण कचिद् दृश्यन्त आर्ये नु युगे तथाद्भुता ॥ ३० ॥
विज्ञायते तेन पुरा युगेऽभवद् वनं पशुनां निभिरानरान्वितं ॥
स्थाने जनानां च पुराणि भूयसा तत्रैव सन्ति स्म च तानि देवता ॥ ३१ ॥

स्वर्गत्रिविष्टपत्रयविध्वंसे दैवो हेतुः ।

नाकस्थविष्णोः परितस्तु वेद दृग् २४ व्यासार्धजे सञ्चरति ध्रुवं ध्रुवः ॥
वृत्ते ध्रुवस्तत्र तदा पुरा युगे प्राग्मेरुखस्वस्तिकगोऽभिजित्यभूत् ॥ ३२ ॥
ध्रुवाद् ध्रुवात्तादतिशय्य शैत्यं प्रवर्तते तेन तदा पुरात्वे ॥
प्राग् मेरुदेशे बहुशैत्यमासीत् नतूत्तराम्भोधितटप्रदेशे ॥ ३३ ॥
एवं ध्रुवो जनयते च तुषारवर्षं विभ्रंशयत्यपि पुरातनवासिलोकान् ॥
तौषारवर्षणवशादिव नाशमायन् प्राग् मेरुगाः क्वचिदुदक्कुरुभूमिखण्डाः ॥ ३४ ॥

विज्ञाने दिव्याया इवेतिहासे भौम्यास्त्रिलोक्या व्यवहारः ।

इत्थं त्रिलोकी त्रिविधा निरुक्ता दिव्या च भौमी च शरीरगा च ॥
त्रिभिरग्निभिः सा शवसोनपाद्भिर्धृता पृथग् देवनिकायपूर्णा ॥ १ ॥
विज्ञानभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसंग आयाति स दिव्य एव ॥
ऐतिह्यभाषासु यदि त्रिलोकीप्रसङ्ग आयाति स भौम एव ॥ २ ॥
दिव्यत्रिलोकीमनु दिव्यदेवा भौमत्रिलोकीमनु भौमदेवा ॥
ऐतिह्यमत्र प्रवदामि तस्माद् भौमा हि भाव्या इह लोकदेवाः ॥ ३ ॥
ब्रह्मा गुरुः शिक्षयतीह विद्यया शक्र प्रभुः शास्त्यनुगृह्य वा बलैः ॥
विष्णुः सुहृद् यज्ञजसंपदाऽवति त्रयोऽपि भौमा इतिहासगा इह ॥ ४ ॥
विज्ञानेऽस्ति यथैतेषु त्रिषु सर्व प्रतिष्ठितम् ॥
तथेह भौमस्वर्गेऽपि त्रिषु तेष्ववलम्बितम् ॥ ५ ॥

भारतवर्षस्य भौमत्रैलोक्यान्तर्गतपृथ्वीलोकत्वम् ।

❀ दिवमधिजगुर्बुधा यां पूर्वयुगे सा बभूव वसुधायाम् ॥
उत्तरमेरौ स्वर्गस्तत्र स वसति स्म देवतावर्ग ॥ १ ॥
दक्षिणतः प्राग् मेरोरिरावतीनिगमाद् गिरेस्तूदक् ॥
अयमन्तरिक्षलोको वसतिः सा देवयोनीनाम् ॥ २ ॥
देशो य उदग् विषुवत इरावतेर्निर्गमाद् गिरेस्त्वर्वाक् ॥
तदिदं भारतवर्षं पृथ्वीलोकस्त्रिलोक्यां सः ॥ ३ ॥
भारतवर्षं मानवदेशः शिखिराशिरविकुलजोऽत्र नरेशः ॥
धेनुभिरन्नधनैरपि धन्य स हि देशानामिह मूर्द्धन्य ॥ ४ ॥
यावान् मनुष्यलोकः सा पृथ्वी तच्च भारतं वर्षम् ॥
तत्र च मनुष्यशब्दः पृथ्वीपशब्दश्च लाक्षणिकः ॥ ५ ॥

इति भारतपरिचये त्रैलोक्यप्रसंगः समाप्तः ॥ १ ॥

❀ भरद्वाज उवाच—अस्माल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते ॥ तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १ ॥ भृगुरुवाच । उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते ॥ पुण्य क्षेम्यश्च यो देश. स परो लोक उच्यते ॥ २ ॥ स स्वर्गसदृशो देश तत्र युक्ताः शुभा गुणा काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च ॥ ३ ॥ भारत० शान्ति प० मोक्षधर्मे

नामधेयप्रसङ्गः ॥ २ ॥

भारतवर्षस्य चत्वारि नामानि ।

(४) (१)
यदिदं भारतवर्षं स्कान्दे तन्नाभिवर्षमप्युक्तम् ॥
(२) (३)
आर्षभवर्षं चान्यैर्हैमवतं वर्षमप्यन्ये ॥१॥
भरतस्यायं देशस्तस्माद् भारत इति प्रथितः ॥
भरतं त्वेतमनेकं स्मरन्ति पौराणिकाः सर्वे ॥२॥

(१) भारतशब्दव्यपदेशे मतचतुष्टये पौराणिकं प्रथमं मतम् ।

स्वायंभुवस्य हि मनोराग्नीध्रः सूनुरस्य नाभिस्तु ॥
नाभेर्ऋषभस्तस्माद् भरतस्तस्यैष देशोऽभूत् ॥३॥

१—"आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विज ॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः ॥४॥
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः" ॥५॥ (इति मार्कं० अ० ५०)

२—ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥
"भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्" ॥६॥ (इति ब्रह्माण्डे १ अ० २ अं० ३२ श्लो०)

३—"नाभेः पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद् भरतोऽभवत् ॥
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते" ॥७॥ (इति स्कान्दे माहे० कौमार ३७ अ०)

२—पौराणिकं द्वितीयं मतम् ।

विदुरपरे दौष्यन्तिर्भरतः शाकुन्तलेयो यः ॥
वीरः स सर्वदमनस्तन्नाम्ना देश एषोऽस्ति ॥१॥

१—"तंपुरोधाच्च दुष्यन्तो दुष्यन्ताद् भरतोऽभवत् ॥
शकुंतलायां तु बली यस्य नाम्ना तु भारता" ॥२॥ (अग्निपु० २७८)

एष जगद्विजयीति प्रथितो वेदे पुराणे च ॥
काण्डे त्रयोदशे सोऽश्वमेधकृच्छतपथश्रुत उक्तः ॥ २ ॥

२—' अष्टा सप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुना मनु ॥
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽवध्नात्पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥ ४ ॥
शकुन्तला नाडपित्त्यप्सरा भरतं दधे ॥
पुरा सहस्रानिन्द्रायाश्वान्मेध्यान् य आहरत् ॥
विजित्य पृथ्वीं सर्वाम् ॥ ५ ॥
महद्द्य भरतस्य न पूर्वं नापरं जनाः ॥
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः" ॥ ६ ॥ (शतपथे १३ कां०)
स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशततमेऽध्याये ॥ (१७२)
यत्वार्षभभरतस्याश्वमेधकर्तृत्वमित्थमाख्यातम् ॥ ७ ॥
तत इह भिन्नं मन्ये तमश्वमेधं यमाहरद् भरतः ॥
दौष्यन्तिः संख्याया भेदाद् वेदे पुराणे च ॥ ८ ॥

३—"भरतो नाम राजाऽऽसीदग्रोध्रः प्रथितः क्षितौ ॥
यस्येदं भारतं वर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते ॥ ९ ॥
षट्पञ्चाशदश्वमेधान् गङ्गामनु चकार यः (५६) ॥
त्रयस्त्रिंशद् यमुनाप्रान्ते (३०) भरतो लोकपूजितः" ॥ १० ॥
भरतस्यैताः कीर्तेर्गाथाः पूर्वैः पुरा गीताः ॥
भरतो हीमां पृथिवीं मनुष्यलोकं शशास चिरमेतम् ॥ ११ ॥
तन्नाम्नायं देशो भारत इति विश्रुतो लोके ॥
पौराणिकमतमेतत्सा भरताय प्रशस्तिचाटूक्तिः ॥ १२ ॥
भरतेनैते नैते न भारता इति किल श्रुता देशाः ॥
कुलमेव तेन भारतमस्योक्तं भारताख्याने ॥ १३ ॥

४—दुष्यन्तस्तु ततो राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा ॥
भरतं नामतः कृत्वा यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ १४ ॥
स राजा चक्रवर्त्यासीत् सार्वभौमः प्रतापवान् ॥
भरताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ॥ १५ ॥ (आदिप० अ० ७४)

(३) वैदिकमतानुसन्धानम् ।

१—ब्रूमो वयं तु पूर्वं देवयुगेऽप्यत्र मानुषे लोके ॥
अग्निर्भरतोऽधिपतिर्नियुक्त इन्द्रेण मनुरासीत् ॥ १ ॥

२—आसीद् व्यवस्थितं तु त्रैलोक्यं यत्र देवयुगे ॥
तत्र च भारतवर्षं पृथ्वीमाहुर्मनुष्यलोकः सं ॥ २ ॥

३—स्वर्गेश्वरो यथेन्द्रो यथान्तरिक्षेश्वरो वायुः ॥
पृथ्वीश्वरस्तथाऽग्निर्भरत इति ह्यस्य नामासीत् ॥३॥

४—देवेश्वरो यथेन्द्रो वायुरयं देवयोनीशः ॥
अग्निस्तथा मनुष्येश्वरो मतो भारतो नाम्ना ॥४॥

५—शवसोनपात एते दिवि मरुतो वायुरन्तरिक्षेऽस्मिन् ॥
भूमावग्निर्भारत एवं वरुणः समुद्रेऽप्सु ॥५॥

६—"दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ॥
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्मानिच्छन्तः शवसोनपात." ॥६॥ (ऋ० सं० १।१६१।१४)

७—ऋग्वेदस्य तुरीयकमण्डलसूक्ते हि पञ्चविंशतिके ॥ (४।२५।४)
भारत इत्याख्यातं नामाग्नेर्भूमनुष्यलोकपतेः ॥७॥

८—"तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यं सज्ज्योक् पश्यात्सूर्य्यमुच्चरन्तम् ॥
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्य्याय नृतमाय नृणाम्" ॥८॥ (४।२५।४)

९—अपि च यजुर्वेदस्याहुति चोक्तो दर्शपूर्णमासेष्टौ ॥
❀अपि सामिधेन्यकर्मणि उपमदनं भारतस्याग्नेः ॥९॥

१०—अग्ने महां असि ब्राह्मण भारतेति ॥
अस्मिन्निगदे मन्त्रे भरतोऽग्निः पठ्यते स देवेभ्यः ॥
हव्यं भरति स्मेति ब्राह्मणवाग् भारतं ततः प्रथितम् ॥१०॥

११—अग्निर्वै भरतः । स वै देवेभ्यो हव्यं भरति ॥ (इति कौषीतकीब्राह्मणम्)
एष हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद् भरतोऽग्निरित्याहुः ॥
एष उ वा इमाः प्रजाः प्राणो
भूत्वा बिभर्ति तस्माद्वेवाह—भारतेति—तस्माद्वेवाहुः भरतवदिति ॥११॥
(इति वाजसनेयब्राह्मणम्)

१२—वैवस्वतमनुभिन्नो मनुरग्निरयं मनुष्यलोकेशः ॥
भरतो नाम्ना तस्य च भवनानि त्रिषु समुद्रकूलेषु ॥ १ ॥

❀ अत्रापि शङ्को दर्शपूर्णमासेष्टौ प्रवरब्राह्मणेऽग्निर्निविदुपस्थानस्य [illegible] ॥ [illegible] दैव्यो होता देवान् यक्षद्विद्वांश्चिकित्वान् मनुष्वद् भरतवद्—इति—[illegible] प्रवरणे अग्निं प्रवृणीते ॥ अत्रापि दैविक आध्यात्मिको वा प्राणोऽग्निर्भरतः [illegible] तेन तादात्म्यविवक्षणाच्च मनुष्यलोकेश्वरस्य देवदूतस्याग्नेर्भरतत्वं भारतत्वं [illegible] च निवक्षापद्यादिष्यते ॥ उभयथा व्यवहारदर्शनात् ॥

विवस्वद्दूतत्वमस्याग्नेः श्रूयते ॥

१३—अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वा न काव्या ॥

भुवद्दूतो विवस्वतः ॥ (ऋ०सं० १० । २२ ।५)

१४—एतं भारतवर्षाधीश्वरमग्निं मनुष्यलोकपतिम् ॥

शवसोनपातमैन्द्रं महर्षयो वर्णयन्ति स्म ॥ २ ॥

१५—त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ॥

देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३ ॥ (६ । १६ । १११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः)

१६—यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ॥

तमागन्मत्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ४ ॥ (नाभाकः काण्वः । ८ । ३९ । ८)

१७—६ ।१५ । ८ । त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ॥

देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥ ५ ॥

१८—६ । १५ । ९ । विभूषयन्नग्न उभयां अनुव्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ॥

यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ६ ॥

१९—६ । १५ । १३ । अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वावेद जनिमा जातवेदाः ॥

देवानामुतया मर्त्यानां यजिष्ठः स प्रयजतामृता वा ॥ ७ ॥

२०—६ । १६ । १९ । अग्निरमामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ॥

दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ ८ ॥

२१—६ । १६ । ४५ । उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ॥

शोचा विभाह्यजर ॥ ९ ॥

२२—६ । १६ । ४ ॥ त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् ॥ ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ १० ॥

२३—इत्थं बहुधा बहवो महर्षयो भारतं वदन्त्यग्निम् ॥ तत्समयो भरतः स दिवोदासः स मान्धाता ॥ ११ ॥

२४—मत्स्यपुराणाध्याये चतुर्दशाधिकशतप्रमिते ॥ (११४) मनुसंबन्धाद् भारतमुक्तं स मनुस्तु लोकपालोऽग्निः ॥ १२ ॥

२५—"भरणात्प्रजनाच्चैष मनुर्भरत उच्यते ॥ एतन्निरुक्तवचनाद् वर्षं तद् भारतं स्मृतम् ॥ १३ ॥

२६—यत्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्य्यग्यामः प्रकीर्तितः ॥ य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः" ॥ १४ ॥

—:०:—

(४) लोकमतम् ।

भूमौ चेत्रीयाग्निः सस्यं भरते नरस्य देहेऽपि ।
अग्निर्विश्वजनानां भरणप्रवणां मतिं धत्ते ॥ १ ॥
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदा संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥ २ ॥
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥ ३ ॥ इति ॥
एता आशिष एव समपेक्षिता भारतीयानाम् ।
व्यवहारे मन्तव्या नीतिरियं भारतीयस्य ॥ ४ ॥
अन्नैर्धनैर्यतोऽयं देशस्तेषां परेषां च ।
इतरं भरति ततोऽयं देशो भारत इति प्रथितः ॥ ५ ॥

हिन्दुस्तानशब्दस्य भारतैकदेशमात्रव्यवस्था ।

हिन्दुपदेन च हिन्दुस्तानपदेन च यदाहुरद्यतनाः ।
भारतवर्ष तत् खलु नामाद्वैत्यास्य जानीयात् ॥ १ ॥
सिन्धुनदोऽयं यद्दिशि तद्दिश्यं भारतं पूर्व्यम् ।
सिन्धुस्थानपदेन व्यवजह्रु सिन्धुपश्चिमगा ॥ २ ॥
* अपि पारसीकजातेरस्ति दसातीरनामके ग्रन्थे ।
पौरस्त्य भारतार्थ हिन्दुपदं सर्वतः प्रथितम् ॥ ३ ॥
+ जरथुस्त्रस्य यदायतमस्त्यस्मिन् पञ्चषष्टितमम् (६५) ।
तत्र व्यासो हिन्दुस्तानादागत उदीरितो भङ्ग्या ॥ ४ ॥
व्यासो नाम ब्राह्मण आयातो हिन्ददेशाद् च ।
तत्सदृशो धीमानिह कश्चिन्नास्तीति तस्यार्थः ॥ ५ ॥

---

* 'वैव हिंद बाजगऽहे ।"
स पुन (स्थान) [illegible]
—"अकनू बिरहमने व्यास नाम [illegible]
की ६५ वीं आयत ।
एको ब्राह्मणो व्यासो नाम हिन्दुस्तानादागत [illegible]

=अपि सत्रिषष्टिशततम आयत उक्तं पुनस्तत्र ।
व्यासमुनेर्बाह्लीके गमनं गस्तास्पनृपसमये ॥ ६ ॥
स प्रेत्यभावविषये व्यासात् संवदितुमेव गस्तास्पः ।
जरथुस्तमाजुहाव च धर्माचार्यं स्वदेशस्थम् ॥ ७ ॥
गुप्ताश्वापभ्रंशो गस्तास्पः क्षितिप ईराने ।
व्यासात् स पुनर्जन्मनि संदेहं स्वं निराचक्रे ॥ ८ ॥
× गस्तास्पेन तु पृष्टस्तद्व्यवहारानुसारतो व्यासः ।
हिन्दुस्तानाभिजनं विज्ञपयामास चात्मानम् ॥ ९ ॥

इति भारतपरिचये नामधेयप्रसङ्गः समाप्तः ॥ २ ॥



=चूँ व्यास हिंदी बलख आमद । गस्तस्प जरतुस्तरा बखवाँद" । १६३ वीं आयत ।
यतो व्यासः सिन्धुस्थानीयो बाह्लीके आगतः । (ततः) गुप्ताश्वः (ईरानभूपः) जरथुस्तमाजुहाव ।
× "मनमरदे अम हिन्दी नजादे ।" अहमहं पुरुषः सिन्धुस्थानीयोऽनुज्ञातः ।

सीमाप्रसङ्गः ॥ ३ ॥

(१) पौरस्त्यपाश्चात्यभेदाद् भारतवर्षद्वैविध्ये चतुर्दशप्रमाणानि ॥ १४ ॥

पौरस्त्यं पाश्चात्यं भारतवर्षं द्विधाकृतं भवति ।
अनयोरिति विभाजक एष नदः सिन्धुरिति विद्यात् ॥ १ ॥
प्राच्यां दिशि तु समुद्रे यो देशः फारमोसाख्य ।
भारतवर्षस्यैषा सीमा पूर्वाऽऽस्ति पूर्वस्य ॥ २ ॥
यच्च वितूचिस्तानं ह्यपगानस्तानमद्य यद् ब्रुवते ।
ईरानदेश एवं मेसोपोटेमिया देशः ॥ ३ ॥
अर्वप्रान्ते यवनास्तत्पश्चाल्लोहिताम्भोधिः ।
एतावत्खलु पश्चिमभारतवर्षं विजानीयात् ॥ ४ ॥
चीनसमुद्रारब्धं रक्तसमुद्रान्तमिष्यते यदिदम् ।
भारतवर्षं तत्र च हेतव एते प्रदर्श्यन्ते ॥ ५ ॥

(२) तत्र पुरायुगीयाः सज्ञाशब्दविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

सिन्धोः पश्चिमतो यः प्रदेश आलोहिताम्भोधेः ॥ तस्य च सज्ञाशब्दाः प्रमाणमस्यार्य-
देशत्वे ॥ १ ॥

(३) सिन्धुस्थान-पारस्थानशब्दावन्योन्यसापेक्षौ प्रान्तवचनौ ।

अद्यत्वे यद् ब्रुवते भारतवर्षस्य सीमानम् ।
* सिन्धुनदं सा हिन्दुस्थानस्यैतस्य सीमा स्यात् ॥ १ ॥
पूर्व्यं भारतवर्षं सिन्धुस्थानाख्यया ब्रुवते ।
पश्चिमभारतवर्षं पारस्थानं पुरातना ऊचुः ॥ २ ॥
ईरानमात्रमद्य तु पारस्थानं ब्रवीति किन्त्वासीत् ।
निखिलं पारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोधेः ॥ ३ ॥

---

* यत्तु—आ हिमवत आ च कुमार्याः सिन्धुवैतरण्योर्नद्योः [illegible] पुः । [illegible] विचरति तावद् [illegible]—इति पैठ [illegible] शपरिच्छेदापेक्षमर्वाचीन न तु तत्पुरायुगीय भारतवर्षमवेदम् । [illegible] र्यावर्तदेशस्यापि धर्मसंबन्धेन परिच्छिन्नत्वात् ।

(४) पौरस्त्यभारते आर्य्यावर्तशब्दवत्पश्चिमभारते आर्य्यायणशब्दः ।

आर्य्यावर्तः शब्दो भवति यथा भारते पूर्व्ये ।
पाश्चात्येऽपि तथास्मिन् आर्य्यायण शब्द ईराने ॥ १ ॥

(५) पश्चिमभारतस्य ओरियंससंज्ञाऽप्यार्य्यवंशनिवासमूला ।

रक्तसमुद्रात्प्रागथ सिन्धुनदात् प्रत्यगर्णवात्तूदक् ।
आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणान् देशान् ॥ १ ॥
प्रागोरियंस [ORIENS.,] नाम्नाऽनार्य्याः पूर्वे वदन्ति स्म ।
तेन च पश्चिमभारतमार्य्यनिकेतनमिति प्रतीतं नः ॥ २ ॥

(६) मतान्तरेण ओरियंसशब्दाभिधानेऽन्यहेतूपन्यासः ।

ऋज्राश्वो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित् ।
जरथुस्त्रस्तस्याभूद्दौहित्रो ब्राह्मणद्वेषी ॥ ३ ॥
ब्राह्मणविद्वेषात् स हि तेषां ब्राह्मीं लिपिं त्यक्त्वा ।
विपरीतां तु खरोष्ठीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥ ४ ॥
ऐन्द्रं देवाराधनधर्म्मं त्यक्त्वा स वारुणं विद्वान् ।
असुराराधनधर्मं लोके वलवत् प्रचारयामास ॥ ५ ॥
विपरीताचरणात् ते मगा इति ख्यातिमायाताः ।
शाकद्वीपाभिजना मगा इमे ब्राह्मणा अभवन् ॥ ६ ॥
वाह्लीकानुप्रान्तः शाकद्वीपः प्रसिद्ध आसीत् प्राक् ।
शाकद्वीपाध्यक्षाः शका इति क्षत्रियाः प्रथिताः ॥ ७ ॥
ते म्लेच्छभाषयोक्ताः स्कीथीया स्कीदिया देशाः ।
शकबलदृप्तास्तु मगा युध्वा धर्मं प्रचारयामासुः ॥ ८ ॥
आर्ज्राश्वो जरथुस्त्रस्त्वसुरैरुक्तः स 'आरियस्प' इति ।
तन्मतधराश्च लोकास्तत्राम्नैवारियस्प नाम्नोक्ताः ॥ ९ ॥
एषां यावान् देशो युद्धजितस्तन्मतानुगतः ।
सोऽप्यारियस्प उक्तः कालेनाभूत् स ओरियंस इति ॥ १० ॥
इत्थं केचिद् ब्रुवते तथापि नैतावत प्रदेशस्य ।
आर्य्यक्षितिता हीयत ऋज्राश्वादेरिहार्य्यत्वात् ॥ ११ ॥

अश्वाश्ववंशजातैरार्य्यैर्धृत आसुरो धर्म्मः ।
तेन च पश्चिमभारतमार्य्यनिकेतनमिति ब्रूमः ॥ १२ ॥

(७) एरियाना शब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलः ।

प्रान्तोऽस्ति मार्गियाना तदधो हिन्दूकुशस्य दक्षिणतः ।
निर्गत्य पश्चिमां प्रागथोत्तरां या शरीफिशैलस्य ॥ १३ ॥
पश्चिमलग्ना वहते तामाहुर्वैदिका नदीं सरयूम् ।
तस्याः प्रान्तो दक्षिण उक्तोऽनार्यैः पुरैरियानेति ॥ १४ ॥

(८) इण्डिया—वामनियादिशब्दा अप्यार्य्यनिवासमूलाः ।

प्राच्यां तदेरियानाप्रान्तात्प्रत्यग्गिरेः सुलेमानात् ।
प्रान्तोऽयमिण्डियाख्य कथितोऽनार्य्यैः स आर्य्यवसतित्वात् ॥ १५ ॥
अत एव वेदमन्त्रश्चतुर्थमण्डलगते त्रिंशे ।
सूक्तेऽष्टादश आर्य्यौ सरयोः पारे समामनति ॥ १६ ॥
"उतत्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णा चित्ररथावधी." इति (४ । ३० । १८) ॥ १७ ॥

इति पुरायुगीया प्रादेशिकसंज्ञाविशेषाः प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

अवरयुगीयाः संज्ञाविशेषा द्वितीयं प्रमाणम् ॥ २ ॥

ओरियंसशब्दवत् पश्चिमे भारते पश्चात् खुरासानशब्दः ।

१—विश्वामित्र. पूर्वं राजासीत् कान्यकुब्जदेशस्य ।
स वसिष्ठस्य कदाचिद्धर्तुं गां नन्दिनीमैच्छत् ॥ १ ॥
सा नन्दिनी तु नैच्छत् तं विश्वामित्रमनुगन्तुम् ।
क्रोधात्सा बहुवारं खुरतो भूमिं तदा व्यखनत् ॥ २ ॥
तत्र वसिष्ठो वरुणादैच्छत् साहाय्यमात्मनस्तु ।
उक्तं वेदे सत्यं वरुणेन हि तद्वसिष्ठस्य ॥ ३ ॥
वाह्लीकदेशराजो वरुणोऽयं देवयुग आसीत् ।
पारस्यानाधीशः सप्तसमुद्रेश्वरोऽसुराधीशः ॥ ४ ॥

जग्मुर्वरुणाज्ञप्ताः पारस्थानाधिवासिपञ्चगणाः ।
पह्लव—पारद—यवनाः, शककाम्बोजौ परे च दरदाद्याः ॥ ५ ॥
नन्दिन्यास्तु खुरं ते मूर्द्धन्यादाय प्रणम्य तां भक्त्या ।
वैश्वामित्रं सैन्यं व्यमर्दयन्नञ्जसा निखिलम् ॥ ६ ॥
तदवधि ते किल कथिताः खुरधाः खुरदास्तथा कुर्दाः ।
तेषां जनपदसंघः खुर्ड़स्थानं खुरासानम् ॥ ७ ॥
मोगलसम्राड् बाबर आह खुरासानमात्मजीवन्याम् ।
अफगानाश्च बलूचिन एकेऽप्याप्याहुरेवमिव ॥ ८ ॥
भारतवर्षीया अपि चक्रुस्तावत्प्रदेशस्य ।
तच्छब्दव्यपदेशं यथोदितं शक्तिसंगमे तन्त्रे ॥
हिङ्गुपीठं समासाद्य मक्केशान्तं सुरेश्वरि ।
खुरासानाभिधो देशो म्लेच्छमार्गपरायणः ॥ इति ॥ १० ॥

पश्चिमभारते ईरानशब्दोऽप्यार्य्यनिवासमूलकः ।

२—एवं पुनरिदमखिलं जनपदवृन्दं च सिन्धुतः पश्चात् ।
भूमध्यसागरात् प्रागासीदीराननाम्नैकम् ॥ ११ ॥
ईरानव्यपदेशो त्वार्य्याय गतेरणत्वमरणत्वम् ।
मूलमथर्वणि तदरणमुक्तं त्वार्य्यद्विषां वासात् ॥ १२ ॥
आर्य्यद्वेषिजनानामरणानां वाह्लिका देशाः ।
अपि मूजवन्त एवं महावृषा वा विशिष्यासन् ॥ १३ ॥
अथवा कम्पनशीले प्रयुज्यते शब्द ईराणः ।
भीतानां चानियताभिजनानां देश ईराण ॥ १४ ॥
द्वादशकाण्डे प्रथमे सूक्तेऽष्टाविंशके मन्त्रे (अथ० १२ । १ २८).
आथर्वणे स शब्दः प्रयुक्त आन्दोलितेऽर्थेऽस्ति ॥ १५ ॥
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्म हि भूम्याम् ॥ १६ ॥ (अथ०१२ । १ २८)

पश्चिमभारते ओरियंसपारस्थानखुरासानादिशब्दानां शासनभेदेन भिन्नकाले प्रयोगाः ।

३—इत्थं पश्चिमभारतमुक्तं क्वचिदोरियंसनाम्ना प्राक् ।
पारस्थानं क्वचन क्वचन खुरासानमोरानम् ॥ १७ ॥

ईरानखुरासानपर्सियादिशब्दानां सह.देशव.चिनःपि कालभेदेन तत्प्रान्तान्तर.मिदापितम् ।

४—अद्य तु नैवं ब्रुवते नायं देशः समग्र एवोऽस्ति ।

प्रान्त. पारस्थानं प्रान्त इरानं खुरासानम् ॥ १८ ॥

राज्ञां शासनभेदाद् व्यवहर्तॄणां च भेदतोऽज्ञानात् ।

. प्रान्तं हिरातसंज्ञं केवलमाहु खुरासानम् ॥ १९ ॥

शासनभेदात् पश्चादफगानस्तानत' खुरासानम् ।

तत ईरानमिराको रोमकसामोऽथ पश्चिमाम्भोधि. ॥ २० ॥

अपि सीरियेति रोमकसानप्रान्त विदुस्तथेराकम् ।

कैलडिया चासुर्य्या मेसोपोटेमिया चेति ॥ २१ ॥

मिडिया नाम्नाऽप्यासीत् च खुरासानमन्वित' प्रान्त' ।

अद्यत्वे पर्य्यायानीरान पर्सियेत्याहु' ॥ २२ ॥

अपि चास्ति काश्यपीयनःसिन्धोरान्नेयत खुरासानम् ।

तद्दक्षिणत इराकं तद्दक्षिणतस्तु पारस्यम् ॥ २३ ॥

५—क्रान्तिप्रधान एषोऽस्त्याप्रुथिवी जन्मतो देश. ।

इह परचक्रक्रांतिवयाऽभवन्न हि तथाऽन्यत्र ॥ २४ ॥

तस्मादनेकसीमा नामविभागाश्च दृश्यन्ते ।

क्रुद्रैशियाप्रदेशादासिन्धोरस्य देशस्य ॥ २५ ॥

नियतसंज्ञाव्यवस्थापकभारतीयानां भुवनकोशशास्त्रे शासनमूलकनामभेदानामभावः ।

६—अस्तु तु यद्वा तद्वा शासनभेदात्तु देशभेदोऽयम् ।

न च तच्छास्त्रं वक्तुं शक्यं तस्यास्थिरत्वात् ॥ २६ ॥

तस्मादिह भूगोलग्रन्थो वैदेशिको निरताम् ।

शास्त्रं तथा यथेदं व्यवस्थितं भारत शास्त्रम् ॥ २७ ॥

शासनदेशविभागो नियतो न भवति हि नेन तद्भेदः ।

आर्य्या व्यवस्थितं प्राग् देशविभाग निसर्गेण कृत' ॥ २८ ॥

देशप्रकृति शास्ता न तु शास्तृप्रकृतिको देशः ।

अस्तु च शास्ताऽन्योऽन्यो दृश्यति देशो न शास्त्र प्रकृतेः ॥ २९ ॥

तस्मात् सिन्धो पश्चिमदेशोऽयं तु शास्त्रभेदेन ।

यद्यपि पृथगिव दृष्टो वस्तुत दृश्यते न भारत पदम् ॥ ३० ॥

इत्यपरपुराणीयाः संज्ञाविशेषा हिन्दीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

इन्द्रवरुणनिमित्तं ब्राह्मणानां वैज्ञानिकं वाग्युद्धं तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

भारतवर्षविभागद्वयहेतुर्ब्राह्मणानां प्राक् ।
वैज्ञानिकवाक्समरस्तृतीयमस्ति प्रमाणमिह ॥ ३१ ॥
आसुरधर्मे प्रविशतो जरथुस्त्रस्य देवेन्द्रनिन्दकत्वं विरोधहेतुः ॥
वाह्लीके यो जज्ञे जरथुस्त्रस्तस्य समये प्राक् ॥
सौत्रामण्यामिष्टौ ब्राह्मणवृन्दे विरोधोऽभूत् ॥ ३२ ॥
आर्त्राश्वो जरदष्टिर्ब्राह्मण आसीत् तथाप्ययं धृष्टः ।
विद्विष्य देवमिन्द्रं वरुणस्तुद् धर्ममासुरं दध्रे (१)
येऽसून् प्राणान् दधते तेऽमी असुरा महाप्राणाः ।
असुरत्वं तु न येषां तेऽमी देवाः "सुरा स्म" इत्यूचुः (२)

इन्द्रप्रियसोमप्रतिद्वंद्वितया वरुणेन सुरानिर्म्माणम् ।

असुरा विनाश्य सोमं जनयामासुस्तु वारुणीं मदिराम् ।
तां च सुरामिति जगदुः पीतामनुतां सुरान् पिबाम इति (३)
असुरवदेव त्वार्य्या अपि तां पातुं क्रमात्-क्रमन्ते स्म ।
अपि देवेन्द्रः सौत्रामण्यामिष्टौ सुरामपिबत् (४)
गुरुरसुराणामार्य्योऽनार्य्याणां यो न्युवास वाह्लीके ।
आर्य्यैः सुरा न पेया बुद्धिहरीत्युपदिदेश तान् स भृगुः (५)
"सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्" (६) (मनुस्मृतौ भृगुः)

आर्त्राश्वैरिन्द्राधिक्षेपः ।

इन्द्रस्याधिक्षेपं कर्त्तुमिवतेऽसुराः सुरायज्ञम् ।
सौत्रामणीं विधातुं वृषाकपिं प्रेरयामासुः ॥ ३३ ॥
एष वृषाकपिरासीदसुरेन्द्रः प्राक् प्रियः सखेन्द्रस्य ।
पुत्रत्वेन तमिन्द्रः प्रेम्णा ह स्मानुगृह्णाति ॥ ३४ ॥
वैकुण्ठस्य विकुण्ठागर्भोत्पन्नस्य दैवतेन्द्रस्य ।
नाम वृषाकपिरासीत् नामैक्यात सख्यमेतयोरभवत् ॥ ३५ ॥
देवेन्द्रः स वृषाकपिरसुरवृषाकपिकृते यज्ञे ।
सोमं पातुमिहागादिन्द्राण्या सह तु सञ्ज्ञयाभिधया ॥ ३६ ॥
एष वृषाकपिरसुरस्तेन सौत्रामणीयज्ञम् ।
तत्र सुरामपि सोमं देवेन्द्राय न्यवेदयत् पातुम् ॥ ३७ ॥

इन्द्रः पिबति सुरामिति पारस्थानाः प्रचक्रिरे निन्दाम् ।
सौत्रामण्यामिष्टौ घोरविरोधं प्रचक्रिरेऽनिन्द्राः ॥ ३८ ॥

मन्त्रेष्वनिन्द्रशब्दं पठन्त्याम्नातः पुरा वरुणम् ।
आराधयन्त एते नेन्द्रं देवं त्वमंसत हि ॥ ३९ ॥

इन्द्रः पिबति सुरामिति हन्त पिबामो वयं सोमम् ।
इत्युक्त्वा तेऽनिन्द्रा असुरा सोमं बलाद्धरन् ॥ ४० ॥

इन्द्रनिवेदितसोमं यज्ञादपहृत्य तं पातुम् ।
तत्र वृषाकपिमसुरं न्ययुङ्क्तासौ पपौ सोमम् ॥ ४१ ॥

सोमं तत्र पिबन्तं दृष्ट्वेन्द्राणी वृषाकपि पुत्रम् ।
क्रोधादपगतचेताः स्वामिनमेवोपधर्षयामास ॥ ४२ ॥

इन्द्राणीकृतः क्रोधः ।

हन्त न किन्तेऽन्यत्रोपलभ्यते पीतये सोमः ।
यदतिव्यथितो धावसि वृषाकपेरत्र यज्ञमिमम् ॥ ४३ ॥

किमनेनोपकृतं ते पुष्टमृगेणेति यस्मै त्वम् ।
वितरसि सोमसदृशं बहुमूल्यं धनमनुन[illegible] नमस्ते ॥ ४४ ॥

यस्त्वं प्रियमिव रक्षसि तं शूकरभक्षक श्वाऽद्य ।
कर्णेऽपि गृह्य भक्षतु मा जीवतु दुष्टजीवोऽयम् ॥ ४५ ॥

अहमस्मि वीरपत्नी वीरवती [illegible] ।
अवमनुतेऽयं धृष्टस्तदिदं [illegible] ॥ ४६ ॥

इत्थं वृषाकपे खल्वपराधान [illegible] तदेन्द्राय ।
क्रोधादधिक्षिपन्तीमिन्द्राणीं तामुवाचेन्द्रः ॥ ४७ ॥

इन्द्राणीं प्रति इन्द्रकृता परिसान्त्वना ।

एष वृषाकपिरीजे सोमं सोतुं [illegible] ।
अन्ये खलु रा नेदं मन्यन्त इति [illegible] ॥ ४८ ॥

अयि भद्रकेशपाशे न त्वपराध्यति [illegible] ।
किमभिक्रुध्यसि [illegible] ॥ ४९ ॥

न वृषाकपि [illegible] ।
इदमानुरक्तनोऽप्यं [illegible] ॥ ५० ॥

सोमं पातुम् [illegible] ।
एमि [illegible] ॥ ५१ ॥

इन्द्राणीं प्रति वृषाकपिकृता परिसान्त्वना ।

अथ च वृषाकपिरपि तामिन्द्राणीं प्रत्युवाच विनयेन ।
इन्द्राणि नित्यसुभगे जरया म्रियते न जातु ते दयितः ॥ ५२ ॥
पञ्चत्रिंशन्ममयानुक्षणः संप्रति पचन्ति शुक्तिकृते ।
यानहमद्मि स्थूलो याभ्यां कुक्षी उभौ पृणन्ति मम ॥ ५३ ॥
ऐन्द्रं सोमं पिबतो मम पुनरेतान् पशून् भक्ष्यान् ।
काचित्करं हविः प्रियमेष नवेन्द्रः स्वनन्त्रमश्नातु ॥ ५४ ॥
इन्द्रोऽयमसुरकन्यागर्भज एतस्य पत्नी च ।
अस्ति पुलोमासुरजा तत इन्द्रोऽश्नातु गोमांसम् ॥ ५५ ॥
अयमिन्द्रो विश्वस्मादुत्तर इति हि प्रतिज्ञातम् ।
इन्द्राण्यापीन्द्रेणापि वृषाकपिनाऽसुरेन्द्रेण ॥ ५६ ॥

एतदाख्यानस्य ऋग्वेदसंहितायामुल्लेखः ।

ऋग्वेदसंहितायां दशमे तन्मण्डले तदा सूक्ते (१० । ८६)
आख्यानमेतदुक्तं तन्मन्त्रा अत्र दृश्यन्ते ॥ ५७ ॥

इन्द्राणीक्रोधविषया वेदमन्त्रा यथा ।

(१) पराहीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्रविन्दस्यन्यत्र सोमपीतये ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । २) ॥ १ ॥

(२) किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसी दुन्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । ३) ॥ २ ॥

(३) यमिमं त्व वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुः ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. (१० । ८६ । ४) ॥ ३ ॥

(४) अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ (१० । ८६ । ६) ॥ ४ ॥

देवेन्द्रवृषाकपिकृत परिसान्त्वनामन्त्रा यथा

(१) वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । १) ॥ ५ ॥

(२) किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ १० । ८६ । ८) ॥ ६ ॥

(३) नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । १२) ॥ ७ ॥

(४) अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन् दासमार्य्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभिधीरमचाकशं ।
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः (१० । ८६ । १९) ॥ ८ ॥

असुरेन्द्रवृषाकपिकृत परिसान्त्वनामन्त्रा यथा ।

१—इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिः ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ (१० । ८६ । ११) ॥ ९ ॥

२—उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे ॥
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ (१० । ८६ । १४) १० ॥

देवेन्द्रासुरेन्द्रयोर्वृषाकप्योः सन्धिशान्तिः ।

अपिबत् सुरां सुरेन्द्रः स चासुरेन्द्रोऽपिबत् सोमम् ।
तत्रेन्द्रयोर्विवादोऽशाम्यत्कथमपि तयोर्नीरग ॥ ५८ ॥

क्रमशस्तत्रैव ब्राह्मणानां वैज्ञानिकविप्रतिपत्तिप्रारम्भः ॥

वरुणस्य राजधानीनगरेऽस्मिन् किन्तु वाह्लीके ।
यज्ञे समवेतानां विप्राणां विग्रहोऽत्यभवत् ॥ ५९ ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते सोमो रुद्रैर्नरुद्भिरिन्द्रोऽयम् ।
आदित्यैश्च वरुणो विश्वैर्देवैर्वृहस्पतिः क्रान्तः ॥ ६० ॥

अग्निर्वसुभिः क्रमते, रुद्रैरिन्द्रोऽथ वरुण आदित्यैः ।
सोमः पितृभिः क्रमते विश्वैर्देवैर्बृहस्पतिः क्रान्तः ॥ ६१ ॥
अग्निर्वसुभिः क्रमते वायू रुद्रैरथेन्द्र आदित्यैः ।
सोमः पितृभिर्वरुणस्त्वद्भिर्विश्वैर्बृहस्पतिर्देवैः ॥ ६२ ॥
इत्थं त्रयः प्रवादा अभवन् वैज्ञानिके समरे ।
असुराः प्रथमं पक्षं जगृहुस्तत्रोत्तमं त्वैन्द्राः ॥ ६३ ॥
❀ परमर्षयस्त्वपश्यन् न विसंवादावकाशमिह ।
शवसोनपात एते युञ्जन्त्यधिदैवतैस्तैस्तैः ॥ ६४ ॥
अग्निर्वायुश्चेन्द्रो रोदस्यां क्रन्दसी देवाः ।
सन्ति बृहस्पतिसोमौ वरुणः स्वस्तेऽधिदैवतैः सयुजः ॥ ६५ ॥
पूर्वेषामयमुत्तम एष बृहस्पतिरथेन्द्रस्तु ।
प्रथमोऽयमुत्तरेषामित्यृपिभिर्हि स्थितिर्दृष्टा ॥ ६६ ॥
इत्याह संयतीतोऽर्वाक् क्रमतो रोदसीदृष्ट्या ।
पृथ्वीक्रमतस्त्वग्निः प्रथमस्तुर्यो बृहस्पतिः सोऽस्ति ॥ ६७ ॥
अग्निश्च वायुसोमौ सहेन्द्रवरुणौ बृहस्पतिश्चान्ते ।
लोकचतुष्टयदेवा इत्थं क्रमसंनिविष्टास्ते ॥ ६८ ॥
अग्निर्वसुभिः प्रथमो विश्वैर्देवैर्बृहस्पतिः क्रमते ।
वायू रुद्रैः सोमो रुद्रैः पितृभिश्च संयुङ्क्ते ॥ ६९ ॥
आदित्यैरपि रुद्रैर्मरुद्भिरिन्द्रः सजूर्भवति ।
वरुणोऽद्भिश्चादित्यैर्युनक्ति नान्यैरिति ज्ञेयम् ॥ ७० ॥
इत्थं कृतसिद्धान्ते विज्ञाने निर्विवादेऽपि ।
अधिकृत्येन्द्रं वरुणं विप्रा विप्रोदिरे तत्र ॥ ७१ ॥

❀

	१	२	३	४	५	६
	अग्निः	वायुः	सोमः	वरुणः	इन्द्रः	बृहस्पतिः
	वसुभिः	रुद्रैः	रुद्रैः पितृभिः	आदित्यैः अद्भिः	आदित्यैः रुद्रैः मरुद्भिः	विश्वैर्देवैः
	पृथ्वी	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षम्	द्यौः	द्यौः	दिवःपृष्टम्
	१	२	२	३	३	४

असुरो वरुणो मान्यो न त्विन्द्रो देव इत्यन्ये ।
इन्द्रो देवो मान्यो नत्वसुरो वरुण इत्यन्ये ॥ ७२ ॥

जरदष्ट्यादय केचिन्नेन्द्रं देवममंसत ।
बृहद्दिवादयस्त्विन्द्रमाराध्यं निरधारयन् ॥ ७३ ॥

तत्र तावत्संक्षेपतो वरुणपरमासुरविज्ञानम् ।

वरुणोऽध्याहितमिन्द्रं पश्यन्तश्चक्षते त्वमी असुरा ।
वरुणो भवतु स्वाराडिन्द्रः सम्राट् तथा हि विज्ञानम् ॥ ७४ ॥

भूयस्य आप एताः कनीय एवात्र चेतना ज्योतिः ।
अप्स्वेव तु चैतन्यं बुध्यति वरुणः परस्ततो हीन्द्रात् ॥ ७५ ॥

भूतानि दैवतानि च जातान्यद्भ्योऽत एव ता आप ।
प्राणः प्रज्ञा चेन्द्रो भूतान्यालम्बते तानि ॥ ७६ ॥

देहेऽप्यधिका आपो लवणं चाधिकमिदं द्वयं वरुणः ।
प्राणः प्रज्ञाचेष्टावहः स इन्द्रोऽप्सु संश्रितो भाति ॥ ७७ ॥

अन्नमभुक्त्वा जीवति नापीत्वापस्तदाप एवात्मा ।
अन्नैरपीह भुक्तैस्तद्रस एवात्मनि ध्रियते ॥ ७८ ॥

परमेष्ठ्यपां समुद्रः प्रतिपत् तत्रानुचरवद् द्यौ ।
योऽसाविन्द्रो द्युस्थः स वारुणीस्वप्सु संश्रितस्तपति ॥ ७९ ॥

अथ प्रतिपादे संक्षेपत इन्द्रपरं दैवविज्ञानम् ।

१—इन्द्राध्याहितवरुणं पश्यन्तश्चक्षतेऽथ देवास्तु ।
इन्द्रः स्वाराड् वरुणः सम्राडेवं हि विज्ञानम् ॥ ८० ॥

भूयस्यो विश एता एकः स्वाराट् प्रशास्त्यधिष्ठाय ।
स्वाराड् विद्वन्नुवृद्धो विभवति तास्वेक उद्रिक्तः ।। ८१ ।।

		अग्निः	वायुः	इन्द्रः		बृहस्पतिः	सोमः	वरुणः	शवसोनपातः
प्रथममते	१	वसुभिः ८	०	मरुद्भिः ७		विश्वेदेवैः	रुद्रैः ११	आदित्यैः १२	आसुरमतेऽ-
मध्यममते	२	वसुभिः ८	०	रुद्रैः ११		विश्वेदेवैः	पितृभिः ८	आदित्यैः १२	धिदेवाः—
उत्तममते	३	वसुभिः ८	रुद्रैः ११	आदित्यैः १२		विश्वेदेवैः	पितृभिः ८	अद्भिः ४	ऐन्द्रमते ऽधि देवाः
		१	१	३		१	२	२	
	३	रोदसी—देवाः			३			क्रन्दसी देवाः	द्यावापृथिव्यौ

आत्मानः

३ द्यौः संयत्यां { द्यौः—अन्तर्य्यामी—अभ्वम् = २ कर्म्मरूपनामानि ।
अं०—सूत्रात्मा—सूत्रम् = २ ऋतं सत्यम् ।
पृ०—वाचस्पतिः—वेदाः = ३ ऋक्, साम, यजूंषि । }

❀

२ अं० क्रन्दस्यां { द्यौः—वरुण—आपः = ४ अम्भः मरीचिः मरः श्रद्धा ।
अं० सोमः—पितरः = ३ भृगवः अङ्गिरसः अथर्वाणः ।
पृ०—बृहस्पतिः—विश्वेदेवाः = २ }

❀

१ पृ० रोदस्याम् { द्यौः—इन्द्रः—आदित्याः = १२
अं०—वायुः—रुद्राः = ११
पृ०—अग्निः—वसवः = ८ }

हिरण्यगर्भमते

रोदस्याम् {
द्यौः { बृहस्पतिः — विश्वेदेवाः ।
इन्द्रः — आदित्याः—रुद्राः—मरुतः । }
अं० { वरुणः — आदित्याः—आपः ।
सोमः — रुद्राः—पितरः ।
वायुः — रुद्राः । }
पृ० { अग्निः — वसवः । }
}

२—आत्मेन्द्रो ह्यधितिष्ठति रक्षति वा दैवतानि ।
नश्यन्ति तानि सद्यो यदात्मना तानि हीयन्ते ॥ ८२ ॥
आपः शरीरमेतद्भोगाधिष्ठानमात्मनस्तदिन्द्रस्य ।
आलोम चानखाग्रं विसवत्यात्मा स देहेऽस्मिन् ॥ ८३ ॥
आत्मा शरीरयष्टिं धत्ते तेनोत्थितेऽत्र चेष्टान्ति ।
अथात्मना विहीनं निपतति सद्योऽथ पूयते च्यवति ॥ ८४ ॥
आप सोम. सोमं सुनक्ति हीन्द्र पिबन्ति तेनाप' ।
रोगा जलोदराद्या दृष्टा नात्मास्ति तेनाप ॥ ८५ ॥
३—अपि च भवन्ति द्यावाभूम्यस्तिस्रो मिथोऽनुगता ।
अर्वागहीयस्य परावरीयस्य आम्नाता ॥ ८६ ॥
प्रथमा तु रोदसीयं तदुपरि क्रन्दसी मध्या ।
तदुभयगर्भा सान्या या संयत्युत्तमा महती ॥ ८७ ॥
प्रतिपद् द्यौरथ भूम्योऽनुचरन्त्यन्तास्य बहव्य. स्यु. ।
एकैकस्यां द्यावाभूम्या द्यौरेकथैव स्यात् ॥ ८८ ॥
एकैकस्यां द्यावाभूम्यां ब्रह्मेन्द्रविष्णवो हृदये ।
सयुजोऽध्यक्षा कुर्वत एते विश्वानि कर्माणि ॥ ८९ ॥
रोदस्यामिह सूर्यो हिरण्यगर्भोऽस्ति स ब्रह्मा ॥
क्रन्दस्यां तु परमेष्ठी संयत्यां तु स्वयंभू स ॥ ९० ॥
त्रिविधं च वैश्वरूप्यं संयत्यां व्योमहृदयं परमम् ।
क्रन्दस्यां तु समुद्रो ब्रह्माण्डं रोदसीविषयम् ॥ ९१ ॥
इन्द्रोऽस्ति विश्वकर्मा व्योम्नि स वाचस्पतिस्तु वैकुण्ठ ।
वरुणस्तु विश्वकर्मा स समुद्रेऽपांपतिर्नभ्य ॥ ९२ ॥
ब्रह्माण्डविश्वकर्मा त्विन्द्र सोऽग्निर्[illegible] ।
वेदा आपोऽग्नय इति तेषामिह कर्मयोनयस्त्रिविधा ॥ ९३ ॥
४—पृष्ठे दिवस्तु वरुण समुद्रनाथे [illegible] ।
ऊर्ध्वं ततोऽस्य इन्द्रस्तपति [illegible] ॥ ९४ ॥
दिव्यादित्यस्त्विन्द्रो दिव्यादित्यं [illegible] ।
वरुणस्तत स भिन्न [illegible] ॥ ९५ ॥
दिव्यादित्यं त्विन्द्रं [illegible] ।
परमे व्योम्नि [illegible] ॥ ९६ ॥
५—वाग् वै स इन्द्रोऽस्ति [illegible] ।
अपां [illegible] ॥ ९७ ॥
६—परमं तु [illegible] ॥
[illegible] ॥ ९८ ॥

प्रति वैश्वरूप्यमिन्द्रो ब्रह्मा विष्णुर्नियम्यन्ते ।
वरुणस्तु पारमेष्ठ्ये सौरे वा वैश्वरूप्येऽस्ति ॥ ९९ ॥
इत्थं परावतीन्द्रो वरुणादर्वावतीन्द्र आभाति ।
अन्तर्बहिरुभयेन तु वरुणोऽनुगृहीत इन्द्रेण ॥ १०० ॥

७—तस्मादिन्द्रः स्वाराड् वरुणः सम्राडिदं हि विज्ञानम् ।
विज्ञानादनपेतो योऽर्थः स ब्राह्मणैर्ग्राह्यः ॥ १०१ ॥

अथेन्द्रपक्ष्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं देवेन्द्रमहत्त्वम् ।

[ब्राह्मणैरर्पितमिन्द्रमहत्त्वे स्वसंमतिरूपं स्वीकारपत्रम्)

(१) तत्र प्रक्रान्ते ब्राह्मणानां विचारयुद्धे प्रथमं तावत् काण्वो देवेन्द्रपक्षपाती स्ववर्ग्यानार्य्यानभ्यादिदेश ।

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं स चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ ८ । १ । १ ॥

(२) नृमेधा आह ।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत ।
धर्म्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ (८ । ९८ । १)

(३) हिरण्यस्तूप आह ।

सूर्य्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परिसर्गास आशवो नेन्द्राद् ऋते पवते धाम किञ्चन ॥ (९ । ६९ । ६)

(४) वामदेव आह ।

न किरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ (४ । ३० । १) ।
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भोजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ (४ । २९ । ५) ।

---

(१) विशंसत = वृथोच्चारयत । रिषण्यत = वृथोपक्षीणा भवत ॥ वृषणं = कामदम् । इत् = एव । स चा = सह । उक्था = स्तोत्रैः ॥

(२) धर्मकृते = संस्कारकर्त्रे । विपश्चिते = विवेचकबुद्धये । पनस्यवे = स्तुतिकामाय ॥

(३) द्रावयित्नवो; = द्रवणशीलाः । मत्सरास = मदकराः । प्रसुपः = स्वापयितारः । आशव. = आशुवानाः । सर्गास = सृज्यमानाः सोमाः रश्मयो वा । ततं विस्तृतं तन्तुं सूत्रं परितः सहैव प्रेरयन्ति ॥

(४) नकिः = नत्वेव । त्वोतासः = त्वया रक्षिताः । गृणन्तः = स्तुवन्तः । बृहद्दिवस्य = महाप्रकाशस्य । आकाय्यस्य = समन्तात् स्तुत्यस्य । रायो धनस्य । दावने = दाननिमित्ते । भोजानासः = भजमानाः स्याम । पुरुक्षोः = बह्वन्नस्य ॥

(५) रेणुर्वैश्वामित्र आह ।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ (१० । ८९ । १०)

(६) पूरणो वैश्वामित्र इन्द्रं संबोध्याह ।

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ (१० । १६० । २)

अथ स स्ववर्ग्येभ्य इन्द्रं प्रशंसति ।

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ (१० । १६० । ४)

(७) अथ गर्ग आह ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ (६ । ४७ । १३)
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ (६ । ४७ । १२)

अभ्यर्थनाभिरुत्तजितेन स्वयं देवेन्द्रेणासुरनिहननम् ।

तत्र विवादावसरे गर्गाहूत क्षणादुपस्थाय ।
इन्द्रोऽनिन्द्रानेतान् क्षिपन्नुवाच स्वयं धृष्ण्वन् ॥

---

(५) अपां = तरलानां । पर्वतानां = कठिनानां । वृधाम् = वृद्धानां । मेधिराणां = [illegible] । क्षेमे = प्राप्तस्य रक्षणे । योगे = अप्राप्तलाभाय प्रयोगे ॥

(६) सुताः = अभिषुताः सोमाः । सोत्वासः = अभिषोतव्याः । श्वात्र्याः = क्षिप्रं [illegible] । [illegible] आक्रोशन्ति । जुषाणः = सेवमानः । पाहि = पिब । अनुस्पष्टः = प्रकटः । [illegible] । दधाति = निर्दधाति । हन्ति = गृह्णाति । अनानुदिष्टः = अप्रार्थितः । ब्रह्मद्विषः = [illegible] ।

(७) स्ववान् = धनवान्, आत्मीयरक्षावान् वा । अस्मे = अस्माकम् । [illegible] । [illegible] अन्तर्हितो वा । आराच्चित् = दूरत एव । युयोतु = पृथक् करोतु । [illegible] प्रदः । विश्ववेदाः = सर्वधनः ।

(८) अभीदमेकमेको अस्मि निःषाड् अभिद्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरिं किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ (ऋ०सं०१०।४८।७)

❀

एवं क्रुध्यन्निन्द्रोऽभिव्लङ्गायाभिचक्रमे सद्यः ।
युद्धाभिशङ्कया प्राक् संनद्धामासुरीं सेनाम् ॥ १ ॥
क्षुद्रे युद्धे तस्मिन्निन्द्रभटा एकविंशतिर्निहताः ।
निहतास्तु यातुमत्यां तिस्रः पञ्चाशतोऽरिसेनायाम् ॥ २ ॥ (१५०)
येऽत्रानिन्द्रा आर्य्यास्तेषां दाहः प्रमीतानाम् ।
असुराणां मृतदेहा नादह्यन्त क्षितौ त्वधीयन्त ॥ ३ ॥
मृतदेहा असुराणां यत्र गृहे शेरते निहिताः ।
तद्गृहमर्मकमुक्तं वैलस्थानेऽर्मकाणि कल्प्यन्ते ॥ ४ ॥
आर्मीनियेति नाम्ना प्रथितं प्रान्तं तदर्मकं मन्ये ।
देवासुरसंग्रामे हतासुराणां श्मशानं तत् ॥ ५ ॥
असुरश्मशानभूमिं वैलस्थानाख्यया स्म ते ब्रुवते ।
राज्ञां महाश्मशानं तथैव कथितं महावैलम् ॥ ६ ॥
बहवोऽनिन्द्रा युद्धे निहता निहिताश्च ते महावैले ॥
एतच्च परुच्छेपो युद्धान्ते वर्णयामास ॥ ७ ॥

असुरपराभवान्ते परुच्छेप इन्द्रं महयति ।

(९) उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ॥
❀
अभिव्लंग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परितृळहा अशेरन् ॥ (१।१३३।१)

---

(८) अभि अस्मि = अभिभवामि । निः षाट् = निःशेषं घर्षयिता । खले यथा निष्पावजीर्णव्रीह्यादिस्तंम्बाननायासेन कर्षकः प्रतिहन्ति तद्वत् पर्षान् = परुषान् निष्ठुरान् बहूनपि शत्रून् प्रतिहन्मि ।
❀ अभिव्लङ्ग = अभियानम् = अभ्याक्रमणम् = चढ़ाई = हमला ॥
(९) ऋतेन = बलेन शत्रूणामपगमनेन । पुनामि = पावयामि लोकद्वयं शत्रुशून्यं भावयामि । अनिन्द्रा महीः संदहामि । परितृळहा = हिंसिताः ।
❀ अभिव्लंग्य = अभियाय = अभ्याक्रम्य = चढ़ाई = हमला करके ॥

(१०) अभिव्लंग्याचिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ॥
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ (१ । १३३ । २)

(११) अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम ॥
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ (१ । १३३ । ३)

÷
(१२) यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावप ॥
×
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ (१ म० १३३ सू० ४)

() + ❀
(१३) इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभि. ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुर ॥
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥५॥ (१ मं० १३१ सू० १)

अथ पुरुहन्मा आह ।

अत्यन्तं क्रुध्यन्तं तमिन्द्रमुपशान्तयंश्च पुरुहन्मा ।
अस्येन्द्रस्यात्मानं महयत्यधिदैवतं चेन्द्रम् ॥ १ ॥

(१४) यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्यु. ।
न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ (८ । ७० ५)

अथ श्रुतकक्ष आह ।

श्रुतकक्षोपि ब्रूते न त्वामतिरिच्यते कश्चित् ।
अर्हसि सोमं पातुं त्वमेव नेऽपोऽसुरोन्यो वा ॥ २ ॥

---

(१०) अद्रिवः = वैरिभक्षकः । यद्वा अद्रेर्मेघस्य विदारक हे इन्द्र । यातुमतीनां [illegible]
व्लङ्ग्याचित् = अभ्याक्रम्यैव छिन्धि चूर्णय । वटूरिणा [illegible]
वेष्टने । करच । (खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ) [illegible]

(११) यातुमतीनां = यातनासाधनशस्त्रवतीनाम् [illegible]
अर्मके = शवगृहे प्रक्षेपय ।
÷ कुचल दिये गये । × [illegible]

(१२) अभिव्लङ्गैः = हमलाकरवै । अपावप = [illegible]
तकत् अत्यल्पं ते कर्म भासते ।

(१३) द्यौरसुरः = दिविष्ठ सुरवर्गः । अनम्नत = [illegible]
द्युम्नसाती = अन्नस्य [illegible]
इन्द्रमेव प्रमुखं चक्रु । सर्वाणि च [illegible]

() शिर झुकाते रहते हैं । + नहराना । ❀ [illegible]

(१५) त्वे सुपुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः ।
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ (८ । ६२ । १४)

(१६) आत्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ (८ । ६२ । २२)

(१७) पराकात्ताच्चिद्रद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।
अरं गमाम ते वयम् ॥ (८ । ६२ । २७)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवाते राध्यंमनः ॥ (८ । ६२ । २८)

त्वयेदिन्द्रयुजा[1] वयं प्रति[3] ब्रुवीमहि स्पृधः[2] ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ (८ । ६२ । ३२)

अथ हैमवर्चिः प्राह ।

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा[4] कृतम् ।
तदेतत् सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणीसुते ॥ (१६ । ३१ यजुः सं०)

❀ सुरावन्तं वर्हिषदं सुवीरं[7] यज्ञं हिन्वन्ति[6] महिषा[5] नमोभिः[8] ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः[9] ॥ (१६ । ३२ । यजुः० सं०)

वरुणनप्तुर्बृहद्दिवस्य कालेन ब्रह्मनप्तृत्वम् ।

वरुणतनूजोऽथर्वा बृहद्दिवोऽथर्वणः पुत्रः ।
सोऽथर्वा, स बृहद्दिव, एतौ पद्मं विनिन्यतुर्दैवम् ॥ १ ॥

---

(१५) हे बलवत्पुत्र = बलजाता कामाभ्यर्थकाः कै शब्देक्तिन् । त्वे त्वयि सु अवृत्रन् अवृएवत ।

(१६) नद्यः समुद्रमिव सोमाः त्वाम् आविशन्तु । त्वत्तोऽधिकः सामर्थ्यवान्नास्ति ।

(१७) हे अद्रिवः वज्रवन् । पराकात्ताव चित् अतिदूरतोऽपि नक्षन्त = व्याप्नुवन्तु । अरं पर्याप्तम् ।

१–सहायकेन । २–स्पर्धमानान् । ३–निराकुर्वीमहि । ४–प्रजापतिना । ५–महान्त ऋत्विजः ।
(६) प्रापयन्ति । ७–शोभनर्त्विजम् । ८–अन्नैः । अर्कः = अन्नम्, देवः, मन्त्रः, भूतानि, वृक्षः ।

❀ सुरावान् वा एष वर्हिषद् यज्ञोयत् सौत्रामणी । इति श्रुतिः १२ । ८ । १ । २ ।
वर्हिषि सीदन्ति देवा यत्र तम् ।

ब्रह्मण एषोऽथर्वा बभूव कालेन मानसः पुत्रः ।
पुत्रत्वेन स मनसाऽनुभावितः कृत्रिमः पुत्रः ॥ २ ॥
अतएवैषोऽथर्वा तस्य च पुत्रो बृहद्दिवो नाम ।
बाल्हीके भागास्तां पश्चात् तौ पुष्करेऽस्थाताम् ॥ ३ ॥
ब्रह्मपुरं यत्पुष्करमद्य बुखारेति गद्यते यत्र ।
तत्रत्य इन्द्रमूचे बृहद्दिवोऽथर्वणः पुत्रः ॥

बृहद्दिव आथर्वण आह ।

१ २
तद्दिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः ।
३ ४ ६ ५
सद्योजज्ञानो निरिणाति शत्रूननु य विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ (१० । १२० । १)
७ ८ ९ १० ११
वा वृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
१२ १३ १४ १५ १६ १७
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ (१० । १२० । २)
१८ १९ २०
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदे मदे अनुमदन्ति विप्राः ।
२१ २२ २३ २४ २५ २६
ओजीयो धृष्णो स्थिरमातनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥ (१० । १२० । ४)
२७ २८
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
२९ ३० ३१ ३२
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ (१० । १२० । ५)

१–उद्गूर्णः । २–प्रदीप्तबलः । सूर्यात्मक इन्द्रः । ३–[illegible] । ४–[illegible] रीणविरेषणयोः । प्वादीनां ह्रस्वः । ५–भूतानि ये विश्व जनाः । तद्[illegible] । ६–[illegible] । ७–[illegible] । ८–बलेन । ९–बहुप्रबलः । १०–अण्वत्[illegible] । ११–[illegible] । १२–[illegible] । १३–चेतना चरः । १४–इन्द्रेण संस्नान [illegible] । १५–[illegible] । १६–[illegible] धृतानि पोषितानि सर्वाणि [illegible] । १७–[illegible] । १८–[illegible] । १९–[illegible] प्राप्नुवन्त त्वामनु । २०–[illegible] । २१–[illegible] । [illegible] । २२–[illegible] । २४–मा हिंसन्तु । २५–[illegible] । २६–दुर्गमा । २७ [illegible] । २८–[illegible] । २९–[illegible] प्रति प्रेरयामि । ३०–[illegible] निश्यामि [illegible] । ३१–[illegible] । ३२–[illegible] ।

३३ ३४ ३५ ३६
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ (१० । १२० । ८)

४३ ४३
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वा वचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
४४ ४५ ४६ ४७ ४८
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥ (१० । १२० । ९)

दीर्घतमा औतथ्यः, कुत्स आङ्गिरसश्च वरुणस्याग्नित्वमाहतुः ।

❀मैत्रमहस्तु निशीथान्मध्यदिनान्तं, ततो निशीथान्ता ।
रात्रिर्हि वारुणी सा मित्रावरुणौ तदादित्यौ ॥ १ ॥
ऐन्द्रमहश्चाग्नेयी रात्रिः प्रतिपद्यते तस्मात् ।
इन्द्रो मित्रादित्यो वरुणस्त्वग्निः स्थितोऽप्सु यो निहित. ॥ २ ॥
वरुणस्याग्नित्वाख्या तैत्तिरक ब्राह्मणस्य के सेके ॥ (१ । ७ । १)
अपि शतपथस्य मेखेलेख्ये (५ । २ । ३ । १२) दृष्टा च राजसूयविधौ ॥ ३ ॥
इह राजसूययज्ञे इन्द्रतुरीयः प्रचर्यते यागः ।
तत्राग्निवरुणरुद्रा इन्द्रात्पूर्व्यास्त्रयोऽग्निभागाः स्युः ॥ ४ ॥
पिण्डेऽग्निरग्निरुक्तो वरुणो नामाग्निरुच्यतेऽप्स्वन्तः ।
अग्निर्वायौ रुद्रो भूमिरसत्वात्त्रयोऽग्नयस्तेऽमी ॥ ५ ॥
निविडे तरले विरले ध्रुवे च धर्त्रे च धरुणे च ।
अग्निर्वरुणो रुद्रः प्रथते त्रेधाऽयमग्निरेकोऽपि ॥ ६ ॥
सोग्निर्भूमेश्चापामथान्तरिक्षस्य चाधिपतिः ।
इन्द्रस्त्वेप दिवस्पतिरिन्द्राग्नी रोदसीनाथौ ॥ ७ ॥

३३–स्तुति वाक्यानि । ३४–सुखं यथास्यात्तथा । ३५–प्रमुखेस्थितः । ३६–स्वर्गसंभक्तः यद्वाइन्द्रसंभक्तः सेवकः ३७–महतः । ३८–पर्वतस्य पाषाणस्य वावलासुरेण गोपिधानार्थं निहितस्य । ४०–स्वयं राजमानस्य । ३९–अपगमयति । ४१–विलद्वाराणि । ४२–स्वाश्च सर्वागाः अपावृणोत् । अपगतावरणा अकरोत् । उद्घाटितवान् । ४३–बृहद्दिवोऽथर्वा = अथर्वपुत्र स्वां तन्वं विस्तृतां स्तुतिम् । इन्द्रं प्रत्येव अवोचत् । ४४–स्वस सरन्त्यो नद्य. । ४५–भूमौ भवन्त्यः । भवतेर्वनिप् । यनोरच् । ४६–अपापाः । ४७–इन्द्रमुपगच्छन्ति । ४८–बलेन च वर्धयन्ति ।

❀ अधिदैवं–दैवमहः–आसुरी रात्रि । अध्यात्म- ऐन्द्रमहः आग्नेयी रात्रिः । अधिभूतं–मैत्रमहः वारुणी रात्रिः ।

तौ सत्तमौ वरिष्ठौ ओजिष्ठौ पारयिष्णुतमौ ।
सममेनयोर्महत्त्वं न तयोरवरः परो वा स्यात् ॥ ८ ॥
अग्निः स्थानविभेदाद्धत्ते नामानि भिन्नानि ।
सोऽस्ति सुपर्णः स यमः स मातरिश्वा स वरुणोऽयम् ॥ ९ ॥
इत्थं दीर्घतमा अपि कुत्सोऽप्याङ्गिरस ऊचतुस्तत्र ।
इन्द्रावरुणौ मित्रावरुणौ तौ रोदसीविपर्यौ ॥ १० ॥
"इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" ॥ (१ । १६४ । ४६)
"इन्द्रं मित्रं, वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्द्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसव सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन" ॥ १ । १०६ । १)

अथ वरुणपर्यैर्ब्राह्मणैरुद्घोषितं वरुणमहत्त्वम् ।
तत्र ब्राह्मणा ऋग्भिर्वरुणमहिमानं श्रावयन्ति स्म ।

इत्थं बहुभिरपीन्द्रः परमाराध्यस्तदा विनिर्णीत ।
किन्तु तदानीमपरे व्याचख्युर्वरुणमाराध्यम् ॥ ११ ॥
यावादित्यौ मित्रावरुणौ तत एष भिद्यते वरुणः ।
एष समुद्रस्येशो यद्गर्भोऽयं दिवस्पतिस्त्विन्द्रः ॥ १२ ॥
अत्रिस्तावद् वरुणं व्याचष्टे ब्राह्मणो देवम् ।
पञ्चममण्डलसूक्ते पञ्चाशीते त्वृचन्तादि ॥ १३ ॥ (५ । ८५)

१ २
प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्मप्रियं वरुणाय श्रुताय ।
३ ४ ५
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ (५ । ८५ । १)
६ ७ ८ ९ १० ११
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु, पय उस्रियासु ।
१२ १३ १४
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ (५ । ८५ । २)

१–प्रवृद्ध । २–[illegible] । ३–[illegible] । ४–[illegible] । ५–[illegible]
६–काष्ठेषु वृक्षकाण्डेषु, [illegible] । ७–[illegible] । ८–[illegible] ९–[illegible] १०–[illegible]
११–गोषु । १२–कर्मसंकल्पम् । १३–[illegible] । १४–[illegible] ।

१ २
नवीनवारं वरुणः कवन्धं प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
४ ३
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ (५ । ८५ । ३)
५ ६ ७ ८
उनत्ति भूमि पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
९ १० ११ १२
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्त श्रथयन्त वीराः ॥ (५ ८५ । ४)
१३ १४ १५
इमामूष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्रवोचम् ।
१६ १७ १८
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ (५ । ८५ । ५)
१९ २० २१ २२
इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य न किरा दधर्ष ।
२३ २४ २५ २६ २७
एकं यदुद्गा न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ (५ । ८५ । ६)
२८ २९ ३०
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ (५ । ८५ । ७)
३७ ३८ ३९ ४० ४१
कितवासो यद्रिरिपुर्न दिवि यद्वा घा सत्यमुतयन्न विद्म ।
४२ ४३ ४४
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ (५ । ८५)

१–अधोमुखम् । २–मेघमुदकं च । ३–प्रभूतम् । ४–सिञ्चति वपति वा कर्षकः । ५–अन्तरिक्षम् । ६–सहस्रमिताशु गोपुरसमूमधुरादिम् । ७–इच्छति । ८–अनन्तरमेव । ९–आच्छादिता भवन्ति । १०–बलमिच्छन्ति बलं लभन्ते । ११–श्लथान् कुर्वन्ति । १२–मरुतः शूरा वा । १३–असुरपतेर्देवस्य । १४–महतीम् । १५–प्रभावम् । १६–मानदण्डेन । १७–तिष्ठन् । १८–द्यावापृथिव्यन्तरम् । १९–प्रकृष्टप्रशस्य । २०–प्रज्ञाम् । २१–नैव । २२–हिनस्ति । २३–केवलम् । २४–उदकेन । २५–पूरयन्ति । २६–पूरयन्त्यः वहन्त्यः शुक्लाः । २७–नद्यः । २८–प्रदातारं गुरुं वा । २९–अनुरक्तम् । ३०–सर्वदैव । ३१–निकटनिकेतनम् । ३२–अनारमीयम् । ३३–यदेतत् । ३४–अपराधम् । ३५–अकुर्म । ३६–श्लथीकुरु । ३७–द्यूतकृतः । ३८–पापमारोपयन्ति । ३९–द्यूते । ४०–सत्यं वा मिथ्या वा । ४१–अज्ञातं वा । ४२–शिथिलानीव । ४३–विमोचय । ४४–अथ ।

अपरे ब्राह्मणा उभयोर्महिमानमभ्युपगच्छन्ति स्म ।

अत्र विवादे पश्चान्मध्यस्थाः केचिदाप्ताश्च ।
उभयोरेव महत्त्वं समानमास्थापयामासुः ॥ १ ॥
तपसो लोकाज्जाते ऋतसत्ये द्वे इमे नेत्रे ।
सा क्रन्दसी ऋतेन तु सत्येन तु रोदसी विधृता ॥ २ ॥
ऋतमित्यपां त्रयं स्यादापो वायुश्च सोमश्च ।
अग्नित्रयं तु सत्यं स्यादग्निर्वायुरादित्यः ॥ ३ ॥
ऋतमधिकुरुते वरुणः सोऽपां नाथः समुद्रनाथश्च ।
इन्द्रस्तु सत्यमीष्टे स वासवो वायुरादित्यः ॥ ४ ॥
न ऋताद् ऋतेऽग्नयस्ते सत्येनापश्च गर्भित्वं ।
नैकस्तयोर्विनाऽन्यं कदापि वा रूपमादध्यात् ॥ ५ ॥
उभयोरनयोरेकः कः प्रवरः कोऽवरः कश्च ।
इन्द्रात्प्रवरो वरुणो वरुणात्प्रवरः स इन्द्रोऽस्ति ॥ ६ ॥
काण्वः सुपर्ण एव स भरद्वाजश्च वामदेवश्च ।
इन्द्रावरुणौ स्वाराट् सम्राजौ तुल्यमस्तौषुः ॥ ७ ॥

सुपर्णः काण्वः ।

१ २
अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
३ ४
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती । (८।५९।४)
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् । (८।५९।६)
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः । (८।५९।७)

सुपर्णः काण्वः—१ सोमप्रदाय [illegible]
एकविंशत्या ।

भरद्वाजः ।

१ २
ता हि श्रेष्ठा देवताताुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ॥
३ ४ ५ ६ ७ ८
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ (६।६८।२)
९ ११ १० १२ १३
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वेदेवासो नरां स्वगूर्त्ताः ॥
१४ १५ १६ १७
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूत मुर्वी ॥ (६।६८।४)
२३ १९ २० १८ २३ २४ २१ २२
यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ॥
२८ २९ २७ २५ २६
अस्मे स इन्द्रावरुणावपिष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ (६।६८।६)
३० ३२ ३३ ३१
प्रसम्राजे बृहते मन्मनु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ॥
३४ ३५ ३६ ३८ ३७
अयं य उर्वी महिना महि व्रतः क्त्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥ (६।६८।९)

भारद्वाजः—१–देव तातौ देवविभागे तुजौ धनप्रयोक्तारौ २–बलवत्तरौ । ३–पूज्याना ४–दातृतमौ । ५–बहुबलौ । ६–सत्येन । ७–शत्रुनाशकौ । ८–सेनाध्यक्षौ । ९–स्त्रियः १०–पुमांसः । ११–यत् = यदा । १२–वर्धयन्ते । १३–मनुष्याणां स्वयमुद्यताः प्रवर्त्तकाः । १४–सर्वेभ्यः स्तोतृभ्यः । १६–प्रभूत प्रभवतम् । १५–महत्वयुक्तौ । १७–विस्तीर्णौ । १८–देवौ इन्द्रावरुणौ । १९–युवा । २०–दत्तहविष्काय । २१–धनयुक्तं । २२–बह्वन्नं पूर्णं शक वा । २३–यादृशंधनं । २४–प्रयच्छथः । २५–शत्रुणाम् । २६–अकीर्तीः । २७–प्ररुजति । जलन पैदा करता है। २८–अस्मभ्यम् । २९–अपिस्यात् । ३०–वरुणाय । ३१–सर्वतः पृथुः । ३२–स्तोत्रम् । ३३–प्रेच्चारयः । ३४–महिम्ना ३५–महाकर्मा । ३६–प्रज्ञया । ३७–तेजसा । ३८–प्रौढः ।

३६ ४०

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ॥

४१ ४५ ४२ ४४ ४३

युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥ (६।६८।१०)

पक्षत्रयवतां ब्राह्मणानां विज्ञानविरोधे विचारसमतिः ।

१—इन्द्रस्य पक्षे कतिचिद्बभूवुर्बभूवुरन्ये वरुणस्य पक्षे ।
परे बभूवुर्द्विसमत्वपक्षे मिथस्त्रिपक्ष्या ऋषयः समृद्धाः ॥ १ ॥

ततः इन्द्रपक्ष्याणां ब्राह्मणानां विचारसमितौ इन्द्राय पुनःसोमाभिषवार्थं हिरण्यगर्भनियोगः ।

अथेन्द्रपक्ष्या ऋषयोऽत्र सर्वे पुनर्विचाराय पृथक् समीयुः ।
विशिष्य कण्वा अपरेऽपि केचिद् बृहद्दिवाद्या व्यदधुर्विमर्शम् ॥ २ ॥
सोमं सुरेन्द्र एवार्हति पातुं नासुरेन्द्रोऽपि ।
हन्तेन्द्राय सुतोऽयं सोमः पीतोऽनयाद् प्रपावपिना ॥ ३ ॥
तस्मादिह पुनरन्यः सोमः सोतव्य इन्द्राय ।
इति निर्धार्य विधातुं हविषा प्रोचुर्हिरण्यगर्भमृषिम् ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भेणेन्द्राय हविर्विधानप्रत्याख्यानम् ।

एष तु हिरण्यगर्भो मार्गं वैज्ञानिकं परं जगृहे ।
इन्द्राद्वा वरुणाद्वा हिरण्यगर्भं निष्पद्यत प्रवरम् ॥ ५ ॥
वज्री च पाशी च परश्च देवो हिरण्यगर्भस्य [illegible] ।
हिरण्यगर्भं प्रथमं विदन्तं कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
यदेतदण्डं समभूत् [illegible] ।
आपोमयत्वाद् [illegible] ॥ ७ ॥

३६—सोमपातारौ । ४१—[illegible] । [illegible]
प.नार्थम् । ४४—[illegible] । [illegible]

हिरण्मयं त्वण्डमिदं समस्तं यस्यास्ति गर्भं परमस्य पुंसः ।
हिरण्यगर्भं तमनुव्रजन्तः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥
अपां पतिः स वरुणस्त्रीन् भृगूनधितिष्ठति ।
असुराणां पतिर्लोकं चतुर्थं चाधितिष्ठति ॥९॥
मरुतां पतिरिन्द्रोऽधितिष्ठत्यङ्गिरसां त्रयम् ।
देवानां स पतिर्लोकं चाधितिष्ठत्यमूं दिवम् ॥१०॥
देवो हीन्द्रः शास्ति सुरान् देवः स वरुणोऽसुरान् ।
नैवावरो न प्रवरोऽनयोरेकोऽपि कल्पते ॥११॥
हिरण्यगर्भस्तु परः सर्वतः प्रवरो मतः ।
य एष चतुरो लोकानेक एवाधितिष्ठति ॥१२॥
अप्सु वीर्य्यं क्षिपन्नग्निरमृतोऽद्भिः स संभवन् ॥
हिरण्यं जनयत्येष सोऽमृतोऽग्निर्हिरण्मयः ॥१३॥
त्रिषु लोकेषु पर्य्याप्तश्चतुर्थेऽप्युपपद्यते ॥
प्रजापतिस्त्रिलोकीस्थाः परिचरन्ति तम् ॥१४॥
इत्थं हिरण्यगर्भेण कल्पितात्मा महानृषिः ॥
हिरण्यगर्भ उत्थाय स्वं विज्ञानमदर्शयन् ॥१५॥

हिरण्यगर्भः प्राजापत्यो विश्वामित्रपौत्रः ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।१)
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ॥
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।२)
यः प्राणतो निमिषतो महि त्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ॥
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।३)
यस्येमे हिमवन्तो महित्वायस्य समुद्रं रसया सहाहुः ॥
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।४)
येन द्यौरुग्राः पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ॥
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।५)

यङ्क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ॥
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।६)
आपोह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ॥
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।७)
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं जनयन्तीर्यज्ञम् ॥
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।८)
मानो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ॥
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (१०।१२१।९)
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ॥
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ (१०।१२१।१०)

हिरण्यगर्भतात्पर्यविषये विज्ञानम् ।

हिरण्यगर्भो वरुणेन्द्रपृथ्वीचन्द्रैकवलशार्मधितिप्नोति ।
प्रजापतिं तं परम विदन्तः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
प्रजापतेः प्राण उदेति भूतान्यद्भ्यः समुद्राद्वरुणाद् भवन्ति ।
प्रज्ञेन्द्र इत्याहुरथाग्निसीमारब्धाखिमात्रा इदमस्ति विश्वम् ॥ २ ॥

प्रज्ञा प्राणो भूतान्येषां मात्राभिराचितं विश्वम् ।
ज्ञानं क्रियाऽर्थ एतद्व्यतिरिक्तं न कचित् किञ्चित् ॥३॥
इन्द्रः प्रज्ञा तस्मात् प्रज्ञामात्राभिराचितं ज्ञानम् ।
प्राणो हिरण्यगर्भः क्रिया इमाः प्राणमात्राभि ॥४॥
भूतान्यापो वरुणः सर्वेऽर्था भूतमात्राभि. ।
त्रिभिरेवैभिर्देवैरारब्धं विश्वमस्तीदम् ॥ ५ ॥
अधिदेवास्त्रय एते तानितरे नानितिष्ठन्ति ।
एषां हिरण्यगर्भोऽधिदेव एकः क्रियाहेतु ॥६॥
सर्वक्रियैकमलं न विना क्रिययाऽर्थ उद्भवति ।
न विना क्रियया ज्ञाने सोऽर्थः प्रविशेन्न चेष्टेत ॥७॥
तस्माद्धिरण्यगर्भं प्रवरं मन्ये क्रियाहेतुम् ।
तमुपेत्य सकमलं कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥



इन्द्राय सोमाभिषवार्थं वसिष्ठविनियोगः ।

इन्द्रायेत्थं सोतं हिरण्यगर्भे प्रजापतेः पुत्रे ।
अस्वीकुर्वति विप्रा वसिष्ठमृषिमार्थयां चक्रुः ॥ १ ॥

वसिष्ठेनेन्द्रपरितोषार्थं सोमयज्ञकरणम् ।

वसिष्ठ आसीद् वरुणस्य मित्रं बहूपचक्रे वरुणः पुराऽस्मै ।
किन्त्वेष वैज्ञानिकविग्रहेऽस्मिन् इन्द्रस्य पक्षे जगृहे विशिष्य ॥ २ ॥
दृष्ट्वा तत्र स सोमं धाष्ट्र्यात् पीतं वृषाकपिना ।
अनयात्क्रुद्धः सद्यः स्वगृहे सोमं सुषाव चेन्द्राय ॥ ३ ॥

वसिष्ठः (७ । ३२) इन्द्राय स्तौति ।

पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ (७ । ३२ । २५)
इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ (७ । ३२ । २६)
रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे (७ । ३२ । ३)
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ॥
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ (७ । ३२ । ४)
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ॥
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ (७ । ३२ । २३)
अथ च वसिष्ठः स्वगृहे सोमं सुत्व समानयन्निन्द्रम् ॥
सम्मानयंस्तमस्तौन्निपीतसोमं स्वराजमभ्यर्हम् ॥ ४ ॥
इन्द्रोस्ति राजा जगतो जनानां यच्चास्ति पृथ्व्योमखिलस्य तस्य ॥
पितेव बन्धुः सममेति मन्ये तस्योपकारं न च विस्मरेयम् ॥ ५ ॥
एभिर्दिनैरिन्द्र सभाजयाऽस्मान् दुर्म्मित्रलोका हि परिक्रमन्ते ॥
कुर्यादनिष्टं वरुणोऽर्थवद्वा निर्हेतु वा तद् द्वयमप्यपैतु ॥ ६ ॥

पुनर्वसिष्ठः (७ । २७ । २६) इन्द्रं स्तौति ।

१ २ ३ ४

I इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूप यदस्ति ॥

५ ६ ७ ८ ९

ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ (७ । २७ । ३)

१० ११ १२

II उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषा पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम ॥

१३ १४ १५

अधाहंत्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमति पितेव ॥ (७ । २९ । ४)

१६ १७ १८ १९ २०

III एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितय पवन्ते ॥

२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७

प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी न. सात् ॥ (७ । २८ । ४)

२७ २८ २८ २८ २९

IV वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्न ॥

३० ३१ ३२

यो अर्चतो ब्रह्मकृतिम विष्ठो यूयं पात स्वस्तिभि सदा न ॥ (७ । २८ । ५)

वरुणेन क्रुद्धेन वसिष्ठनिग्रहः ।

वरुणसखे तु वसिष्ठे तथेन्द्रपक्षं तदा गृहीतवान ॥
वरुणः क्रुद्ध कले त स वसिष्ठं निजग्राह ॥ ७ ॥
निगृहीतः स वसिष्ठः समापयन् वरुणमर्चयामास ॥
सुरया कृतमपराधं क्षमस्व तेऽह वशंवद. स्मरन ॥ ८ ॥

(I) १ जङ्गमस्य । २ मनुष्याणाम् । ३ भूमौ । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] । ७ सम्पत्तिम् । ८ प्रार्थित. । ९ मामपि ।

(II) १० अपिच । ११ पुरुदेशे [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] । १४ स्तुवन् प्रार्थयामि । १५ [illegible] ।

(III) १६ दिनैः । १७ देहि । १८ [illegible] । १९ [illegible] । २० [illegible] । २१ [illegible] । २२ मिथ्या वाद । २३ [illegible] । २४ [illegible] । २५ [illegible] दोषत्वमापरोऽमन्न । २६ [illegible] ।

(IV) २७ वक्ष्यामेव । २८ महान् [illegible] । २९ [illegible] । ३० [illegible] । ३१ क्रियमाणा स्तुति । ३२ [illegible]

वसिष्ठो वरुणमभ्यर्थयते ॥ ७ । ८६ ॥

१　　२　　　　३　　　　४　　५
पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ॥
६　　　५　　　　　　　　७
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ (७ । ८३ । ३)
८　　　　९
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ॥
१० ११　　१२ १५　१३ १६ १४ १५
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ (७ । ८६ । ४)
१७　　　१८　　　१९　　२०　　२१
(द) न स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ॥
२२　　　　　　　　　२३
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ (७ । ८६ । ६)
२६　　　　२४ २७　　　२५
(क) अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ॥
२८　२९　　३० ३१ ३२　३३　　३४
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ (७।८६।७)
३५　　　३६
(ख) अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ॥
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ (७।८६।८)

(द) अध्यवसायमूलकमौत्साहिकं कर्तव्यार्थसाधनापेक्षं तत्कालजं बलं दक्षः । (क्रतूदक्षाविति) आगन्तुकौत्पातिकदोषमूलकं परवशोद्भूतं तत्कालजं बलं ध्रुतिः, तत्र पञ्चोदाहरणानि- (परवशतायां सुरामदः । मन्युः प्रबलक्रोधविशेषः विभीदको द्यूतकालिको विद्धेषावेशः । अचितिः अज्ञानता । अवरजनसमीपस्थितस्य प्रभावशालिनः श्रेष्ठजनस्य बलवदिच्छाविशेषानुरोधः । स्वप्नदोषः प्रमादः, अनवधानता ।
१ पृच्छामि । २ अपराधम् । ३ दोषं ज्ञातुमिच्छुः । ४ विदुषो जनान् उपागमम् । ५ विशिष्य प्रष्टुम् । ५ क्रान्तदर्शिनः । ६ एकरूपमेवाहुः । ७ क्रुद्धोऽस्तीति । ८ अपराधः । ९ अधिकम् । १० प्रब्रूहि । ११ दुर्दभ-अन्यै र्बाधितुमशक्य । १२ तेजस्विन् । १३ निर्दोषः । १४ त्वरमाणाः । १५ आगच्छेयम् । १६ नमस्कारेण । १७ ज्ञानपूर्वकृतं प्रयोगबलम् । १८ जन्मसिद्धं, दैवनिर्मितं स्वभावकृतम् । १९ सुरा-क्षीबः । २० द्यूतम् । २१ अज्ञानमविवेकः साधारणमनुष्यस्य पापप्रवृत्तौ । समीपस्थः श्रेष्ठपुरुषः कारणम् । २३ प्रेरयिता ।
(क) २४ कामानावर्षित्रे । २५ जगतो भर्त्रे । २६ पर्याप्तम् । २७ परिचर्या करवाणि । २८ प्राज्ञापयत् २९ देवः अज्ञान् । ३० स्वामी । ३१ स्तोतारं । ३२ धनप्राप्त्यर्थं । ३३ प्रकृष्टतरः । ३४ प्रेरयति ।
(ख) ३५ अन्नवन् । ३६ स्तोत्रं, प्रार्थना कथः तव हृदि उपगतः अस्तु, अप्राप्तस्य प्रापणं योगः प्राप्तस्यरक्षणं क्षेमः ।

निगडमुक्तेन वसिष्ठेन मेधातिथिवामदेवसहायेन इन्द्रावरुणयोः स्तोत्रम्।

अथ मुक्तः स वसिष्ठः समत्वपक्षानुमोदकः समभून्।
अपि वामदेवमेधातिथी व्यधातां तयोः सख्यम् ॥ ९ ॥
इन्द्रस्य च वरुणस्य च परस्परं सख्यतासिद्धौ।
सह तुष्टुवुर्वसिष्ठो मेधातिथि-वामदेवौ च ॥ १० ॥

वामदेव इन्द्रावरुणौ सह स्तौति।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्मॉं अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमॉं अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ (४।४१।१)
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान्।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ (४।४१।२)
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ (४।४१।३)
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ (४।४१।७)
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू।
श्रिये न गाव उपसोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ (४।४१।८)
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ (४।४१।९)

मेधातिथिः काण्व इन्द्रावरुणौ सह स्तौति ॥ १ । १७ ॥

इन्द्रा वरुणयोरहं सम्राजोरव आवृणे ॥ ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ॥ धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ॥ ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ॥ भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ॥ क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ॥ स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ॥ अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ॥ अस्मभ्यं शर्म्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे ॥ यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥

वसिष्ठ इन्द्रावरुणौ सह स्तौति ।

सम्राडन्यः स्वराडन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ॥
विश्वेदेवासः परमे व्योमनि संवामोजो वृषणासं बलं दधुः ॥ (७।८२।२)
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयं दिवि प्रभुम् ॥
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायितोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ (७।८२।३)
युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ॥
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ (७।८२।४)
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ॥
युवाहि सख्यमुतवा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नियच्छतम् ॥ (७।८२।८)

इन्द्रावरुणयोः समत्वोपपादकं विज्ञानम् ।

वैज्ञानिकास्ते कतिचिन्महर्षयः समत्वविज्ञानमिहान्वमोदयन् ॥
देवेश्वरो योऽस्त्यसुरेश्वरोऽस्ति यस्तयोः परः कोन्ववरश्च को नु वा ॥ १ ॥
तेजोविभागं स यथैक ईष्टे तथाऽपरः स्नेहविभागमीष्टे ॥
सर्वं यथेदं व्यतिरिच्य नाग्निं नापस्तथेदं व्यतिरिच्य किञ्चित् ॥ २ ॥
देहे च नापः क्व ममास्ति जीवनं देहे च नाग्निः क्व ममास्ति जीवनम् ॥
अग्नेरिहापोऽग्निरपां तु गर्भजो विज्ञानमिन्द्राद्वरुणाद्बलं भवेत् ॥ ३ ॥
एकस्तयोः सत्यहितो यथाऽयं परस्तथाऽसावृतसत्प्रतीतः ॥
यथाऽङ्गिरा एष ऋषिः सुरस्यासुरस्य निर्भाति भृगुस्तथर्षिः ॥ ४ ॥
अर्वाक् च सूर्य्याद्वरुणोऽस्ति रोदसीगतः स देवेन्द्रमनुव्रजन् स्थितः ।
यः क्रन्दसीस्थः परतोऽस्ति सूर्य्यतः स पञ्चविंशे वरुणं श्रयत्ययम् ॥ ५ ॥
समुद्रगर्भं भुवनं हिरण्मयं तदण्डमद्भिः परितः समाप्लुतम् ।
समुद्र आकाशगतः स वाङ्मयो वागिन्द्र आकाश इयं हि संयती ॥ ६ ॥
सा क्रन्दसीतो ह्यवरास्ति रोदसी सा क्रन्दसीतोऽपि परास्ति संयती ।
द्यावापृथिव्यौ त्रिविधे इमे स्थिते अश्वत्थवल्शामनु ते निरीक्षयेत् ॥ ७ ॥

इत्थं स इन्द्रो वरुणं समाश्रितस्तथा तमिन्द्रं वरुण [illegible] समाश्रितः ।
नान्योन्यतोऽन्योन्यमिदं प्रहीयते तेनायमिन्द्रो वरुणस्य तुल्यतन् ॥ ८ ॥

उभयोः परितोषार्थमैन्द्रवारुणभारतयोर्मध्ये वसिष्ठनिवासः ।

सुरेश्वरस्यैष ततः स्वराजः सम्राज एवं स्वसुरेश्वरस्य ।
सखा वसिष्ठः समभूत् तयोश्च द्वयो प्रियं वर्तयति स्म नित्यम् ॥ ९ ॥
द्वयोस्तदा सोऽनुमते वसिष्ठश्चक्रे स्थितिं भारतवर्षमध्ये ।
ऐन्द्रं तथा वारुणमन्तराऽर्द्ध सरस्वतीं नाम पुर [illegible] ॥ १० ॥
तत्रैष सूर्य्यसदनं चकार विज्ञानभवनं तत्र ।
वैज्ञानिकीं परीक्षां कुर्वाणस्तत्र वसति स्म ॥ ११ ॥

इतिहासोपसंहारे जरथुस्त्राभिज्ञानम् ।

आख्यानमेतदुक्तं जरथुस्त्रमतानुगामिनां [illegible] ।
अपि च भविष्यपुराणे कश्चिदु[illegible] ॥ १ ॥
जरथुस्त्रा इह बहव [illegible] किन्तु [illegible] ।
दौहित्र स ऋजिश्वन [illegible] ॥ २ ॥
अस्ति भविष्यपुराणे [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) ।
मन्त्रद्रष्टुर्ऋजिश्वन [illegible] ॥ ३ ॥
वैदिकमन्त्रकृदासीदृषिर्भरद्वाज[illegible] ।
स ऋजिश्वा तस्यायं दौहित्रोऽस्य[illegible] ॥ ४ ॥
ऋज्राश्वो वा कश्चित् तस्य [illegible] ।
किन्तु पुरातन आसीदेष [illegible] ॥ ५ ॥
मैत्रो धर्म्मः पूर्वं प्रचरित [illegible] ।
[illegible] व्रतं च गोत्रं [illegible] ॥ ६ ॥
[illegible] नु जर[illegible] ।
इति वेदान् [illegible] ॥ [illegible] ॥
जरथु[illegible] ।
धर्म्माचार्यो [illegible] ॥ ८ ॥

काले कालेऽन्योऽन्यो जरथुस्त्रोऽभूत् प्रभावशाली सः।
शाकद्वीपनिवासिषु मगेषु धर्मं स्वमप्रथयत् ॥ ९ ॥
जरथुस्त्रधिष्ण्यगा अपि जरथुस्त्रा एव कथ्यन्ते।
तेषामेव तु कश्चिल्लिपिं खरोष्ठीं प्रवर्तयांचक्रे ॥ १० ॥
अद्यत्वे त्वितिहासग्रन्था वैदेशिकानां ये।
तेषु तु चतुः सहस्रादर्वाचां सन्ति वृत्तानि ॥ ११ ॥
अत एव तु जरथुस्त्रो यो राजा वाविलोननगरस्य।
आहुश्चतुःसहस्रप्राये काले तमुत्पन्नम् ॥ १२ ॥
किन्त्वसुरो जरथुस्त्रः सोऽर्वाचीनो भवेत्कश्चित्।
तस्मात्त्विह वहुपूर्वः देवयुगेऽन्यो वभूव जरथुस्त्रः ॥ १३ ॥
देवयुगीयः सोऽयं जरथुस्त्रो निवसति स्म वाह्लीके।
ब्राह्मण एषोऽनिन्द्रानसुरांस्तान् वर्द्धयांचक्रे ॥ १४ ॥

अरणानां मूजवतां महावृषाणां वाह्लिकानां च जरथुस्त्रमतानुयायित्वम्।

ये तेऽनिन्द्रा इन्द्रं निन्दन्तश्चेन्द्रभक्तानाम्।
ऐन्द्राणामार्य्याणां विद्वेषिण आसुरा आसन् ॥ १५ ॥
अरणास्त एव कथितास्तेषामीरानदेशोऽयम्।
अप्योरियंसवासिषु भूयांसश्चाभवन्नरणाः ॥ १६ ॥
आथर्वणे तु पञ्चमकाण्डे द्वाविंशकेऽरणाः सूक्ते (अथर्व सं० ५ का० २२ सू०)
अपि मूजवन्त उक्ता महावृषा वाह्लिकाश्चैते ॥ १७ ॥
"तक्मन् भ्रात्रा वलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥ (१२)
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि वह्लिकेषु न्योचरः ॥ (४)
तक्ममूजवतो गच्छ वह्लिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥
अन्य क्षेत्रे न रमसे वशी सन् मृडयासि नः।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति वाह्लिकान् ॥" (अथर्व० ५। २२)

विद्वेपाग्निर्ज्वलितः प्रतीयतेऽनेन वाक्येन ।

गन्धारादिस्थानां वाह्लीकादिस्थितैर्विरोधः सः ॥ १८ ॥

ब्राह्मणराजन्यानामन्योन्यं यो विरोधोऽयम् ।

तत्र च देवा ऐन्द्रानन्वसुरा वारुणानभवन् ॥ १९ ॥

"देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् ॥

वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥"

विरोधपरिहारायब्रह्मणा कृतः पूर्वपश्चिमभेदेन भारतवर्षस्य द्वेधाविभागः ।

देवा इत्थं देवानेवाराध्यानपश्यंस्ते ॥

वलदानसुरान्मेध्यान् पश्यन्तस्त्वासुरा अभवन् ॥ २० ॥

उभयेषां तु विरोधे भूयसि देशो विभक्तोऽभूत् ॥

ब्रह्मा गुरुर्विरोधं जहार भारतविभागेन ॥ २१ ॥

प्राच्यं भारतमैन्द्रं सिन्धुस्थानं तदेतदाख्यातम् ॥

पश्चिमभारतमुक्तं पारस्थानं तु वारुणं तदभूत् ॥ २२ ॥

वारुणपारस्थानं सिन्धोरालोहिताम्भोधेः ॥

तत्रान्ये तु विभागाः शासनभेदात् पुनर्जाता ॥ २३ ॥

कालेन राजशासनभेदात् सीमा हि देशानाम् ॥

संज्ञा च तत्र प्रभिद्यते हीति तच्चिन्त्यम् ॥ २४ ॥

इति वाह्लीके ब्राह्मणानां वैज्ञानिको विवादस्तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

अथ भारतवर्षस्य भूवृत्तचतुर्थांशत्वाख्यानं चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

पृथिवीमण्डलस्य पद्मत्वाभ्युपगमः ।

पद्मपुराणमत्स्यपुराणादिषु तावदिदं पृथ्वीमण्डलं पद्मत्वेन व्याख्यातम् ।

तथाहि—

"पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवॉस्तत. ॥

सहस्रवर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम् ॥

पद्मे हिरण्मये तस्मिन्नसृजद् भूरि वर्चसम् ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम् ॥

तच्च पद्मं पुराभूतं पृथिवीरूपमुत्तमम् ॥
यत्पद्मं सा रसादेवी पृथिवी परिकथ्यते ॥
एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसंभवा ॥
प्रादुर्भावोप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः ॥"

(पद्म पु० सृ० अ० ४०) (मत्स्य पु० अ० १६६)

भूपद्मस्य चतुःपत्रत्वप्रतिपत्तिः ।

चतुष्पत्रं चेदं पद्मं पुराणेषु निरूपितम् । यथा मार्कण्डेये—
"तदेतत्पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥
भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम्" ॥ इति ॥
"भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ॥
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्य्यादा शैलवाह्यतः" (इति ब्राह्मे)

इत्थं चास्य पृथ्वीमण्डलस्य चतुष्पत्रत्वे भद्राश्वभारतकेतुमालोत्तरकुरूणां पत्रभूतानां समानैरंशैर्विभक्तानां एकैकस्य नवत्यंशावच्छिन्नत्वमुपपद्यते । तथा चोक्तं सूर्य्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये—

"भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता ॥
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्रकारतोरणा ॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी ॥
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता ॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिता ॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः ॥
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते" ॥ इति ॥

तत्र च लङ्कासुमेरुप्रोतरेखाया भारतवर्षीयमध्यरेखात्वव्यवस्थानात् ततः प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशैः प्रतीच्यां च तावदंशैरवच्छिन्नस्य भूभागस्य भारतवर्षत्वं सिद्ध्यति ॥ भारतवर्षात्प्राच्यां नवत्यंशं भद्राश्वं वर्षम्, तत उत्तरतस्तावदंशं कुरुवर्षम्, ततः पश्चात्तावदंशं केतुमालवर्षमिति । एतानि भूपद्मस्य चतुर्दिक्षु चत्वारि पत्राणि ॥ भारतवर्षीयमध्यरेखा

चोज्जयिनीस्था निगद्यते । "यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः" इत्युक्ते । उज्जयिनी चेयं नगरी नवकलाधिकत्रयोविंशे (२३ । ६) उत्तरेऽक्षांशे स्थिता । ग्रीनवीचमध्यरेखापेक्षया त्रिचत्वारिंशत्कलाधिकपञ्चसप्ततिपरिमितात् पूर्वीयदेशान्तरांशादारभ्यते ॥ (७५ । ४३ पू० देशान्तरे) तेन ग्रीनवीचमध्यरेखा-भारतीयमध्यरेखयो षट्सप्ततिरन्तरांशा. सिध्यन्त । अन्तरांशेषु पञ्चचत्वारिंशदंशैर्हीनेषु ग्रीनवीचत. एकत्रिंशे पूर्वीयदेशान्तरांशे नीलनदीसागरसंगमप्रदेशोपलक्षिते भारतवर्षस्य पश्चिमा सीमेति प्रतीमः । एवं भारतीयमध्यरेखात प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशाः फारमूसाद्वीपोपलक्षिते प्रशान्तसागरे पर्य्याप्नुवन्तीत्येष प्रशान्तसागरः पूर्वा सीमा संपद्यते ।

इति चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

अपि च भारतवर्षाद् बहुपूर्वस्थानामुपद्वीपानां भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य बहुविस्तृतप्रदेशत्वे पञ्चमं प्रमाणम् ॥ ५ ॥

तथा हि ब्राह्मसप्तदशे, मार्कण्डेयचतु पञ्चाशे, मात्स्ये तु चतुर्दशाधिकशततमे भारतवर्षस्यैतस्य नवोपद्वीपाः पौराणिकैराख्यायन्ते ॥

"उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे ॥
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥ १ ॥

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ २ ॥

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुण. ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीप. सागरसंवृत. ॥ ३ ॥" इति ॥

स्कान्देऽप्याह माहेश्वरखण्डस्योनचत्वारिंशे (३९) ॥

"इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्र द्वीपो गभस्तिमान् ॥
नागः सौम्यश्च गान्धर्वो वरुणश्च कुमारिका ॥" इति॥

एषां साम्प्रतं प्रचलितभाषायां नामानि यथा—

सं०	नामानि	पर्य्यायाः	भाषानामानि	इंग्लिशनामानि
१	इन्द्रद्वीपः	इन्द्रद्युम्नः	इन्द्रमन	=एंडमन
२	नागद्वीपः		निकोवार	=नीकोवर
३	सौम्यः	सोमत्रा	सुमात्रा	=यवद्वीप-बलिद्वीप
४	गान्धर्वः		फीलीपाथिन द्वीप संघः।	लुम्बक सुम्बाफ्लोरीन प्रभृ[illegible] जावाद्वीपसंघोप्यत्रैव संनि[illegible]शते। =न्रूनाई=न्रूणी
५	वारुणः		वोर्नियो	
६	कशेरुमान्	कसेरू	सेलेवीस	
७	गभस्तिमान्		मलूका	
८	ताम्रपर्णः-सिंहलः	ताम्रपर्णी	टापूरोवेनसीलोन	—सीलोन्-सरन्-
९	कुमारिका	कुमारी	भारतखण्डः	

इन्द्रद्वीपः।

१—पुराऽत्र कदाचिदोड्रदेशीयपुरुषोत्तमक्षेत्रे इन्द्रद्युम्नो नाम राजाऽसीत्।

"पुराकृतयुगे कश्चिन्मालवेऽवन्तिकापुरे॥
बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः।
स गत्वा नृपतिः क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्॥
तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां चान्वसादयत्।
मार्कण्डेयं वटं कृष्णं दृष्ट्वा रामं च सुव्रतः॥
सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद् ध्रुवम्।
एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम्॥
निवासमकरोत् तत्र वेलामासाद्य सागरीम्॥"

इति ब्राह्मे ४१। ४२ अध्याये तथोक्तेः।

तेनाधिकृतत्वादस्योपद्वीपस्य ऐन्द्रद्युम्नसंज्ञा जाता। तदपभ्रंशादयम् "ऐन्द्रमन" शब्द प्रवृत्त इति प्रतीयते। चत्वारिंशदधिकशोत्तराक्षांशात् पञ्चदशाधिकत्रयोदशाक्षांशपर्य्यन्ते प्रदेशे

(१७ ॥ ४०—१३ ॥ १५) तथा षट्त्रिंशदधिकद्वानवत्यंशात् त्रिणवत्यंशपर्य्यन्ते पूर्वदेशान्तरे संनिविष्टोऽयमिन्द्रद्युम्नः (६२ । ३६—६३ । ०) ॥ १ ॥

नागद्वीपः ।

२—अथ पुरायुगे नागवंश्या केचन क्षत्रिया स्वर्गभूमौ 'तासकन्द' प्रदेशादौ राज्यमकुर्वन् । ते च काश्मीरप्रदेशं पश्चादधितिष्ठन्तोऽस्मिन् भारतवर्षे यत्र तत्रोपनिविष्टा बभूवुः । तेषामेवाधिकारे यो द्वीप आसीत् स नागेश्वर इति प्रसिद्धो म्लेच्छभाषायामपभ्रंशात् "नीकोवर" इति संभवति । सपञ्चाशषष्ठांशादष्टमांशं यावदुत्तरेऽक्षांशे (६।५०—८।०) त्रिनवत्यंशात् सपञ्चाशत्रिनवत्यंशं यावत्पूर्वदेशान्तरे (६३ । ० ।—६३ । ५०) नागेश्वराख्यो नीकोवरः ॥ २ ॥

सौम्यः ।

३—अथ सोमो राजा गन्धर्वेष्वासीद् गन्धर्वाणामधिपतिर्लोकपाल—इति वेदे महाभारते पुराणादौ च प्रसिद्धम् । गन्धर्वदेशो गान्धारदेशः संप्रति "अफगानिस्तान"—इति प्रसिद्धः । तस्याधिपत्येनायं द्वीप सौम्य उच्यते । अधीने च त्राप्रत्ययो देशभाषायामनुशिष्यते । तेनैतस्य पुरातत्वे सोमत्रा इति नाम संभाव्यते । तदपभ्रंशादयं "सुमात्रा" शब्दः प्रवर्तते । निरक्षवृत्ते द्वियुतशततमे पूर्व देशान्तरे सोमत्रा द्वीपः । यवद्वीप वलिद्वीप—लम्बक—सुम्बावा—सुम्बा—फ्लोरीन प्रभृतिर्जावाद्वीपसंघोऽपि सुमात्रासांनिध्यात् सौम्यशब्देनैव संगृह्यते ॥ अतएव जावाद्वीपसंघस्य दक्षिणाष्टमाक्षांशावृत्तित्वेऽपि भारतीयत्वं नोपहन्यते । षडधिकशतांशाद्दशाधिकशतांशपर्य्यन्ते पूर्वदेशान्तरेऽयं जावाद्वीपसंघ ॥ ३ ॥

गान्धर्वः ।

(४) अस्यैव सोमस्य सामन्तप्राया विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वराजा प्रसिद्धाः । तदधीनो द्वीपो गान्धर्वः । स चायं गान्धर्वद्वीपसंघः फीलीपायिनशब्देनाख्यायते । तत्र मनिल्लादय प्रदेशा अन्तर्भवन्ति । द्वादशे उत्तराक्षांशे (१२ । ०) त्रयोविंशशते पूर्व देशान्तरे (१२३) ऽयं द्वीपः स्थितः ॥ ४ ॥

वारुणः ।

(५) अथ वरुणोऽसुराणां राजासील्लोकपाल । तदधिष्ठितो द्वीपो वारुण । तदप-

भ्रंशादयं वोनियो शब्द उच्यते । द्व्यधिकपञ्चमें उत्तराक्षांशे (५ । २ । ३०) द्वापञ्चशत्कलोपेते चतुर्दशशते देशान्तरेऽयं वारुणद्वीपः (१४४। ५२ पू०) ॥ ५॥

कशेरुमान् ।

(६) अथ कशेरुः कन्दविशेषः । तस्याधिक्येन कदाचिदत्रोत्पत्तिर्भवेदिति कशेरुमानित्ययमाख्यातः स्यात् । ककारलोपे सेलुवाशब्दोपपत्तिक्रमेणायं द्वीप. सेलेवीस इत्युक्त इत्यनुमीयते ॥ वोनियो द्वीपादयं प्राच्यां संनिविशते । चतुर्थे दक्षिणाक्षांशे (४ । ०) एकविंशशते पूर्व देशान्तरे (१२१) कसेरुमान् ॥ ६॥

गभस्तिमान् ।

(७) सेलेवीसात् प्राच्यां निरक्षवृत्ते मलक्कोपद्वीपो गभस्तिमान् ॥ केचित्तु मलुक्कातोऽग्निकोणस्थमासन्नप्रायं पपुवा द्वीपं गभस्तिमच्छब्देनेच्छन्ति । अद्यतनास्तु पपुवोपद्वीपमाष्ट्रेलियाद्वीपानुबन्धिनमाहुः ॥ अत एवेदानीं भारतीयोपद्वीपत्वाभावात तत्परित्यागः । वस्तुतस्तु संभाव्यते पुरा युगे तस्यापि भारतीयत्वमिति मलुक्कामारभ्य पपुवापर्यन्तस्य द्वीपसंघस्य गभस्तिमच्छब्देन शक्यते व्यवहारः कर्तुम् । निरक्षवृत्ते सार्द्धे सप्तविंशशते (१२७ । ३०) देशान्तरे गभस्तिमानस्ति ॥७॥

ताम्रपर्णः ।

(८) अथ सिंहलद्वीप एव ताम्रपर्णीद्वीपः । बौद्धग्रन्थे भारतवर्षीयदेशविभाग प्रकरणे ताम्रपर्णीशब्देन सिंहलद्वीपस्योपदिष्टत्वात् । यूनानदेशीयग्रन्थे चायं सिंहलद्वीपः "टापरोवेन" शब्देनाख्यायते ॥ तावताऽस्य ताम्रपर्णसंज्ञोपपद्यते । टापरोवेनशब्दस्य ताम्रपर्णशब्दापभ्रंशतया संभाव्यमानत्वात् ॥ यत्तुटापूरावणशब्दापभ्रंशतया टापरोवेनशब्दं केचित् संभावयन्ति तदयुक्तम् ॥ टापूशब्दस्य फारतीयग्राम्यशब्दतया यूनानदेशे तदपभ्रंशस्य प्रयोगायोगात् । सिंहलस्यरावणटापूत्वाभावाच्च ॥ चत्वारिंशदधिकसप्तमे उत्तराक्षांशे (७ । ४०) पञ्चाशदधिकाशीति देशान्तरे (८० । ५०) चायं सिंहलद्वीपः ॥८॥

कुमारिका ।

(९) सर्वोऽप्ययं भारतीयोपद्वीपसंघः संप्रति म्लेच्छभाषायामेकेन शब्देन "इंडियन आर्किपेलेगो"—इत्याख्यायते ॥ यस्तु कुमारिकाक्षेत्रादारभ्य काश्मीरपर्यन्तः प्रवितता महाद्वीपः सोऽत्र प्रधानो नवमो द्वीपः । एते चेन्द्रद्वीपादय. सिंहलातिरिक्ताः सर्वेऽप्युपद्वीपाः

प्रचलितभाषायां वर्म्मा शब्देन प्रसिद्धात् कृतवर्म्मणो राज्ञो राष्ट्राद् दक्षिणपूर्वस्यां दिश्येव सन्निविष्टा दृश्यन्ते ॥ तत्र वारुणकसेरुगान्धर्वादीनामुपद्वीपानां भारतीयोपद्वीपत्वाख्यानं नत्वेवोपपद्येत, यावता फारमोसा प्रदेशोपलक्षितप्रशान्तसागरस्थभारतवर्षसीमान्तर्भुक्तत्वं नाभ्युपगम्येत । तस्माद् भारतीय मध्यरेखात प्राच्यां पञ्चचत्वारिंशदंशा भारतस्यास्य पूर्वासीमेति सिद्धम् ॥ ६ ॥ अपि च शक्तिसंगमतन्त्रादौ चीनप्रदेशानामपि केषांचिद् भारतीयत्वेनाख्यानात् चीनसम्बन्धिफारमू सोपद्वीपपर्य्यन्त भारतवर्षमासीदिति विज्ञायते । तथा चेदं भारतवर्षस्य नवस्यश परिमितत्त्वेपञ्चमं प्रमाणम् ॥ हिन्दुस्थानशब्देन प्रसिद्धस्य कुमारीद्वीपस्य भारतीयत्वाख्यानं भारतवर्षस्य बहुविस्तृतप्रदेशत्वं गमयति ॥ ५ ॥

(६) अपि च सिन्धोः पश्चिमस्थानां देशानां भारतीय देशत्वाख्यानं षष्ठंप्रमाणम् ॥

तथाहि—पौराणिके भुवनकोशे भारतवर्षीयावान्तरदेशपरिगणनासूदीच्य-

१ २ ३ ४ ५ ६ ७

देशतया गान्धार—मद्र—पारद—पह्लव—कम्बोज—शक—यवनादि—देशानामुल्लेखादेषां देशानां पुरायुगे भारतीयत्वमासीदित्युपगम्यते । बृहत्संहितायां च 'भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजितादेशा ॥ (१४।१) इति प्रतिज्ञाय—पश्चिमायां हैहय—पारद—शकदेशानां—पश्चिमोत्तरस्या च तुखारमद्रादि देशानामाख्यानात तत्तालेष्वेषां भारतवर्षीयत्वं सुप्रसिद्धमिति गम्यते ।

गान्धारमद्रौ ।

तत्रायमफगानस्ताननाम्ना संप्रति प्रसिद्ध संपूर्णो देश. पुरात्वे गान्धारशब्देन, सपूर्णश्चायमीरानदेशः पुरात्वे मद्रशब्देन व्यवह्लतावास्ताम् । इत्थमेतत पश्चिमं भारतवर्ष गान्धारमद्राभ्यां द्वेधाः विभक्तं द्रष्टव्म् । गान्धारमद्रौ चैतौ प्रत्येक द्वेधा विभक्तावास्ताम् ॥ तत्रैत गान्धारा कन्दहारनगरोपलक्षितास्तावत्सिन्धो. पूर्वत पश्चिमतश्च प्रसिद्धा । रामभ्रातृभरतपुत्राभ्यां तक्षपुष्कराभ्यां तक्षशिलां पुष्करावतीं च राजधानीं पृथगधिनिष्ठाभ्यां स्व-स्व राष्ट्रतयैव गान्धाराणां द्वेधा विभज्यमानत्वात् । तथा च भारतीयराजशासनाधीनतयैषामुभयेषां भारतीयत्व सुनिश्चितम् ॥

काबुलतोऽनतिदूरे वायव्ये बामियानाख्य ॥
प्रान्तोऽस्ति तत्र पूर्वं राजा लोकाश्च वैदिका अभवन् ॥ १ ॥

ईरानेऽपि तथासीत्पुराः युगे पार्सिप्रोलिसेत्याख्या ॥
पारस्यपुरीयायां विदुरयत्वे त्लिस्तखरनाम्ना ॥ २ ॥
प्राक्तनपारस्यलिपिप्रोल्लिखितास्तत्र ये शिलालेखाः ॥
तेभ्यस्तत्रत्यानां भारतवर्षीय्यसंस्तवोऽधिगतः ॥ ३ ॥

अथोत्तरमद्रा दक्षिणमद्रा इत्येवं मद्रदेशस्यापि द्वैविध्यं प्रसिद्धम् ॥ तथा च द्विधा गान्धारा द्विधा मद्रा इत्येवमेते चत्वारो विभागा, भौगोलिका नित्या भवन्ति ।

सगरनिर्वासिताः धर्मभ्रष्टाः पञ्चगणाः ।

अथैतयोरेव गान्धारमद्रयोर्जनताविभागनिबन्धनाः पुनरन्ये पारदपह्लवकाम्बोजादयः पञ्चधावान्तरविभागा दृश्यन्ते । तथा हि यदुवंशीयहैहयसाम्राज्यकाले तन्मित्रराष्ट्रत्वेन ।
१ २ ३ ४ ५
तदधीनराष्ट्रत्वेन चैते पारदाः—पह्लवाः—कम्बोजाः—शकाः—यवना इति पञ्चगणाः सिन्धोः पश्चिमतो राज्यं कुर्वन्ति स्म । ते चाणुवंश्या द्रुह्युवंश्या वा चन्द्रवंशीयाः क्षत्रियापसदाः सम्राजमेतं हैहयमनुवर्तन्ते स्म । हैहयकुलशत्रुः सूर्यवंशीयो महाराजः सगरः स्वपितृविद्वेषिणं हैहयराजं विनिर्जित्य चक्रवर्तित्वं लेभे । स एषां हैहयानुगामिनां पह्लवादीनां पराजयचिह्नतया वैकृतं चक्रे । तदुक्तं ब्राह्मादिषु—

रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान् ।
हैहयास्तालजंघाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपाः ॥ १ ॥
बाहोर्व्यसनिनः सर्वं हृतं राज्यमभूत्किल ॥
हैहयैस्तालजंघैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमाः ॥२॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ॥
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन् ॥३॥
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥
और्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः ॥४॥
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृपः ॥
हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥५॥
ततः शकाँश्च यवनान् काम्बोजान् पारदाँस्तथा ॥
पह्लवाँश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितोऽभवत् ॥६॥

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ॥
वशिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥७॥
वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः ॥
सगरं वारयामास तेषां दत्वाऽभयं तदा ॥८॥
सगरस्तां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥
धर्मं जघान तेषां च वेषानन्यांश्चकार ह ॥९॥
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ॥
यवनाना शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च ॥१०॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः ॥
सर्वेते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः ॥११॥

॥इत्यादि॥

पारदाः ।

पश्चाप्येते क्षत्रियापसदा भारतीयार्यधर्माद्विच्छ्याविता कालेन कैलडिया देशनिवासिगाल-केयासुरधर्मे दीक्षिता भूत्वा क्रमेणाऽसुरवेषभूषां तद्भाषां चागृह्णन् । अहंमन्येषु पूर्णाभिमानिषु तेषु केचिदात्मनो धनुर्धरवीरत्वं प्रख्यापयन्त पारदा इत्यात्मनो राजोपाधिं जगृहुः ॥ तच्छब्दस्यासुर-भाषायां धनुर्धरार्थत्वात् । ते चैते पारदाः उत्तरकाले म्लेच्छभाषया पार्थिया इत्युक्ताः । एषां च निवासप्रदेशः काश्यपीयसागरादक्षिणपूर्वदिश्युत्तरस्मन्नोऽभवत् । तमिदानीं युगे खुरासानदेशमाहुः ।

पह्लवाः ।

अथान्ये केचिन्महाबलिष्ठार्थकमासुरभाषया पह्लवान् शब्दं स्वोपाधिं जगृहुः । ते पह्लवाः इति आख्यायन्त ।

पह्लवास्तु पार्थवाः पार्थिवा इति कालेनाख्याता शासनीनाम्ना पश्चात् प्रसिद्धा अभवन् । इस्पहाननगरोपलक्षितो दक्षिणमद्रप्रान्तस्तेषां निवासभूमिः ॥ यत्तु केचित् पाश्चात्यविद्वानोऽधुना वे पारदानामेव पह्लवत्वमुपतर्कयन्ति पार्थिवा एव त्वपभ्रंशात् पार्थिया उच्यन्ते इति चाहुः । तन्न युक्तम् । पौराणिकेऽतिप्राचीने भुवनकोशे पारदाना पह्लवानां च भेदेन सर्वत्राख्यातत्वात् ॥ यथा मार्कण्डेयो (५४ अ०)

"वाह्लीका वाटधानाश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥
गान्धारा यवनाश्चैव पारदा हारभूषिकाः ॥ १ ॥

कम्बोजा दरदाश्चैव काश्मीरानुगणास्तथा" ॥ इति० ॥

जेन्दावस्ताग्रन्थोऽप्यादितः पह्लवीभाषायामासीत्। तेनैते तद्ग्रन्थानुयायिनामग्निपूजकानां पारसीकानां पुरात्वे चन्द्रवंशीयक्षत्रियत्वानुमानेऽपि कालेन पह्लवसंज्ञाप्रसिद्धजातिमुक्तत्वमनुमीयते। जेन्दावस्ताग्रन्थनिर्म्माता जरथुस्त्रो यद्यपि मगजातीयतया शक आसीत्। तथापि जेन्दावस्ताग्रन्थस्य पह्लवीभाषायां निर्म्माणात् पह्लवशकयोः परस्परतः संस्रवाधिक्यमासीदित्यवगम्यते ॥

कम्बोजाः।

कामभोजाः यथेच्छभोगप्रवणाः सर्वस्वतन्त्रा वयमित्यात्मानं प्रथयन्तोऽपरे कालेन काम्भोजाः काम्बोजा उच्यन्ते स्म। त एव कम्बोडिया इत्याख्याता। ते चैते काम्बोजा निषधपर्वताद्दक्षिणस्था अपि भारतीया एवासन्। "शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते"—इति व्याकरणमहाभाष्योक्त्या तत्रत्यानामपि संस्कृतभाषाभाषित्वेनार्य्यत्वोपगमात् ॥ ये त्विदानीं भारतवर्षस्य पूर्वप्रान्तेऽपि नूनं वर्म्माख्यप्रदेशपूर्वभागस्थात् स्यामदेशात् प्राच्यां, कोचीनतः प्रतीच्यां तयोर्देशयोर्मध्येऽष्टमाद्यांशात् पञ्चदशाद्यांशपर्य्यन्तं केचित् कम्बोजाः प्रसिद्ध्यन्ति। यांश्च कम्बोडिया शब्देनैवेदानींतनाः पाश्चात्याः व्यपदिशन्ति ते खल्वेभ्यो भारतपश्चिमप्रान्तवासिभ्यः काम्बोजेभ्यो भिन्नाः स्युः ॥ पुरा युगे भारतीयसर्वग्रन्थे कम्बोजानां भारतपश्चिमत्वेनैवाख्यानात्तेषांपारस्तानप्रान्तवासित्वं नापलपितं शक्यते ॥

शकाः।

अथ शक्ताः समर्था वयमित्यावेदयन्तः केचन शका अभवन्। ते चैते शका उत्तरयुगे स्कीथीया नाम्नोच्यन्ते स्म ॥ समर्था एते पूर्वभारतेऽपि चिरमागत्य राज्यं कुर्वाणा विक्रमादित्येनोज्जयिनीमहाराजेन पराजिता अभवन्निति वदन्त्यैतिहासिकाः। शकानामेषां निवासप्रान्तविशेष एव शाकद्वीपः। शकजातीयानां ये ब्राह्मणाविद्यावृत्तयस्ते मगा आख्याताः ॥

"एभिर्यजन्ति भूयिष्ठं तस्मिन् (शाक) द्वीपे मगाद्विपाः ॥
विद्यावन्तं कुलश्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः ॥ १ ॥

॥ इति भविष्यपुराणोक्तेः अ० १४ ॥

पारसीकानां मतप्रवर्तको बाह्लीकजन्मा ऋजिश्वर्षिकन्यागर्भजो जरथुस्त्रोऽपि मगजातीय एवासीत्।

वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यतोऽहं लङ्घितस्त्वया ।
तस्मान्मगः समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥ १ ॥
जरथुस्त्र इति ख्यातो वंशकीर्तिविवर्द्धनः ।
अग्निजात्या मगाः प्रोक्ताः सोमजात्या द्विजातयः ॥ २ ॥

(१३९ । ४३ । ४५) (इति भविष्योक्ते)

एते च जरथुस्त्रमतावलम्बिनो वैदिकधर्मविरोधाद्विपरीतमतानुगामिनो बभूवुः । लिपिरपि जरथुस्त्रेण दक्षिणतो वामानुगा नवीना प्राकल्प्यत । देवाराधनाद्वैपरीत्येनासुराराधना चानेन प्रकल्पितेत्याहुः ।

विपर्य्यस्तेन वेदेन मगा गायन्त्यतो मगाः ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वणः ॥ १ ॥
ब्राह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सुव्रत ।
त एव विपरीतास्तु तेषां वेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥

इति भविष्यपुराणे अ० १४ तेषां वैदिकब्राह्मणविरोधिताया उक्तत्वात् । मगानामेषां चत्वारो वेदाः क्रमेण विद् विस्परद (विश्वरद) विदाद, आङ्गिरस इत्युच्यन्ते ॥ शाकद्वीपिनोऽप्येते भारतवर्षं पूर्वमागत्य मगधप्रान्तं स्वनाम्ना वासयामासुः ।

यवनदेशाभिज्ञानम् ।

अथ ये खल्वेतेषां सर्वधर्माणां मिश्रणामिश्रणाभ्यां प्रतीतास्ते यवनाः । ते चैते संप्रति यहूदिया इत्याख्यायन्ते । यहूदियानामेषां प्रधानभूता काचिन्नगरी यहूदियाशब्देनैवाख्यायते स्म । तां पाश्चात्या अपभ्रंशाद् यूडियाशब्देनाहुः । तुरुष्कास्त्वेतां नगरीं "बैतुलहम" इत्याहुः । तत्रैव च सन्निधाने बैतूलमुकद्दसनामा नगरी वर्त्तते । ताभ्यामुपलक्षितः फिलिस्तानप्रान्त एव एषां यवनानां प्रधानभूतो देशोऽवगन्तव्यः । यद्यप्यत्र देवयुगे पणयो नामासुरा वसन्ति स्म ॥ पणि-स्थानस्यैव चापभ्रंशेनाऽयं फिलिस्तानशब्दः पश्चात्प्रसिद्धोऽभूत् । किन्तु नैतावता पणीनां यवनत्वमास्थेयम् । पणीनां वाणिज्यप्रधानासुरतया यवनानां तु यहूदियानां पश्चाद्-सुराणां भारतीयक्रियापसदतया भेदस्य भारतीयप्रामाणिकशास्त्रसिद्धत्वात् ॥ पणीनां कालेन विनाशे यवनानां तत्रोपनिवेशस्य कालप्राप्तत्वात् ॥ यत्तु यवनशब्दो ग्रीकजातिपरो न तु यहूदियावचनः यूनानियानगर्यां यवनानी शब्दापभ्रंशस्योपपत्तेरित्याहुः । तन्न विप्रति-

पद्यामहे । द्विधा हि यवनाः स्युः । किलातत्रैतन—शैलाभ—यवनाख्यया संस्कृतशास्त्रोक्तानां केल्ट—ट्यूटन—स्लाव—ग्रीक नामभिर्म्लेच्छभाषाशब्दैः सांप्रतं प्रसिद्धानां स्वर्णरजातिविशेषाणामन्यतमभेदा एके यवना ग्रीकनाम्ना प्रसिद्धयन्ति । अपरे पुनः पह्लवपारदादिक्षत्रियापसदानां भारतीयानामन्यतमभेदा यहूदियाः संभवन्ति । तथा च नास्ति विरोध इत्यवगन्तव्यम् ।

यूनानदेशीयेषु यवनशब्दप्रचारस्यार्वाचीनत्वम् ।

अथवा विपर्य्यस्तमिदमुच्यते—यवनशब्दो ग्रीकजातिवचनोनतु यहूदियावचन इति । वस्तुतस्तु यहूदियावचन एवायं शब्दः पुरात्वे व्यवह्रियमाण आसीन्न तु ग्रीकजातिवचन इति निभृतं प्रत्येतव्यम् । भारतीयेतिहासप्रचारकाले ग्रीसदेशेतिहासस्यान्धकारमयत्वात् तदभिप्रायेण भारतीयार्यशास्त्रे यवनशब्दप्रयोगयोगात् । उक्तं पूर्वम् । दक्षिणभारतस्थ हैहयसम्राज्यकाले तद्बन्धवः पश्चिमभारतवासिनः पञ्चगणाः पश्चात् सगरसाम्राज्यकाले पूर्वभारतादस्मान्निर्वासिता धर्मभ्रष्टा असुरा अभवन्निति । तेष्वेके यवना एव क्रोधादार्य्यैर्नित्यं विद्विषन्तः सर्वदा योधितुमुद्यताः सन्तो युद्धधीत्वात् कालेन युद्धधीशब्देनैवाख्याता अभवन् । युद्धधिय एवैते वीरा अपभ्रंशान्म्लेच्छैर्भूयसा युहदीशब्देन व्यपदिष्टा व्यवहारप्राचुर्येण यहूदीसंज्ञया प्रसिद्धा अभवन् । पारस्थानाख्ये पश्चिमभारते पृथक् पृथक् संनिविष्टानामेषां पञ्चगणानामन्यतमा ह्येते यवनास्तदा त्वे लोहितसागरीयपूर्वदक्षिणकूलस्थानाद्—अदन प्रदेशादारभ्य आसीरिया प्रदेशान्तान् लोहितसागरपूर्वकूलप्रांतदेशानधिवसन्ति स्म । अत एव भारतसीमाचतुष्टयीं निर्दिशन्तो भारतीयार्य्याः 'पश्चिमे यवनाः स्थिताः' इत्याहुः । अद्यत्वे तु यवनशब्दापभ्रंशेन यवनशब्दः केवलमर्वदेशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे संकुचितोऽवशिष्यते । अन्यप्रान्तेभ्यः क्रमेण यवनानामाधिपत्यविच्छेदाद्वा हेत्वन्तराद्वा यवनशब्दप्रयोगस्योच्छिन्नत्वात् यहूदीशब्दव्यवहारप्राचुर्येण च तेष्वयं यवनशब्दप्रयोगः सर्वथा विलुप्त एवाभूदिति नेदानीं वैदेशिकास्तेष्वमुं शब्दं प्रयुञ्जाना दृश्यन्ते । तदित्थमेतेषु यहूदीषु विलुप्तप्रयोगोऽयं यवनशब्दः कालगतेरद्भुतसामर्थ्याद्दतिदूरं गिरीशदेशमभ्याक्रामन्तो भूयसा व्यवह्रियमाणो दृश्यते । सोऽयमर्वाचीनयुगे खल्वभवद् ग्रीसदेशे यवनशब्दप्रचारो न पुरात्वे यत्रासीत् ग्रीसदेशेतिहासस्य ख्रीष्टजन्मनः प्रागष्टादशशतवत्सरेभ्य एव प्रवर्तमानतया तदभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगस्यापि तद्वान्तरकालिकत्वेनार्वाचीनत्वोपपत्तेः ।

हैलेयासुरजातीनां ग्रीकायिनाम्ना पुराप्रसिद्धानां निवासाभिजनदेशविशेषे—ग्रीसशब्दयवनशब्दोपचारारम्भकालविचारः ।

ग्रीसदेशे चायं यवनशब्दोपचारः कस्मात् कालादारभ्य इति जिज्ञासायामुच्यते एष तावद् ग्रीसदेशः प्राचीनतमकाले पेलासगो नाम्ना प्रसिद्धः वन्यैरसभ्यर्जातिविशेषैः पर्वतगुहादिवा

सिभिरेवाक्रान्त आसीत् । तत्र काले स्याम—सीरिया—केल्डिया—यमनादिप्रान्तवासिनो युद्धवीरा हैलेया आक्रममाणा पेलासगी जातिविशेषान् पराभाव्य तत्र देशे स्वं समुपनिवेशं चक्रुः । मध्यैशियाप्रदेशात्त्वेते हैलेया ग्रीसप्रदेशमागत्य वन्यान् पराजिग्यिरे इति पाश्चात्या आहुः तद् भ्रान्तम् । मध्यैशियाप्रदेशस्य देवलोकतया तदात्वे व्यवस्थितत्वे तत्र देशे हैलेयनामासुरविशेषाणां कदाप्यवस्थातुमशक्यत्वात् ॥ "हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवु—" इति श्रुतेर्हैलिरयं पुरायुगे सीरियाप्रान्तवासी युद्धप्रियः कश्चिदसुराणां संघविशेष आसीत् । तद्वंशधरा सर्वे हैलेया स्युः । तेषां विजयिनामावासप्रभावादयं ग्रीसदेशः पुरात्वे हैलेयावासः सन् कालक्रमेण व्यवहारविशेषानुरोधाद् "हेलास—"इत्याख्यायतेस्म ॥ वर्त्तमानग्रीसदेशापेक्षया बहुविस्तृतोऽयं हेलासप्रदेश आसीत् । तत्र वसन्त पुनरिमे हैलेया निशियुद्धप्रवणतया निश्याः सन्त क्रमेण हैलेनिसनाम्ना प्रसिद्धा अभवन् । हैलेयनिश्यशब्दापभ्रंशेन हैलेनिश शब्दोपपत्तेः संभवात् ॥ पेलासगी जातीयमनुष्याणामप्येषु सहयोगसंस्रवाधिक्यप्रभावान्मिश्रणे तन्मिश्रितहैलेया एतोत्तरकाले हैलेनिस शब्देनाख्याताः पुरायुगे ग्रीसदेशवासिन प्रधान्येनाभूवन् । अत्रैते श्लोका रच्यन्ते—

हैलेयवास क्रमतोऽपशब्दो हेलास इत्येष बभूव काले ॥
तत्र स्म हेलेनिसजात्यलोका वसन्ति नीवृत्यसुरप्रवीरा ॥१॥
निश्याक्रमन्ते स्म विशिष्य युद्धे घ्नन्तिस्म सुप्तानिति कारणात्ते ॥
हैलेयनिश्या अभवन् प्रसिद्धा हैलेनिसा इत्यपशब्दतः स्यु ॥२॥
हैलेनिसानां प्रथमस्तु देश स्वः सामदेश सहि सीरियाख्य ॥
जिगीषया पश्चिमदिग्गतास्ते यूनानदेशानविचक्रमुस्ता ॥३॥
हैलेयलोका गिरिकायवत्वान् ख्याता बभूवुर्गिरिकायिनोऽपि ॥
ग्रीकायिनामान इमेऽपशब्दाद्दासत्वरस्तूवचनात् प्रतीमः ॥४॥
ग्रीकायिलोकोपनिवेशहेतोर्ग्रीस स देश कथित पुरात्वे ॥
तच्चेटलीवासिभिरस्य नाम ग्रीसेति क्लृप्तं खलु रोमकाख्यैः ॥५॥

कालेनास्मिन् ग्रीसदेशे 'आर्थेस'—राजधानीपते कोड्रसनामकस्य महाराजस्य कश्चित् पुत्रस्ततो ग्रीसदेशाद् एशियामाइनरप्रदेशमागत्य तत्र द्वादशनगरीं प्रतिष्ठापयामास । द्वादशनगरोपलक्षितस्य च तस्य प्रदेशस्य 'आइयोन'—इति नामकरणं कृतम् । अयमेव शब्दो यौनशब्दो यवनशब्दयूनानशब्दयो प्रत्युत्पत्तिहेतुरवगम्यते । न तत प्रागेतद्देशस्तत्र यवनशब्द प्रयुक्त आसीदित्यतस्तत्रायं यवनशब्दोऽर्वाचीनोऽस्तीति ब्रूम । तस्य चतस्य यौनयूनानादिनामकरणस्याद्यप्रभृति प्राक्तनचतुःसहस्रवर्षपूर्वोऽयं कालः [illegible]

यशास्त्रग्रंथेषु पुराणेतिहासभुवनकोशेषु प्रयुक्तस्य यवनशब्दस्य तत्परतया प्रयोगासंभवादवश्यं युहूदीपरत्वमेवास्तीति सिद्धम् । युहूदीनां चोपनिवेशोऽयं भारतपश्चिमसमुद्रकूलस्थो यूडियाप्रदेश एवास्तीति युक्तं यवनदेशस्य भारतीयप्रत्यंतदेशत्वम् ॥ इत्थं चैते क्षत्रिया भारतीयार्य्यधर्मात्परिभ्रंशिताःपंचगणा असुरधर्माणोऽयोध्याधिपति—सगरमहाराजसमयादूर्ध्वं प्रसिद्धा अभवन् । तेषां गान्धारकम्बोजादीनां भारतीयभुवनकोशे भारतीयत्वेनाख्यानादवश्यमेषां निवासभूमयो भारतवर्षस्य प्रांतविशेषा आसन्नित्यवगच्छामः ॥

इति षष्ठं प्रमाणम् ॥ ६ ॥

अपि च गान्धारतः पश्चिमोत्तरेषु मद्रेषु यज्ञवेदाध्यापकस्य काप्यमहर्षेर्निवासः

सप्तमं प्रमाणम् ।

वाजसनेयश्रुतौ काप्यमहर्षेर्मद्रदेशवासित्वाख्यानम् ।

तथाहि—वाजसनेयश्रुतौ उद्दालक आरुणिर्याज्ञवल्क्यं प्रति सूत्रात्मानमन्तर्यामिणं च पृच्छन्नाह—

"मद्रेष्ववसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयाना." ॥ इति ॥ ते हीमे यज्ञवेदाध्यापकस्य काप्यस्यर्षे निवासप्रदेशा मद्राः पञ्चत्रिंशे (३५) खलूत्तरेऽक्षांशेऽष्टाचत्वारिंशे (४८) तु ग्रीनवीचमध्यरेखातः पूर्वदेशान्तरे उज्जयिनी मध्यरेखातस्तु अष्टाविंशे (२८) पश्चिमदेशान्तरे सन्निविष्टा अध्यवसीयन्ते यथा हि दक्षिणोत्तरा विहारा. । दक्षिणोत्तरा. कोशलाः । पूर्वोत्तराः पञ्चालाः । दक्षिणोत्तराः कुरव । इत्यवमेते सिन्धोः प्राच्यदेशा द्वेधा विभक्ता आसन् एवमेवैते सिन्धो पश्चिमभागस्था मद्रा अपि दक्षिणोत्तराभ्यां विभक्ताः स्मर्यन्ते । तांश्चैतान् मद्रान् पूर्वकाले [Media] मेडियाशब्देन म्लेच्छा व्यवहरन्ति स्म । किन्त्विदानीमुत्तरमद्राः खुरासान शब्देन दक्षिणमद्रास्तु परसियाशब्देन व्यवह्रियन्ते । कालेन देशविशेषाणां सीमाभेदस्य संज्ञाभेदस्य च प्रकृतिनियमसिद्धत्वात् ।

मद्रदेशाभिज्ञाने नवीनमतप्रत्याख्यानम् ।

केचित्तु पाश्चात्या नयपालचीनान्तरालस्थं भूटानदेशं मद्रदेशत्वेन कल्पयन्ति । तेषां नितान्तमनभिज्ञानां कल्पनायाः निःसारत्वादुपेक्षामात्रं सत्कारः । यच्च पुनरत्र्यत्वे केचिदन्ये पाश्चात्यानुगामिनः पण्डिता इरावतीचन्द्रभागाप्रान्ते मद्रदेशं मन्यन्ते तद्विभ्रान्तम् । सिन्धुनदस्य

भारतीयपश्चिमसीमात्वभ्रमेणोपकल्पितानामीदृशप्रवादानामनादेयत्वात्। भारतीयोदीच्यदेशगणनासु गान्धार-वाह्लीक-पह्लव-शक-यवन-पारद-कम्बोजादिसहकारेण मद्राणामप्युक्ततया तेषामिवैषां मद्राणामपि सिन्धोः पश्चिमप्रान्तीयत्वेनोपगन्त्यत्वाच्च। दृश्यते च सिन्धुनदात् पश्चिमतो विंशत्यं-शान्तरेण मेदिया शब्दप्रसिद्धो देशः। तस्योत्तरमद्रत्वेऽध्यवसिते ततो दक्षिणपूर्वस्यां गान्धार-संलग्नतया दक्षिणमद्रत्वमुपक्लृप्तं भवति। तथा हि सर्वोऽप्यद्यतनोफगानदेशः पुरात्वे गान्धार-देश आसीत्। सर्वश्चायमद्यतन पर्सियादेशः पुरा मद्रदेश आसीदार्य्याणाम्॥ विस्मृतौ हीमौ देशौ गान्धारो मद्रश्च पुराणभारतादिभ्योऽवगम्येते॥ तत्रैते मद्रा गान्धारत. संलग्नप्राया. पश्चिमोत्तरदेशाः स्युः। तथा चैतस्य मद्रस्याद्यतनयोरिस्पहान-तिहरानयोर्नगरयोः प्रदेशे पुरात्वे सन्निविष्टतया तावत्प्रदेशपर्य्यन्तं भारतवर्षमासीदिति विज्ञायते। तत्र च काप्यस्य यज्ञवेदाध्यापकस्य निवासस्तेषां देशानामार्यनिवासभूमित्वं चोपपद्यते॥

इति सप्तमं प्रमाणम्॥ ७॥

अपि च यवनदेशस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानमष्टमं प्रमाणम्।

(१) अद्यत्वे यवनशब्दस्य अर्वदेशप्रान्तविशेषे-यमनदेशे संकोच।

किरातानां पूर्व सीमात्व, यवनानां पश्चिमसीमात्वं भारतवर्षेन्य पुराणेष्वाख्यायते।

यथा मात्स्ये (११४)

योजनानां सहस्रं वे द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तर॥
आयतस्तु कुमारीतो, गङ्गाया. प्रवहावधि.॥ १॥
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेपु सर्वश॥
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे॥ २॥

मार्कण्डेयेपि (५४)

योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्॥
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा॥ ३॥ इति॥

यमन, हेजाज, तिहामा, नेजद. ऐमामा—इत्येवं पञ्चधा विभक्तस्यारबदेशस्य दक्षिण-समुद्रोपकूलस्थो यावान् प्रदेशो यमनशब्देन प्रतिपन्न सोऽयमेवेह प्रदेशो भारतीयैर्यवनत्वेना-ख्यायते। तेन च समसीमतया भूमध्यसागरोपकूलस्था प्रदेशा अप्युपलक्ष्यन्ते। यवन-शब्दश्चायं न केवलं ग्रीसदेशापरपर्य्यायचूनानदेशवासिपर.। किन्तु [illegible]-यानगरोपलक्षितयहूदियाप्रान्तवासियहूदिजातिवचन प्रायेणार्य्यग्रन्थेपु प्रयुज्यते॥

(२) यवनशब्दस्य मुसलमानजातिपरत्वप्रत्याख्यानम् ।

यत्तु यवनशब्दोऽयं मुसलमानजातिपरः । सन्ति हि सिन्धोरत्यासन्ने काबुलादिप्रदेशे पठानजातीयानां भूयांसः सन्निवेशाः । तदभिप्रायेणैवच "पश्चिमे यवनाः स्थिताः"—इत्यादि वचनोपपत्तिरिति सिन्धुनद एवैतस्य भारतवर्षस्य पश्चिमासीमा निष्कृष्यत इति केचिदाहुः—तत्तुच्छम् । मुसलमानानां चतुर्दशशताब्द्या अर्वाचीनतया पुराणनिर्माणकालस्य च चतुःसहस्राब्द्या अभ्यधिकप्राचीनतया पौराणिकभुवनकोशे मुसलमानाभिप्रायेण यवनशब्दप्रयोगासंभवात् ।। पुराणनिर्माणकाले च गान्धारमद्रादिदेशा आर्य्याध्युषिता एवासन्निति महाभारतादि प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवसीयते । तस्मात्सिन्धुनदोपलक्षितप्रान्तस्य भारतसीमात्वं नोपपद्यते ।

(३) पुरायुगे यवनशब्दस्य कैलडियापश्चिमतो युहूदियाप्रान्ते निरूढिः ।

अवश्यं चास्मिन् पश्चिमे भारते इराकदेशापरपर्य्यायः कैलडियाप्रदेशः कालकेयासुरगणाध्युषितः-पुराकालादेवैतन्मद्रदेशात् पश्चिमतोऽनार्य्यगणाध्युषित आसीदति प्राचीनग्रन्थेभ्योऽवगच्छामः । लङ्कावासिरावणकुंभकर्णसोदरभगिन्याः शूर्पणखायाः अस्मिन्नेव कैलडियाप्रदेशे कालकेयासुरतो विवाहसम्बन्धस्य रामायणे व्याख्यायतत्वात् । ततोऽपि पश्चिमतोऽयं यहूदिया प्रदेशः प्रतिपद्यते । त एवैते यहूदीसंज्ञयाऽद्यत्वे प्रसिद्धा जातिविशेषा आर्य्यग्रन्थेषु यवना इत्युच्यन्ते स्म । यत्तु—

> "म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।
> ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किम्पुनर्दैवविद् द्विजः" ।। १ ।।

इति गर्गोक्तेर्ग्रीसापरपर्य्याययूनानदेशवासिवचनोऽयं यवन शब्द इति केचिदाहुः तत्रोच्यते । संभवति हि ग्रीकजातीयानामिवैतेषां यहूदीजातीयानामपि ज्योतिर्विद्यायां नैपुण्यमिति नैतावता यवनशब्दस्य यहूदीवचनत्वं शक्यमपवदितुम् । वराहमिहिरस्याप्यत्रैव देशे ज्योतिर्विद्यालाभस्योनुमानात् । अथवा सिकन्दरराज्यकाले तत्कर्म्मचारितया वहवो यवना इह निवसन्ति स्म । तेभ्य एवास्य वराहमिहिरस्य ज्योतिर्विद्यालाभः संभाव्यते । कालनेमिनामा यवनोऽपि कृष्णद्वेषी मथुरा वरोधको न ग्रीसदेशीयो यवनः । किन्तु यहूदीय एवायं स्यादिति संभाव्यते । अस्या एव जातेः परिवर्तन मोहम्मदजन्मोत्तरकाले मोहम्मदमतग्रहणनिवन्धनो मुसलमानकुलप्रादुर्भाव इति प्रतीयते । त इमे यवना लोहितसागरभूमध्यसागरयोः प्राक्कूलोपलक्षितप्रान्ते प्रायेण पुरात्वे वसन्तिस्मेति यवनानां भारतवर्षीयपश्चिमसीमास्थत्वं साधूपपद्यते ।

यत्तु—अद्यत्वे अर्वदेशस्य दक्षिणपश्चिमप्रान्तमात्रे कनीयसि प्रदेशे यमनशब्दो व्यवहृतो दृश्यते तदिदमन्यान्यजातीयपरराजक्रान्तिनिबन्धनादेषां यवनानां पराभवादस्य यवनदेशस्य संकोचमात्रं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥

इत्यष्टमं प्रमाणम् ॥ ८ ॥

व्याकरणभाष्ये तूरसपर्वताभिप्रायेणादर्शपर्वतस्य भारतीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं

नवमं प्रमाणम् ॥ ९ ॥

अपि चार्य्यावर्तस्य चतुःसीमनिर्देशं कुर्वता भगवता व्याकरणमहाभाष्यकारेण "प्रागादर्शात्, प्रत्यक् कालकवनात्, दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्"—इत्युक्तम्। तत्रायमार्य्यावर्तशब्द उपलक्षणमार्य्यायणस्यापि। आर्य्योपनिवेशस्याभिप्रेतत्वेन दाक्षिणात्यभागरहितयोः पौरस्त्यपाश्चात्ययोर्भारतविभागयोः सहैवात्र विवक्षितत्वात्। तथा च—तत्रादर्शशब्दस्य भूमध्यसागरोत्तरप्रान्तस्थतारसपर्वतवाचितया, सिनाइपर्वतापरपर्य्याय-तूरसपर्वताभिप्रायतया वा प्रतिपत्तिः कार्य्या ॥ समुद्रेण यहूदियाख्ययवनदेशेन च तस्यादर्शस्य तुल्यदेशत्वात्। यत्तु आदर्शशब्देन सिन्धुनददक्षिणकूलस्थं सुलेमानपर्वतं केचित्कल्पयन्ति तन्न युक्तम्। पश्चिमसीमात्वेनोपदिष्टयोः समुद्रयवनदेशयोस्तत्रोपसत्त्यभावात्। अक्षरसाम्येन तारसस्य तूरसस्य वा सिनायिपर्वतस्याऽऽदर्शत्वेन प्रतिपत्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक् ॥

इति नवमं प्रमाणम् ॥ ९ ॥

(१०) त्रिपुरासुरवधाख्याने लौहपुरस्य पृथ्वीलोकस्थत्वाख्यानं दशमं प्रमाणम्।

त्रिपुराशीतिः काव्यम्।

१—श्रौतग्रन्थे ब्राह्मणाख्ये पुराणे, मत्स्यादौ वा त्रैपुराख्यानमुक्तम् ॥
तत्रैकस्याः सामदेशस्थपुर्याः पृथ्वीत्वोक्तिर्विवर्ततेऽन्यत्प्रमाणम् ॥ १ ॥

असुरविभागविशेषस्य मयसंज्ञा।

२—अनेकधा आसन्नसुरा बभूवुर्वर्गैर्विभक्ता भुवि तेषु कश्चित् ॥
वर्गो मयो नाम गतः प्रसिद्धिं मायाख्ययं भूरि चकार मायाम् ॥ २ ॥

तारसाद्रिशृङ्गे उत्तमा काञ्चनी पुरी ।

८—अस्यास्तूदक् पश्चिमे तारसाख्यो योऽद्रिस्तस्मिंस्तारकाख्यो मयोभूत् ।
कूटे हैमी तारकस्याभवत् पू.पामीराद्रेः पश्चिमे स्वर्गरूपा ॥ २७ ॥
सप्तत्रिंशोत्तरा त्तांशे तार साख्योस्ति पर्वत. । (३७ । ० । उ०)
त्रयस्त्रिंशे पूर्वदेशान्तरांशे ग्रीनवीचत. ॥ २८ ॥ (३३ । ० । पू०)
त्रिचत्वारिंशदधिके द्वाचत्वारिंशभागके । (४२ । ४३)
उज्जयिन्याः पश्चिमतस्तारसस्तत्र सा पुरी ॥ २९ ॥

तूराद्रिदक्षिणोपत्यकायां प्रथमा आयसी पुरी ।

९—मध्या येयं त्रैपुरी पूरमुख्यां दिश्येतस्या दक्षिणस्यामदूरे ।
पश्यामोऽन्यं पर्वतं तूरसंज्ञं लोका आहुर्यं सिनायीति नाम्ना ॥ ३० ॥
अष्टाविंशोदगक्षांशे सार्द्धेऽयं तूरपर्वतः । (२८ । ३० । उ०)
चतुस्त्रिंशे दशोपेते पूर्व्यांशे ग्रीनवीचतः ॥ ३१ ॥ (३४ । १० पू०)
त्रयस्त्रिंशत्कलाढ्य‍ैक चत्वारिंशांशके स्थित. । (उज्जयिनीपश्चिमे) (४१।३३)
उज्जयिन्याः पश्चिमतः सिनायी तूरपर्वत. ॥ ३२ ॥

पुरत्रयाध्यक्षास्त्रयस्त्रिपुरासुराः ।

१०—विद्युन्माली तूरशैलेयपुर्य्यामेकोऽर्ध्यक्षो वीर आसीत्पृथिव्याम् ।
मध्ये सिन्धूपह्वरे त्वम्बुजाक्ष. सर्वाध्यक्षोऽन्यश्च सामो मयोऽस्मिन् ॥ ३३ ॥
स्वर्गे त्वासंस्तारसाद्रिस्थपुर्य्यां धीरास्तारस्तारकस्तारकाक्षः ।
मुख्याध्यक्षास्तासु पूःपु त्रयोऽमी विद्युन्माली तारकाक्षोऽम्बुजाक्षः ॥ ३४ ॥
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ।
राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ३५ ॥

इति भारते कर्णपर्वणि त्रयस्त्रिंशाध्यायोक्तेः ।

मात्स्ये सूक्तं तारकाक्षोऽधिराजः काष्र्णायस्यां रौप्यमय्यामधीशः ।
विद्युन्माली, हैमपुर्य्यां मयोऽस्याद् यद्वा सर्वाधीश्वराः सर्व एते ॥ ३५ ॥

पुरत्रयस्य देशान्तरसंचारित्वम् ।

११—अन्तर्भूम्योऽन्तश्छदिर्भित्तयो वा शालाः सर्वा अयसैर्लोहपुर्य्याम् ।
हैम्यां हैमै राजतै रौप्यमय्यां पट्टैः क्रृप्ता आशुयोज्यैर्वियोज्यैः ॥ ३६ ॥

सर्वे रेतैरुद्धृतैर्धातुपट्टैरेता पुर्य्यो यत्र तत्रोपनेतुम् ।
शक्यन्ते स्मानेकधात्वं च नेतुं युद्धे वीरैरप्रवृष्या अभेद्या ॥ ३७ ॥
पुष्ये पुष्ये चान्तरीक्षे त्रिपुर्य्यां विद्युन्माली स्वां पुरीं भूमिलोकात् ।
स्वर्गाल्लोकात् तारकाक्षः पुरीं स्वां नीत्वैकस्यां पुर्य्यवस्थान मैताम् ॥ ३८ ॥
ये वा भौमा आन्तरिक्ष्याश्च दिव्याः सर्वे वीरा. संघशो ध्वंसयेयु ।
सर्ववीर्य्यैरेकहेलाप्रवृत्ता. न स्यादासामल्वपि कापि वृक्णम् ॥ ३९ ॥

त्रिपुरस्य त्रिदुर्गतया तत्प्रजानामवीरत्वाभावः ।

१२—आसन्नासु प्रायशो ये युवानो ये वा वृद्धा बालका याः स्त्रियो वा ।
योद्धारस्ते सर्वदा योद्धुकामा वाणिज्यार्थे शौर्यमेवात्र पण्यम् ॥ ४० ॥
नार्हन्त्येषामन्यदेशीयलोका पूर्दुर्गाणां गोपुरान्त. प्रवेशम् ।
अन्तस्तेषां राजमार्गे प्रतोल्यां वेत्याखड्गस्येव धारावगाह ॥ ४१ ॥

पुरत्रयभङ्गहेतुश्छिद्रम् ।

१३—आसीत् त्वासां छित्तये छिद्रमेकं यस्मिन्काले जायते पुष्ययोग ।
तस्मिन्काले तिस्र एतास्तु पुर्य्य संयुक्ता स्युस्तत्र चैकापुरी स्यात् ॥ ४२ ॥
तस्मिन्पुष्ये वीर एक पुरीस्तास्तिस्रोऽप्येकेनेषुणाऽपारपारम् ।
भेत्तुं सद्यः शक्तु याच्चेत्ततस्ता विध्वस्ता स्युर्नान्यथा ध्वंस आसाम् ॥ ४३ ॥
देवा एतद् ध्वंसनोद्योगिनोऽपि च्छिद्राज्ञानान्नात्र शक्ता बभूवु. ।
इन्द्रं तारस्तारकस्त्वेष विष्णुं युद्धे सार्द्धं सर्वदेवैर्न्यगृह्णन् ॥ ४४ ॥

त्रिपुरस्याजेयत्वादसुराणां स्वर्गविजये ब्रह्मविष्टपस्य तारतुरुतुरानादिनामभिर्व्यपदेशाः ।

१४—तारास्तूरैः साकमेकी भवन्तो देवान् जित्वा नाकिनेशं स्वमासु. ।
ते तं देशं तारतूरेति नाम्नाख्यातं चक्रुश्चोभयेषां स देश. ॥ ४५ ॥
तारतुरस्तारतरस्तातारः तूः क्रमात् प्रसिद्धोऽभूत् ।
तूरास्तत्र तुरुष्कास्तुर्कीतूरांश्च तत्प्रान्त ॥ ४६ ॥
स्वर्गे त्रिविष्टपेऽस्मिन् यावद्दव ब्रह्मविष्टपं प्रदेनम् ।
तत्तूरानिति कथित संप्रति ताातारदेशश्च ॥ ४७ ॥

तारोऽस्त्युच्चः पृथ्व्यां यो देशः सर्वथोच्चतर आसीत् ।
तारतरः स प्रथितस्तातारं तं विदुर्म्लेच्छाः ॥ ४८ ॥
तातारोऽयं दिव्यलोकः पुरासीद् देवान् जित्वा तत्र चोषुस्तुरुष्काः ।
चीनात् प्रत्यक् प्राग् मही सागरान्तात् तारैस्तूरैर्देश आक्रान्त एषः ॥ ४९ ॥
तारासुर वंशधरैस्तारातम्बोलनाम्नेयम् ।
नगरी विनिर्म्मिता प्राक् साद्यापि तु राजधान्यस्ति ॥ ५० ॥
प्राग्मेरुर्यो ब्राह्मो देशः पामीर उच्यतेऽद्यत्वे ।
तत्रेदानीं म्लेच्छा वसन्ति देवानितो विनिष्कास्य ॥ ५१ ॥
यः प्राक् सुमेरुखण्डः स समरकन्दोऽथ तत्खण्डो यः ।
यश्चार्य्यखण्ड आसीत् स तासकन्दश्च यारकन्दश्च ॥ ५२ ॥
मन्दरगिरिर्य आसीद् विलूरताग: स कथ्यतेऽद्यत्वे ।
यः शृङ्गवान् गिरिः प्रागलतायीत्युच्यते सोऽद्य ॥ ५३ ॥
इनशान् खिनघान् शैलः शैलोऽन्यो यावलोनोई ।
विरखोइयनस्कोई, स्तानोवोईति माल्यवच्छाखाः ॥
यो गन्धमादनाद्रिः पश्चिमसीमैशियाभूमेः ।
अद्यत्वे तं शैलं लोका यूरालनाम्नाऽऽहुः ॥
इत्थं तारास्तूरा अप्रथयन्नत्र तातारे ।
शेपाणां तु मयानां मयसोपोटेमियादेशः ॥
आसुरवर्ग उपोत्तमनाम्ना संभाव्यते पुरा कश्चित् ।
तत्सहवासादुक्तो मयसोपोत्तम इति ब्रूमः ॥

पश्चिमभारतेऽप्यसुरप्रवेशः ।

१५—कालक दौह्र द मौर्य्याद्यसुरविभागास्तु यत्र देशेऽस्थुः ।
सोऽसीरियाप्रदेशः कैलडिया कालकेयानाम् ॥
अन्यान्यराजसमये मेशोपोटेमिया इराको वा ।
प्रथितः स एव देशो मयराष्ट्रं सासदेशस्तु ॥

देवैरुपसन्नमक्रपुरत्रयनिर्म्माणम् ।

१६—इत्थं स्वर्गे चान्तरिक्षे च पृथ्व्यां काँश्चिद्देशान् देवतादायभूतान् ।
धृष्टैरुग्रैश्चासुरैः संगृहीतान् दृष्ट्वा देवा व्यग्रचित्ता बभूवुः ॥ ५५ ॥

विद्युन्मालीतारकाक्षोऽम्बुजाक्ष सामात्यास्तारक षड्भिरेते ।
आर्तान्देवान् रक्षितुं देवमुख्या दुर्गांश्चक्रुश्चोपसन्नामकांस्त्रीन् ॥ ५६ ॥
पृथ्व्यामग्निः सोम एषोऽन्तरिक्षे विष्णुः स्वर्गे चोपसत्स्वध्यवात्सु ।
तांस्त्रीन् देवांश्चासुरा षड्भयार्त्तानाश्रित्य प्राग् घोरमामर्दमापुः ॥ ५७ ॥

त्र्यम्बकेण त्रिपुरध्वंसः ।

१७—पश्चाच्छंभुः किञ्चिदुग्रं विचित्रं ब्रह्माण्डाभं स्यन्दनं कारयित्वा ।
तत्रारूढः खेचरे खेचरेऽहन् दैत्यानेतान् पूर्त्रये युध्यमानान् ॥ ५८ ॥
घोरं युद्ध्वा नन्दिना दैत्यराजो विद्युन्माली वज्रतो निहतोऽभूत् ।
दृष्ट्वा घोरामापदं तां मयोऽसौ वापीमस्यां मायया निर्मिमाय ॥ ५९ ॥
मृतसंजीवनीं वापीं तारकाक्षसुतो हरिः ।
विनिर्ममेऽमृतमयीं यो मज्जति स जीवति ॥ ६० ॥
देवैर्युद्धे हन्यमानान् विपन्नान् वाप्यां स्नातान् जीवयामास भूयः ।
विद्युन्माली यो गतेऽह्नि प्रमीतः सोऽप्यन्येद्युर्योधयामास देवान् ॥ ६१ ॥
युद्धेऽमीषां निहतानां मृतानां वाप्यां स्नानान्नित्यमुत्थानमित्थम् ।
दृष्ट्वा देवाश्चिन्तया व्यग्रचित्ता विष्णुं वापीध्वंसहेतुं व्यजानन् ॥ ६२ ॥
विष्णुः कृत्वा वार्षभं रूपमुग्रं मायावापीं तां जगाम त्रिपुर्याम् ।
वापीपालांश्चासुरान्मर्दयित्वा वापीं पीत्वा नर्दयंश्चाजगाम ॥ ६३ ॥
वापीध्वंसाद् ध्वंसितोत्साहवीर्या मर्त्यंभूयस्त्रिपुरा दैत्यवीराः ।
मत्वा तत्रोपस्थितामापदं स्वां रक्षार्थं ते युद्धभूमेः परायन् ॥ ६४ ॥
तेऽपक्रान्ता निन्युरेतां पुरीं स्वामूर्ध्वाकाशे द्राग् नदो सागरस्य ।
तत्रैवागाच्छाम्भवं पृष्ठलग्नं तूर्णं दिव्यं स्यन्दनं सैन्ययुक्तम् ॥ ६५ ॥
दिव्याश्चर्यं निर्मितं शिल्पिदेवैरारूढोऽत्रोऽप्युग्रकर्मा रथापथम् ।
खस्थं शम्भुः खस्थितायां त्रिपुर्यां तांस्तान् वीरान् युध्यतो निर्जघान ॥ ६६ ॥
अत्याश्चर्यं खेचरन्ती पुरीस्ता बाणेनैकेनोभिनत् पुष्ययोगे ।
पुर्य्योऽभूवंस्ता मही सागरेऽन्तर्मग्ना भग्ना पातिता [illegible] ॥ ६७ ॥
पश्चादग्निर्दाहयामास भूयो हर्म्याद्येषामासुराणां पुराणाम् ।
तत्प्राकारा दग्धदग्धैरगारैः सार्धं सिन्धौ [illegible] निपेतुः ॥ ६८ ॥
विद्युन्माली नन्दिना निहतोऽभूत्तनिष्प्राणोऽभिन्नेषुणा [illegible] ।
रक्षायास्तेऽन्यानुपायानदृष्ट्वा निस्साराधं तारमेवाभिजग्मुः ॥ ६९ ॥

तारो वीरः पुत्रपौत्रैः समेतो यावच्छक्यं युध्यमानः स पश्चाद् ।
दृष्ट्वोत्साहभ्रंशमात्मीयसैन्ये भग्नाशः सन् युद्धतोऽस्माद्विरेमे ॥ ७० ॥

महीसागरोपरिस्थात् त्रिपुरासुरपलायनम् ।

१८—आदायैकं स्वं गृहं सोऽपसृत्योपक्रान्तोऽभूत् काप्यविज्ञातदेशे ।
त्यक्त्वा पूर्वोदक् प्रदेशान स दैवान्नैर्ऋत्येऽन्तेगान्महीसागरस्य ॥ ७१ ॥

मिश्रे देशे नीलनद्याः परस्तादन्याप्येका दृश्यते पूश्रि पूली ।
मन्येऽनैषीद् भग्नशेषामिहैतां तत्स्मृत्यर्थं निर्ममेऽन्यां त्रिपूलीम् ॥ ७२ ॥

भूमध्यसागरस्य प्राक् तटवद्दक्षिणेऽपि तटे ।
एकत्रिंशेऽक्षांशे त्रयोदशे ग्रीनवीचांशे ॥ ७३ ॥

नष्टा येषाऽभूत् त्रिपूली पुरीयं तस्याः स्थाने निर्मिताऽन्था त्रिपूली ।
इत्येकस्या अड्डुवायास्त्रिपूल्या ध्वंसात् पश्चाद् द्वे त्रिपूल्यावभूताम् ॥ ७४ ॥

इत्थं शर्वः सर्वमेषां मयानां राष्ट्रं जित्वा संन्ययच्छत् सुरेभ्यः ।
यः प्रागासीत् सामदेशः स पश्चाद्देवाक्रान्तः सीरियेति श्रुतोऽभूत् ॥

तारकासुरसंग्रामः ।

१९—तस्मिन् पश्चात्तारकोऽभ्येत्य भूयो युद्धं चक्रे तत्र बालः कुमारः ।
क्षात्रे वीर्य्ये पूर्णमात्रेऽभिषिक्तः पूर्णोत्साहोऽयोधयन् तारकं तम् ॥ ७५ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७
जम्भक, जम्भ, कुजम्भा, कुञ्जर, महिषौ, च मेघ, शुम्भौ, च ।
८ ९ १०
निमि, कालनेमि, मथनास्तारकसेनासु नायकास्तु दश ॥ ७६ ॥

१ २ ३ ४ ५ ६
शृङ्गी, भृङ्गी, नन्दी, नन्दीशः, शङ्कु कर्णं, रिटी ।
७ ८ ९ १०
तुण्डी, शाख, विशाखौ, स्कन्दः स्कन्दस्य नायकाः सैन्ये ॥ ७७ ॥

शिशुरप्येष कुमारः स्कन्दोऽभ्यस्कन्दयन्महाप्रबलम् ।
तारकमेतं पश्चात् सर्वेऽप्यसुरा दिशो जग्मुः ॥ ७८ ॥

असुरराजविध्वंसेऽप्यसुरप्रजाविध्वंसाभावः ।

२०– देवा यद्यपि विजय प्राप्तास्त्रिपुरासुरान् हत्वा ।
न तथाप्यसुर विशस्ता इलावृत्तात्तान्निर्हरन्ति स्म ॥ ७६ ॥
असुराक्रमणे देवानासुरधर्मेषु दीक्षयांचक्रुः ।
तेन संप्रति देवा दृश्यन्तेऽभ्रश्यत स्वर्गः ॥ ८० ॥

प्रकरणोपसंहारः ।

२१– इत्थं भूमावन्तरिक्षे दिवि प्राग् देवद्विड्भि. स्थापिता या नगर्य्यः ।
तासां भूमावायसी पूरियं भूमध्यात्प्रत्यन्तं भारतं सुव्यनक्ति ॥ ८१ ॥
भूमि पृथ्वी मानुषो लोक उक्तो मर्त्य लोक भारतं वर्षमाहुः ।
मर्त्ये लोके सा मही सागर प्राक् कूले भूमावायसी पू' प्रसिद्धा ॥ ८२ ॥
आद्यात्त्रिंशात्तांशतोऽर्वाक् प्रदेश' पृथ्वी लोको मर्त्यलोको निरुक्तः ।
सप्तत्रिंशादुत्तरः स्वर्गलोको द्यावाभूम्योरन्तरेत्वन्तरिक्षम् ॥ ८३ ॥
पृथ्वीलोकं भारतं प्राहुरार्य्या लोकाध्यक्षत्वेन यत्राग्निरासीत् ।
तत्रैवासीदायसी पूस्ततो भूमध्यात्प्रत्यन्तं भारतं भावयामः ॥ ८४ ॥

इति भारतवर्षस्य महीसागरान्तत्वे दशमं प्रमाणम् ॥१०॥

नवानां भारतीयद्वीपानां मध्ये हिन्दुस्तानस्य नवम कुमारिकाद्वीपत्वाख्यानं भारतवर्षस्य हिन्दुस्तानमात्रपर्य्यवसायित्वाभावे एकादशं प्रमाणम् ॥ ११ ॥

अस्य भारतवर्षस्य दक्षिणोत्तरत सहस्रयोजनत्वं भुवनकोशे निर्दिश्यते यथा मात्स्ये (११४)
"योजनानां सहस्र' तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तर. ।
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः" ॥ इति ॥

मार्कण्डेयेपि—"योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम्" । इति । यत्र योजन-शब्दः क्रोशपरतया नेयः । तथा हि कुमारीशब्दः सिंहलद्वीपेऽपि वर्तते. स्काकान्द माहेश्वर-खण्डीयकुमारिकाऽऽख्यानात्तथावगमात् । सिंहलद्वीपश्चत्वारिंशदधिकसप्तमेंऽशे संनिविष्ट इति सोऽवधिर्दक्षिणे भाव्य. । गङ्गाप्रवाहारम्भस्तु षट्त्रिंशेऽक्षांशे । तथा च तयोरन्तरं साधिका अष्टाविंशत्यंशाः स्युः । एकैकश्चाक्षांशो मीलतृतीयांशोपेतैरूनसप्ततिमीलैः (६९-⅓) सम्पद्यते ।

तेषामष्टाविंशतिगुणतत्वे मीलानां द्विसहस्रप्रायतयातावानस्य दक्षिणोत्तरायामो निष्कृष्यते। मीलशब्दश्चार्द्धक्रोशकल्पे पथि निरूढः। तेन सहस्रक्रोशता सिद्धा। एतच्च मानं सिन्धोः पश्चिमतोऽपि लोहितसागरपर्य्यन्तमुपनीयते। मेशापोटेमियाप्रदेशस्यापि षट्त्रिंशदक्षांशप्रायत्वात्। यत्तु ब्राह्मादिषु।

"उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संतति.॥ १॥ (ब्राह्मो० १७ अ० १ श्लो०)

यच्च मात्स्यादिषु—
"तिर्य्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु।"

इति निर्दिश्यते तत्र कालदोषाल्लेखप्रमादात् पाठभ्रमः संभाव्यते। दशसहस्रसंख्यायाः सर्वथा प्रत्यक्षविरुद्धत्वात् पूर्वापरस्वोक्तिविरोधाच्च। अथवा वर्गात्मकक्रोशानामयमुल्लेखः संभाव्यते। तथा च पूर्वपश्चिमतो नवत्यंशतया साधिकत्रिसहस्रक्रोशमितं दक्षिणोत्तरतस्तु साधिकाष्टाविंशत्यंशतया सहस्रक्रोशमितं चेदं भारतवर्षमिति स्थितम्। यदि तु निरक्षदेशाद् व्यवतिष्ठते। तदा षट्त्रिंशदंशतया ततोऽप्यधिकं दक्षिणोत्तरायामः सिध्यतीत्यूह्यम्।

इति, एकादशं प्रमाणम्॥ ११॥

तुरुष्कदेशस्य भारतवर्षीयोत्तर-सीमात्वाख्यानं द्वादशं प्रमाणम्॥ १२॥

तथा हि—वायव्यादिषु भुवनकोशेष्विदं भारतवर्षं चतु.सीमतयाऽऽख्यातम्।
"पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः।
आन्ध्रा दक्षिणतो वीरतुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे॥ १॥ [वायु १३। ४। इति]

तुरुष्कस्थानं चेदानीं म्लेच्छभाषायां "तुर्किस्तान—" इति तूरान इति तातार इति तारतार इति टारटरी इति चाख्यायते। तद् राजशासनद्वैविध्यादिदानीं द्विधा विभक्तं भवति। पौरस्त्यं पाश्चात्यं च। तत्र पश्चिमं तुरुष्कं राजशासनाधीनं पौरस्त्यं तु चीनराज्यान्तर्गतमिति भेदः। तयोः पौरस्त्यं पौरस्त्यभारतस्य पाश्चात्यं पाश्चात्यभारतस्योत्तरसीमा भवति। सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां (हिन्दुस्थान ईरान) द्विधा विभक्तस्य भारतवर्षस्य साम्येनोत्तरतस्तुरुष्कस्थानोपगमात् तस्योत्तरसीमात्वं साधूपपद्यते। तथा च तुर्किस्तानस्य भारतोत्तरसीमात्वाख्यानात् सिन्धुनदपश्चिमानाम् अफगानिस्तान, ईराक, साम इत्यादीनामपि देशानां भारतसीमान्तर्भुक्तत्वमुपपद्यते। तथा चात्र श्लोका.॥

'स्वर्गोन्तरिक्षं पृथिवीतिभेदाद् द्वीपस्त्रिधासीदिह यो विभक्त' ।
स एष संप्रत्यपि दैवयोगात् म्लेच्छैर्विभक्तोऽस्ति पुनस्त्रिधैव ॥ १ ॥
'उदक्समुद्रानुगतोऽस्ति रूसः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ।
तद्दक्षिणे भाति तुरुष्कदेश. पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ॥ २ ॥
'तद्दक्षिणे दक्षिणसागरेणानु भाषितं भारतवर्षमेतत् ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य ध्रुवं भवेदन्यविभागसाम्यात् ॥ ३ ॥
'रूसो द्विधास्ति द्विविधं तुरुष्कस्थानं तथा भारतवर्षमेतत् ।
सिन्धुस्थपारस्थविभागतोऽस्तु द्विधा तथाऽप्यस्ति तदेकवर्षम् ॥ ४ ॥

इति द्वादशं प्रमाणम् ॥ १२ ॥

अपि च पश्चिमसमुद्रस्य भारतवर्षीयपश्चिमसीमात्वाख्यानं त्रयोदशं प्रमाणम् ॥ १३ ॥

तथा हि इदं भारतवर्षं मार्कण्डेयादि भुवनकोशेषु दिक्त्रये समुद्रैः सवृतमाख्यायते ।

"एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ।
दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधि ॥ १ ॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथागुणः ।"
(मार्क० ५४ अ०) इति ॥

तत्र नायं नर्म्मदासंगमनीय' सह्याद्रिपश्चिमस्थ समुद्रो भारतवर्षस्य पश्चिमसीमा भवितुमर्हति । तस्य दक्षिणापथपश्चिमत्वेऽपि आर्य्यावर्तसाधारणभारतापेक्षया पश्चिमत्वाभावात ॥ मनुस्मृत्यादिषु त्वार्याणां प्रामाणिकशास्त्रेषु पूर्वतः पश्चिमतश्चार्य्यावर्तस्य समुद्रः सीमात्वेनाख्यायते—

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥ (मनु० २ । २२) इति॥

एतेन विन्ध्यपर्वतादुत्तरवर्तिनोऽस्यार्यावर्तस्य पश्चिमतोऽवश्यं समुद्रेण भवितव्यम् । तस्मात् पारस्याखातसमुद्रो लोहितसमुद्रो भूमध्यसमुद्रश्चास्य पश्चिमेऽवधि' साधीयान् संभाव्यते ॥

इति त्रयोदशं प्रमाणम् ॥ १३ ॥

ईरान—बिलोचिस्तानाफगानस्तानादिशब्दानां शासनक्रांतिभेदमूलकत्वेनाव्यवस्थितत्वात् तेषां गणितव्यवस्थितभारतवर्षशब्दप्रयोगप्रतिरोधकत्वासंभवश्चतुर्दशंप्रमाणम् ॥ १४ ॥

इह हि भुवनकोशे देशविभागाः द्विविधा निरूप्यन्ते—राज्यशासनव्यवस्थिताः। भौगोलिकगणितव्यवस्थिताश्च। तत्र शासनकृतविभागा अनित्या अव्यवस्थिताः काले काले विभिद्यन्ते। ये देशा येन राज्ञा जीयन्ते, ते तदायत्तनामरूपाः पूर्वापेक्षया कश्चिदन्येन नाम्ना निर्दिश्यन्ते। अतएव तु भारतीयानामिमे गान्धारदेशा अफगानिस्तानशब्देन, हिङ्गला देशाः प्रथमं सुगदियानाम्ना, पश्चाद्बिलोचिस्ताननाम्ना व्यवह्रियन्ते स्म। पारस्थानमेव पर्सियाशब्देन, ईरानब्देन कैलडियाशब्देन असीरियाशब्देन ईराकशब्देन मेसोपाटेमियाशब्देन च काले कालेऽन्यान्यप्रान्तविभागैर्व्यवह्रियते स्म। वर्म्मात्र देशः पुरायुगे भारतवर्षीय देशो मध्ययुगे हिन्दुस्तानात् पृथक् परिगणित आसीत्। स एव पुनरिदानीं युगे हिन्दुस्तानान्तर्गतो व्यवतिष्ठते। एतन्नियमानुरोधेनैवेदं पश्चिमभारतवर्षमिदानीं युगे भिन्नशासनहेतो राजपुरुषीयव्यवहारविशेषानुरोधाद् भारतवर्षनामतो विहीननभूत्। हिन्दुस्तानमात्रे चेदानीं भारतवर्ष शब्दः संकुचितोऽभूत्। किन्तु वस्तुगत्या नैतौ भारतवर्षशब्दहिन्दुस्तानशब्दौ पर्य्यायवाचिनौ वर्तेते। भारतवर्षीयप्राचीनभुवनकोशानुसारेण राजशासनव्यवस्थामनपेक्ष्य स्वातन्त्र्येण भौगोलिकगणितव्यवस्थया प्रशान्तसमुद्रमारभ्य लोहितसमुद्रभूमध्यसमुद्रपर्य्यन्तप्रदेशे भारतवर्षशब्दस्य नियतत्वात्। अथैतस्य सिन्धुस्थानपारस्थानाभ्यां द्वेधा विभक्ततया सिन्धुस्थानस्य हिन्दुस्तानशब्देन व्यवह्रियमाणतया तस्य भारतवर्षीयप्रान्तविशेषत्वाच्च। नित्यं व्यवस्थितं चेदं संज्ञाकरणं राजशासनानामन्यान्यत्त्वेऽपि न कदाचिद्विचलितं भवति। अत एव पश्चिमभारतस्य अफगानिस्तान, खुरासान ईरान—इत्यादेर्हिन्दुस्तानत्वाभावेऽपि भारतवर्षत्वं नोपहन्यते। भारतवर्षस्य भूवृत्तपादरूपतया प्राचीनार्य्यशास्त्रे सिद्धान्तितत्वादिति सर्वं सुस्थम्॥

इति चतुर्दशं प्रमाणम्॥ १४॥

इत्थं चामीभिश्चतुर्दशभिः प्रमाणैः पूर्वस्यां दिशि चीनसमुद्रमारभ्य पश्चिमतो लोहितसमुद्रपर्य्यन्तं भारतवर्षस्य सीमा भवतीति सिद्धम्॥ ❀॥

इति भारतपरिचये सीमाप्रसङ्गः समाप्तः॥ ३॥



उपद्वीपप्रसङ्गः ॥ ४ ॥

जम्बूद्वीपस्याष्टोपद्वीपभेदाः ।

ननु ब्राह्म—मार्कण्डेय—मात्स्य—स्कान्दादिषु भुवनकोशेष्विन्द्रद्वीपादयो नवोपद्वीपा निरूप्यन्ते । भागवतादिषु तु केषुचिद् भुवनकोशेषु ततोऽन्ये स्वर्णप्रस्थादयोऽष्टोपद्वीपा उच्यन्ते । तथा च विरोधः प्राप्नोति—इति चेन्न । इन्द्रद्वीपादीना भारतीयोपद्वीपत्वेन, स्वर्णप्रस्थादीनां तु जम्बू द्वीपोपद्वीपत्वेनाख्यानाद् विरोधाप्रसक्तेः । तथाचोक्तं भागवते—"जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति । तद्यथा—स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो नारमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्य. सिंहलो लङ्केति ॥, (५।१६) एषां प्रचलितदेशभाषायां नामानि यथा ।

(१) आवर्तन=वर्तानिया=[इगलैण्ड—स्काटलेण्ड—आयर्लैण्डादय.]
(अक्षांश उ० ५१—५८—उज्जयिन्या. पश्चिमदेशान्तरे ७५—८५)

(२) नारमणक=नारवे । स्वेदन । [उ० अक्षाशे ५६—७०,—उज्ज०देशा-पश्चि-४५—७०]

(३) मन्दर—हरिणो=नोविया—जेमूल्या [१ २] [उ० अ० ७१—७८,—उ०प०दे०-६।२३]

(४) पाञ्चजन्य —जापान=द्वीपसंघ. ॥ [साघालियन—जेसो—नीफन—सिकोक—क्यूसू] [१ २ ३ ४ ५] (उ० अ० ५५—३०,—उ० पू० दे० ४०)
इति पञ्चभिर्जनैस्तस्योपपन्नत्वात् पाञ्चजन्यत्वम् ॥

(५) चन्द्रशुक्लः=फीलीपाईन—द्वीपसंघ । चन्द्राय गन्धर्वराजाय पणिभि-रुपायनीकृतत्वात् पण्युपायनस्य तस्य चन्द्रशुक्लत्वम् ॥
(उ० अ० १०—१८,—उ० पू० दे० ३०)

(६)—स्वर्णप्रस्थ.=बोर्नियो—जावाद्वीपसंघ—सुमात्रा. सिंगापुर, पीनाङ्ग, निकोबर, ऐन्दमन [१ २ ३ ४ ५ ६ ७]
(द० अ० १०—उ० अ० १६ उ० पू० दे० १०—२५)
। इत्येतेषां भारतीयोपद्वीपसंघानां स्वर्णप्राचुर्योपलब्ध्या स्वर्णप्रस्थत्वम् ॥

(७) सिंहलद्वीपः = सीलोन, इति नाम्ना प्रसिद्धः ॥
उ० अ० ६—८,—उ० पू० दे० ५

(८) लङ्काद्वीपः = लकेदीव, मालदीव—इति द्वेधा विभक्तो नष्टप्रायः ॥
उ० अ० १—१२,—उ० प० दे० ५

इदं तावद् भूगोलं पूर्वीयपश्चिमीयगोलार्द्धाभ्यां द्वेधा विभज्यते । तत्र पूर्वीयगोलार्द्धस्य जम्बूद्वीप इति संज्ञा क्रियते । अस्ति हि पूर्वगोलार्द्धस्य मध्यप्रदेशे हिरण्यशृङ्गपर्वतान्निर्गत्य पश्चिमदिशि प्रवहन्ती अरालसमुद्रे प्रविशन्ती काचिन्नदी या वेदे यक्षुरित्याम्नाता । तदपभ्रंशेन च म्लेच्छभाषायाम् । 'अक्सस्'– इति साख्यायते ॥ सैव पश्चात् संस्कृतभाषायां 'जम्बू'—इत्याख्यायत । तदपभ्रंशेनच म्लेच्छभाषायाम्— , 'अमू'—इत्याख्यायते । तादृशजम्बूनद्युपलक्षितः पामीरप्रदेश एवासीत् पुरात्वे पूर्वीयगोलार्द्धे प्रधानरूपः समृद्धतमःकेन्द्रभूतः प्रदेशः । तत्रस्थानां देवयुगीयानामिह गोलार्द्धे एकतन्त्रं स्वाराज्यमासीदिति कृत्वा पूर्वीयगोलार्द्धं जम्बूद्वीपशब्देन प्रसिद्धमासीत् ॥ वर्तमानयुगप्रसिद्धौ एशिया–यूरोप–देशौ सोपद्वीपौतस्मिन् पूर्वीयगोलार्द्धे संनिविशेते । अफरीकाष्ट्रेलिययोरप्यत्रैव संनिवेशं केचिदिच्छन्ति । तदसत् । सकोत्रा—मदगास्कार—प्रभृतीनामफरीकोपद्वीपानां पापुआप्रभृतीनामाष्ट्रेलियोपद्वीपानां च जम्बूद्वीपोपद्वीपतया भागवतादिष्वपरिगणितत्वात् । तस्मादफरीकाष्ट्रेलिययोर्जम्बूद्वीपाद्बहिष्ट्वमासुरद्वीपत्वं च प्रत्येतव्यम् । जम्बूद्वीपस्त्वयं दैवतो द्वीपः ॥ तस्यैतस्य महाद्वीपस्यैते आवर्तनादयोऽष्टावुपद्वीपा भवन्तीत्यन्यदेतत् । भारतवर्षस्य तु प्रातिस्विकतया पूर्वोक्ता इन्द्रद्युम्नोदयो नवैवोपद्वीपा इष्यन्ते ॥ तेषां भारतसागरान्तर्वर्तित्वात् । अतएवैतद् भारतीयोपद्वीपसंघो वर्तमानयुगेऽपि म्लेच्छभाषायाम्—"इण्डियनआर्किपैलैगो—"इत्याख्यायते ॥ . . . ॥

इति भारतपरिचये उपद्वीपप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

लङ्काप्रसङ्गः ॥ ५ ॥

द्वादशविप्रतिपत्तिभिः सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वभ्रमखण्डनम् ॥

(१) अत्रेदमपरं बोध्यम्। अद्यत्वे केचन विद्वांसः सिंहलमेव द्वीपं लङ्कामाचक्षते। तन्नितान्तं भ्रान्तमिति ब्रूमः॥ लङ्कादयो हि शब्दा भारतवर्षीयग्रन्थोपलब्धसंज्ञा सन्तीत्येषां भारतवर्षीयग्रन्थाधारेणैव व्यवस्थावकल्पते न तु स्वकपोलकल्पनया यथेच्छ प्रतिपत्तिः॥ अन्यथा प्रमादप्रलपितत्वापत्तेः॥ भारतवर्षीयग्रन्थेषु च सिंहलादन्या लङ्कोपदिश्यते॥ "अथ दक्षिणेन लङ्का-कालाजिन-सौरिकीर्ण-तालिकटा। काञ्ची मरुचीपट्टनचेर्य्यार्य्यक-सिंहला ऋषभा"—इति बृहत्संहितायां (१४) कूर्मविभागे तयो पृथक्त्वेन निर्देशात्। यदि सिंहलद्वीप एव लङ्काऽभविष्यत्, तदा भागवतादिषु सिंहलस्य सप्तमत्वमाख्याय लङ्काया अष्टमत्वं नोपदिष्टमभविष्यत्॥ तस्मादन्या लङ्का अन्यश्चाय सिंहलद्वीप इति सिद्धं भवति॥

इति प्रथमा विप्रतिपत्तिः॥ १॥

(२) अपि च भारतवर्षीययार्य्यग्रन्थेषु लङ्केति निरक्षदेशस्य संज्ञा क्रियते। सिंहलद्वीपस्तूत्तरतश्चत्वरिंशत्कलोपेते सप्तमेऽक्षांशे (७।४०) सन्निविष्ट इति सोऽक्षदेशत्वान्न कदाचिदपि लङ्का भवितुमर्हतीति॥

इति द्वितीया विप्रतिपत्तिः॥ २॥

(३) अपि च यथेदानीं युगे पाश्चात्यैः स्वदेशे ग्रीनवीचनगरे भूमेर्मध्यरेखा प्राकल्प्यत, तथैवेह पुरायुगे भारतवर्षे उज्जयिन्यां नगर्यां सा मध्यरेखा प्रकल्पितासीत्॥ सा च लङ्कोज्जयिनीमेरुस्पर्शिनी व्याख्यायते॥

"यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशन्॥
सूत्रं मेरुगत बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः"—

इत्यभियुक्तोक्तेः। सेयमुज्जयिनी ग्रीनवीचतः त्रिचत्वारिंशत्कलोपेतपञ्चसप्ततितमे (७५।४३) पूर्वदेशान्तरे प्राप्यते, तेन तयोर्मध्यरेखयोः षट्सप्ततिरन्तरांशाः (७६) सिध्यन्ति॥ सीलोननाम्ना प्रसिद्धः सिंहलद्वीपस्तु ग्रीनवीचत पञ्चाशत्कलोपेताशीत्यंशमिते (८०।५०) पूर्वदेशान्तरे संनिविष्ट इत्येतयोर्निरन्तरांशा

भवन्ति ॥ तथा च पञ्चभिरंशैरयं सिंहलद्वीपो भवत्युज्जयिन्यपेक्षया पूर्वदिक्स्थ इति सिंहलारब्धरेखाया उज्जयिनीस्पर्शो नतरां कदापि संभाव्यते । लङ्का तूज्जयिन्याः साम्येन दक्षिणतः षट्सप्ततिमिते श्रीनवीचतः पूर्वदेशान्तरे विवक्ष्यते । तस्मात् सिंहलद्वीपो लङ्का नास्तीति लङ्काशब्देन सिंहलव्यपदेशः केषांचित् साहसमात्रम् ॥

इति तृतिया विप्रतिपत्तिः ॥ ३ ॥

(४) अपिच—"निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्"— इति सिद्धान्तशिरोमणिप्रदर्शितज्योतिर्वित्समयानुसारेणोज्जयिन्या लङ्कापेक्षया सार्द्धद्वाविंशेऽक्षांशे स्थितिरुपपद्यते । सा च विषुवस्पर्शिमालदीवाभिप्रायेण कथंचित्संभवति, सिंहलस्य लङ्कात्वोपगमे तु तस्य निरक्षस्पर्शित्वाभावान्मुख्यनिरक्षस्यैवापादानत्वे स्थिते सार्द्धद्वाविंशेऽवन्तीस्थितिर्नोपपद्येत । दशकलाधिकत्रयोविंशेंऽशे (२३ । १०) उज्जयिन्या अवस्थितत्वात् । तस्मात् सिंहलोऽयं लङ्का नास्तीति सिद्धम् ॥

इति चतुर्थी विप्रतिपत्तिः ॥ ४ ॥

(५) अपि च वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे—

योजनानां शतं चापि कपिरेष खमाप्लुतः ॥ ११६ ॥
योजनानां शतस्यान्ते वनराजिं ददर्श सः ॥ २०५ ॥
शतान्यहं योजनानां क्रमेय सुबहून्यपि ॥
किं पुनः सागरस्यान्तं संख्यातं शतयोजनम् ॥ २ । ४ ॥
योजनानां शतं श्रीमॉस्तीर्त्वाऽप्युत्तमविक्रमः ॥ २ । ३ ॥
शतयोजनविस्तीर्णं-पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥

इत्येवमभ्यासेन महेन्द्रगिरित्रिकूटगिर्य्योः शतयोजनात्मकमन्तरमाख्यायते ॥ तेन चतुःशतक्रोशान्तरे लङ्कायाः संनिवेशोऽध्यवसीयते ॥ स चावश्यं विषुवद्रेखाया-मुपपद्यते ॥ महेन्द्राचलस्य विषुवतो दशाऽक्षांशान्तरितत्वादेकैकांशस्य साधिकोन-सप्ततिमीलात्मकतया सार्द्धत्रिशतीक्रोशान्तरितत्वोपपत्तेः । सिंहलस्य त्वस्य शतार्द्ध-क्रोशमात्रमप्यन्तरं नास्ति तस्मादन्या लङ्का, अन्यश्चायं सिंहलद्वीप इत्यवसितं भवति ॥

इति पंचमी विप्रतिपत्तिः ॥ ५ ॥

(६) अपि च एष खलु सिंहलद्वीप पञ्चत्रिंशदधिकशत (१३५) क्रोशदीर्घ सार्द्धद्वाविंशत्यधिकशत (१२२) क्रोशविस्तीर्ण उपलभ्यते, लङ्काद्वीपस्त्वयं चतुःशत-क्रोशदीर्घो (४००) विंशत्यधिकशत (१२०) क्रोश-विस्तीर्णोरामायणेत्स्मर्यते। "त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता" इति। तत्र विस्तारसाम्येऽपि दीर्घत्वे भूयान् भेदोऽस्तीति नायं सिंहलो लङ्का भवितुमर्हति॥

इति षष्ठो विप्रतिपत्तिः॥ ६॥

(७) अपि चेह सिंहले बहव पर्वता महावलिनाम्नी गङ्गा च प्रसिद्ध्यन्ति। लङ्कायां तु त्रिकूटसुवेलौ द्वौ पर्वतौ बहुधा स्मर्य्यते। यदि तत्र महावलिगङ्गाऽप्यभविष्यत् तत्तर्हि नूनं तस्या अपि रामायणे चरित्रप्रसङ्गे क्वचिदुपयोगोऽभविष्यत्। तस्मात् सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानं प्रमाद॥

इति सप्तमी विप्रतिपत्तिः॥ ७॥

(८) यत्तु—अस्ति खल्वपि सिंहलद्वीपे त्रिकूटाचलो रावणविहारस्थानमशोकवाटिका चेत्येतेषां तत्र सुप्रसिद्ध्यैवास्य सिंहलस्य लङ्कात्वं संभाव्यत इति केचिदालपन्ति तन्न युक्तं प्रतीम। प्रमाणविरोधे प्रसिद्धिमात्रस्यार्थोपपादकत्वायोगात्। अथवा सन्तु तादृशान्यपि तत्र संस्थानानि। पुष्पकविमानेन लङ्कातो भारतवर्षं प्रत्यासीदतो रावणस्य मध्येमार्गं तत्र सिंहलद्वीपेऽपि विश्रमार्थमवस्थानविहारादे संभाव्यमानतया तदर्थं रावणाज्ञया तत्र तादृशसंस्थानादेर्निर्माणसंभवात्। किन्तु नैतावता शक्योऽयमपदार्थः कल्पयितुं यदुच्यते सिंहलोऽयं लङ्कास्तीति। तस्मात् सिंहलस्य लङ्कात्वं भ्रान्तिवादः॥

इति अष्टमी विप्रतिपत्तिः॥ ८॥

(९) यद्यपि यूनानीयग्रन्थेऽस्य सिंहलद्वीपस्य 'टापरोवेन' इति संज्ञा दृश्यते तस्य च शब्दस्य 'टापू रावण' शब्दापभ्रंशत्वप्रतिपत्त्या सिंहलस्य लङ्कात्वमत्यवसीयते इति केचिदाहुः। तदपि भ्रान्तम्। टापूशब्दस्य भारतीय ग्राम्यशब्दतया यूनानदेशे तत्प्रचारायोगात्। अस्तु वा तत्रापि रावणाधिष्ठितत्वाद् रावणटापुत्वं किन्तु नैतावता तस्य लङ्कात्वमुपपद्यते। लङ्कावदेव द्वीपान्तराणामपि महाप्रतापिरावणाधिष्ठितत्व संभवात्। वस्तुतस्तु बौद्धग्रन्थे सिंहलस्य ताम्रपर्णसंज्ञोपलभ्यते, [illegible],

'टापूरोवेन' शब्दः संभाव्यत इति रावणटापूत्वमप्यस्य सिंहलस्य दूरापास्तम्। तस्मादस्य सिंहलस्य लङ्कात्वाख्यानमसङ्गतम् ॥

इति नवमी विप्रतिपत्तिः ॥ ९ ॥

(१०) यदपि च सेतुबन्धरामेश्वरात् सिंहलद्वीपपर्य्यन्तं मध्येसमुद्रमस्ति किञ्चित्किञ्चिदन्तरेण पर्वतानां सन्निवेशः। तदवश्यं रामचन्द्रकृतसेतोर्भग्नावशेषं लक्षणं संभाव्यते। तदेव चैतस्य सिंहलद्वीपस्य लङ्कात्वे जागरूकं प्रमाणं भवितुमर्हतीति केचिदाक्षिपन्ति। तदुपहासास्पदं तुच्छप्रायम्। नहि सेतुं बध्नता रामेण मध्यसमुद्रं पर्वता अवरोपिता, येनैतेषां सेतुचिन्हत्वं संभाव्येत। अपि तु समुद्रोपरि तीर्य्यमाणाभिः शिलाभिरयं सेतुः प्रक्लृप्त आसीत्। ताश्चावश्यं सेतुभङ्गे यतस्ततो विप्लुता विनष्टा एवाभविष्यन्। रामेश्वरसिंहलयोरन्तराले तु पर्वता. पृथ्वीनिर्म्माणकालादेव प्रकृत्या सिद्धाः संभाव्यन्ते न त्वेते रामेण संस्थापिताः। तस्मादेतान् पर्वतानालोक्य सिंहलस्य लङ्कात्वव्यवस्थापनप्रयासो बालक्रीडामात्रमित्युपेक्ष्यते ॥

इति दशमी विप्रतिपत्तिः ॥ १० ॥

(११) यच्च भारतवर्षाद्दक्षिणतो निरक्षस्थाने कश्चिदपि स्थलप्रदेशो नोपलभ्यते। तस्मात् सिंहल एवायं लङ्काद्वीपः स्यात्। भारतवर्षीयार्य्याणां सिंहले निरक्षत्वभ्रमसंभवादिति केचिदुत्प्रेक्षन्ते। तदेतदेषामुक्तमुपहासास्पदं बालचापल्यमात्रमतिधार्ष्ट्यं वा। सर्वजगद्गुरूणामार्य्यमहामहर्षीणां विद्यासंबन्धे भ्रमकल्पनाया. साहसिकत्वात्। को हि नाम सभ्योविद्वानखिलजगत्—प्रत्यक्षकर्तॄणां महामहिमभाजामुपदेशे तावदित्थं भ्रमकल्पनां कुर्याद् ऋते संकीर्णहृदयादसभ्यात् पण्डितंमन्यात्। मेसोपोटेमियादेशे निमरूदप्रतिष्ठापितं बाबिलन्नगरं सम्प्रति नोपलभ्यत इत्येतावता बगदादनगरमेवासीद् बाबिलन्नगरमिति चेत् कश्चिदभ्युपगच्छेत्को नाम तस्य श्रद्दध्यात्। संभवति हि बहुभिः काले केषांचिन्नगराणां विध्वंसो यथा वेदप्रसिद्धानां यव्यावती वसोर्धाराप्रभृतीनाम्। यथा वा पुराणप्रसिद्धानां वस्वोकसारामहोदयपुष्कलावती प्रतिष्ठानादीनामद्योपलब्धिर्नास्ति। भवति च बहूनां द्वीपानामपि कालेन समुद्रगर्भे प्रवेशः। उक्तं च तथा स्कान्दे प्रभासखण्डे द्वासप्ततिशताध्याये(१७२) ॥

भरतो नाम राजाभूदाग्नीध्रः प्रथितः क्षितौ ॥
यस्येदं भारतवर्षं नाम्ना लोकेषु गीयते ॥ १ ॥
भारतं नवधा कृत्वा पुत्रेभ्यः प्रददौ पृथक् ॥
तेषां नामाङ्कितान्येव ततो द्वीपानि जज्ञिरे ॥ २ ॥
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ३ ॥
अयं तु नवमो द्वीपः कुमार्य्या संज्ञितः प्रिये ॥
अष्टौ द्वीपाः समुद्रेण प्लाविताश्च तथापरे ॥ ४ ॥
ग्रामादिदेशसंयुक्ताः स्थिताः सागरमध्यगाः ।
एक एव स्थितस्तेषां कुमार्य्याख्यस्तु सांप्रतम् ॥ ५ ॥—इति ।

एतेन पुत्रेभ्यः समानविभागात् तदात्वे, नवानामपि भारतवर्षभागानां विस्तारसाम्यं प्रतीयते । कालेन तु तेष्वष्टद्वीपानां बहुभिर्भागैः समुद्रगर्भे प्रवेशादतितुच्छभागैरवशेषः स्मर्य्यते । तथा च तद्रीत्या लङ्काद्वीपस्यापि सर्वात्मना संभाव्यते समुद्रगर्भे प्रवेशाद्विलोप इति नैतावता स्थानान्तरस्य स्थानान्तरसंज्ञया व्यपदेशो विद्वद्भिः कर्तुं युज्यते तस्मात्सिंहले लङ्काशब्द-प्रयोगो नितान्तमज्ञानाद् इति बोध्यम् ॥

इत्येकादशी विप्रतिपत्तिः ॥ ११ ॥

(१२) अपि वा अस्त्येव खल्वस्या लङ्काया भग्नावशेषचिह्नमद्यापि ॥ तथा हि यन्नावदुप-लभ्यतेऽद्यत्वे सिंहलद्वीपात् पश्चिमतो नातिदूरे लक्के दीव [Lakkadiv = Laccadive] इत्युपद्वीपः स एव तु पुरा लङ्काद्वीप आसीदित्यध्यवस्यामः । सन्ति हि तस्य लङ्काद्वीपत्वे पञ्चोपष्ट-म्भकानि ॥ ६ ॥

(१) तत्र तावन्नामसादृश्यं पश्यामः लक्केदीव (Lakkadiv)=Lacca) इत्यपरस्य लङ्काद्वीपशब्दस्य रक्षोद्वीपशब्दस्य वापभ्रंशो भवितुमर्हतीत्येकम् ॥ १ ॥

(२) यच्च लक्केदीवप्रदेशात् दक्षिणतो निरक्षदेशोपहरे मालदीवनाम Maldiv. स्थानमुपलभामहे तन्नूनं मालेयद्वीप इति वा मालिद्वीप इति वा संभाव्यते । मालिसंज्ञस्य राक्षस-विशेषस्य निवासोपलक्षितं स्थानं मालिद्वीप । मालिनः पुत्राणां वा अनलानिलहरसंपातीनां मालेयसंज्ञा स्मर्य्यते । ते चैते विभीषणमातुला विभीषणामात्याश्चासन् ।

"अनलश्चानिलश्चैव हरः संपातिरेव च ।
एते विभीषणामात्या मालेयास्ते निशाचराः ।" (उ० कां० ५।४३)

इति रामायणोक्तेः । तन्निवासोपलक्षितं स्थानं मालेयद्वीपः । स चायं मालदीवाख्यो मालिद्वीपोऽद्यत्वे लक्कद्वीपात् पृथक्त्वेनोपलभ्यमानोऽपि पुरात्वे नूनमासीदयं लङ्काया एवैको दक्षिणः प्रान्तः । लङ्काधिपतेर्माल्यवतः कनिष्ठभ्रातृत्वेन तत्सेनापतित्वेन च श्रुतस्य मालेर्लङ्कातोऽतिदूरे द्वीपान्तरे स्थातुमनवक्लृप्तत्वात् । तथा च लङ्कावासित्वेन प्रसिद्धस्य मालिनो राक्षस्य निवासस्थानरूपमालिद्वीपसांनिध्योपपत्त्या ध्रुवमस्य लक्कदीवस्य लङ्काद्वीपत्वमुपपन्नं भवतीति द्वितीयम् ॥ २ ॥

(३) पूर्वं तावदयमेक एवार्थ आसील्लङ्काद्वीपश्च मालिद्वीपश्च अद्यतनोपलब्धलक्केदीवदारभ्यनिरक्षवृत्तादपि दक्षिणतः कियद्दूरपर्य्यन्तं लङ्कायाः सन्निविष्टत्वादद्य पृथक्त्वेनोपलब्धयोरपि लक्केदीवमालदीवयोः पुराकाले एकस्या एव लङ्कायाः प्रान्ताविशेषत्वेनोपगन्तव्यत्वात् ।तथा हि लङ्कायामस्यां सर्वतः पूर्वं सालकटंकटवंश्या राक्षसा वसन्ति स्म । तेषां च तद्वंश्य एव माल्यवन्नाम राजासीत् । माल्यवतोऽवरजः सुमाली प्रधानमन्त्री सर्वकनिष्ठस्तु माली प्रधानसेनापतिरित्येवं त्रयोप्येते भ्रातरः सुकेशपुत्रा विद्युत्केशपौत्राः प्रहेतिप्रपौत्राः अस्या लङ्कायाः प्राधान्येन शासका आसन् । बलदुर्मदान्धैरेतैर्भूयो भूयः प्रपीडितानां प्रजानां रक्षार्थमेते त्रयोपि विष्णुना हृतराज्याधिकारा लङ्कातो निष्कासिता अधस्तात्पातालं गत्वा सपरिवारास्तत्र न्यूषुः। उक्तं चैतत्सर्वमुत्तररामायणे-
"ततः काले सुकेशस्तु जनयामास राघव ॥
माल्यवन्तं सुमालिं च मालिं च बलिनां वरम्" ॥ १ ॥ (५ । ५)
"ऊचुस्ते विश्वकर्म्माणं शिल्पिनां वरमव्ययम् ॥
अस्माकमपि तावत् त्वं गृहं कुरु महामते" ॥ २ ॥ (५ । २०)
"विश्वकर्मा ततस्तेषां निवासं निर्दिदेश ह ॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥ ३
सुवेल इति चाप्यन्यो द्वितीयो राक्षसेश्वर ॥
शिखरे तस्य शैलस्य मध्यमेऽम्बुदसंनिभे ॥ ४ ॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायता ॥
मया लङ्केति नगरी शक्राज्ञप्तेन निर्मिता ॥ ५ ॥

—८०—

तस्यां वसत दुर्धर्षा यूयं राक्षसपुङ्गवा. ।
विश्वकर्मवचः श्रुत्वा गत्वा तामवसन् पुरीम्" ॥ ६ ॥ (५ । २८)
"लङ्कानामपुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।
तत्र स्थिता स्म बाधन्ते सर्वान् देवान्निशाचराः" ॥ ७ ॥ (६ । १५)
"इति माली सुमाली च माल्यवांश्चैव राक्षसा ।
बाधन्ते समरोद्धर्षा ये च तेषां पुर.सरा." ॥ ८ ॥ (६ । ७)
'ये त्वया निहतास्ते तु पौलस्त्या नाम राक्षसा. ।
सुमाली माल्यवान् माली ये च तेषां पुरःसराः ॥ ९ ॥
सर्व एते महाभागा रावणाद् बलवत्तरा." । (८ । २४)
अशक्नुवन्तस्ते विष्णुं प्रतियोद्धुं बलार्दिताः ।
त्यक्त्वा लङ्कां गता वस्तुं पातालं सहपत्नयः ॥ १० ॥ (८ । २२)
सुमालिनं समासाद्य राक्षसं रघुसत्तम ॥
स्थिताः प्रख्यातवीर्य्यास्ते वंशे सालकटंकटे ॥११॥ (८।२३) इत्यादि ॥

अथ माल्यवत्प्रभृतिषु सालकटङ्कटाख्येषु पातालं गतेषु सत्सु लङ्कामेतां कुबेर समागत्य शशास । कालेन तु केनचित् माल्यवद्भ्रातु. सुमालिनः कन्यायां कैकस्यां पुलस्त्यान्महर्षे रावण-कुम्भकर्णशूर्पणखाविभीषणा उदपद्यन्त । तद्बलदर्पित सुमाली स्वदौहित्राय रावणाय लङ्का कुबेराद् ग्रहीतुं प्रेरयामास । स रावणो विनैव युद्धं कुबेराल्लङ्कां गृहीत्वा तत्र राजाऽभवत् । तदवधि पौलस्त्या राक्षसा. प्राधान्येन लङ्कामधिष्ठाय सालकटङ्कटानपि राक्षसान् स्वायत्तान् पालयामासुः । तथा चैतस्या लङ्कानगर्य्यास्त्रेधा कृतो विभाग आसीत् । तत्र मध्यमे लङ्कार्धे पौलस्त्यानां रावणकुम्भकर्णविभीषणप्रमुखानामधिपतीनां राजप्रासादास्त्रिकूटाचले सन्निविष्टा अभूवन् । उत्तरे तु लङ्कार्धे रावणजातीयाः पौलस्त्या नाम राक्षसा वसन्ति स्म । अथ दक्षिणे लङ्कार्धे सालकटङ्कटा माल्यवत्सुमालिसुमालिप्रमुखा राक्षसा न्यूषु. । सेयमेकैव लङ्का त्रिधा विभक्तासीत् । तत्र मध्यमो भागो लङ्काया. समुद्रगर्भे निमग्न. कालेनोच्छिन्नोऽभूदिति नेदानीमुपलभ्यते । उत्तरप्रान्तस्तु भग्नावशिष्टः कश्चिद्भागो रक्षोद्वीपनामा तदपभ्रंशेन लक्कदीव इत्युच्यते । एवमन्या दक्षिणः कश्चन मालेयाध्युषितो भागो भग्नावशेषो मालिद्वीपस्तदपभ्रंशेन मालदीवनाम्नाभिधीयते ॥ इति तृतीयम् ॥ ३ ॥

(४) अपि चास्मिन् लक्कदीवादिमालदीवान्तेऽपद्वीपे निरक्षगर्भत्वमप्युपपद्यते । तथा हि । कृतयुगे तावदियं लङ्कानगरी निरक्षप्रदेशस्थे कस्मिंश्चित् सुवेलपर्वतत्रिकूटपर्वताभ्यामुपलक्षिते

१२०
द्वीपे त्रिकूटाद्रिमध्यमशिखरोपरि सन्निविष्टाऽसीत् । सा च पूर्वापरतो विंशत्यधिकशतक्रो-
४००
शैर्विस्तीर्णा दक्षिणोत्तरतस्तु चतुश्शतक्रोशदीर्घासीदिति रामायणवचनादवगम्यते ।

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा शतयोजनमायतेति तत्रोक्तेः । तेन त्रिकूटैकशिखरस्थाया नगर्य्याश्चतुःशतक्रोशमितत्वे तदुपलक्षितैतद्द्वीपस्य ततोऽप्यधिकदीर्घत्वं संभाव्यते । त्रिकूटादुत्तरतः सुवेलशैलाभिव्याप्त्याचतुर्दिक्षु समुद्रकूलेपूपत्यकाप्रदेशाभिव्याप्तया चैतस्या नगर्य्या वहिर्द्वा परिसरस्थलानामाधिक्यात् । तथा चावश्यं मालदीवादप्यस्माद्दक्षिणतो निरक्षपर्य्योप्ता लङ्काद्वीपस्य दक्षिणपरिसरप्रदेशाः पुरात्वे आसन्निति गम्यते । तथा च नगरीविशेषवाचिनो लङ्काशब्दस्य तदुपलक्षित राष्ट्रेपि मिथिलादिशब्दवल्लोकव्यवहारसिद्धतया द्वीपाभिप्रायेणापि प्रयुज्यमानत्वाल्लङ्काया निरक्षत्वोपपत्तिः ॥ इति चतुर्थम् ॥ ४ ॥

(५) अथेयमुज्जयिनी नगरी ग्रीनवीचमध्यरेखातः साधिकपञ्चसप्तति (७५ । ४३) मिते पूर्वदेशान्तरे सन्निविशते । लङ्कापीयं पुरात्वे तावत्येव पूर्वदेशान्तरे संनिविष्टासीदिति लङ्काया उज्जयिन्याश्च दक्षिणोत्तरतः समसूत्रत्वमापतति । समसूत्रत्वाच्च भारतवर्षीयार्य्य-निदर्शिता भूमध्यरेखा तदुभयस्पर्शिन्युपपद्यते । तेन देशान्तरतोऽपि लकदीवमालदीव-योरेव लङ्कात्वं सिध्यतीति पञ्चमम् ॥ ५ ॥

(६) अपि च सिंहलद्वीपे सोमानाम्न्या रजक्या निवासस्थानमासीदिति सोमवत्यमावास्योपाख्यानादवगम्यते । पुराकालादेव तु दक्षिणापथस्थानां द्रविडादीनां सिंहलद्वीपे भूयांसो वाणिज्यव्यापाराः प्रचरन्ति स्म । वहूनां च दाक्षिणात्यानां राज्ञां सिंहलद्वीपे युद्धानि भवन्ति स्मेति प्रचलित कतिपयेतिहासपिटकाद्विज्ञायते । विजयश्रीविक्रमराजादयो वहव-सूर्य्यवंश्या राजानस्तत्र राज्यं कुर्वन्ति स्म । कुमारदासश्चात्र प्रसिद्धो राजाऽसीत् । तदित्थं मनुष्याणामेवात्र सिंहलद्वीपे पुराकालादारभ्येदानीं यावत् संनिवेशो यातायातं चाख्यायते । न तु राक्षसानामुपनिवेशः पुराकालादिदानीं यावदिह कुत्रापि स्मर्य्यते । लङ्काद्वीपे तु राक्षसानामेवाऽसीत् पुरात्वे निवासस्थानमिति भेदाः । तस्मान्नायं सिंहल-द्वीपः कदापि लङ्कासीदिति निश्चिनुमः । अथैतयोस्तु लकदीवमालदीवयोरद्यापि मनुष्य-मांसभक्षकत्वं वहुषु दृश्यते इति राक्षसवृत्तिप्राणिनामिहोपनिवेशादनयोर्लङ्कात्वं संभाव्यते इति षष्ठम् ॥ ६ ॥

तथा च सिध्यत्यन्यः सिंहलद्वीपोऽन्यश्च लङ्काद्वीप इति युक्तं भागवतादिषु सिंहललङ्कयोः पार्थक्येनाभिधानम् । अयुक्तं च सिंहलस्य लङ्काभिधानम् ।

इति द्वादशी विप्रतिपत्तिः ॥ १२ ॥ इति भारतपरिचये लङ्काप्रसङ्गः समाप्तः ॥५॥

भारतीयभाषाप्रसङ्गः ॥ ६ ॥

दैवीब्राह्मीभेदाद् भारत्या भाषाया द्वैविध्यम् ।

१—छन्दोभाषा संस्कृतभाषाऽथ च नागरी भाषा ।
इत्थं भारतवर्षे कालक्रमतस्त्रिधा भाषा ॥ १ ॥

छन्दोभाषा ।

२—भारतवर्षे द्विविधा भाषाऽऽसीत् पाणिनेः समये ।
छन्दोभाषा दैवी ब्राह्मीनाम्नी तु भारती भाषा ॥ २ ॥
दैवीभाषा स्वर्ग्या देवेषु प्रचलिताऽभवत् स्वर्गे ।
देवानामुच्छेदादुच्छिन्नाऽप्यरित शास्त्रमात्रस्था ॥ ३ ॥

छन्दोभाषायाः सर्वभाषामूलत्वम् ।

छन्दोभाषा त्वेषा जननी प्रतिभाति विश्वभाषाणाम् ।
संस्कृतभाषा चासुरभाषा द्वे ज्येष्ठकन्ये स्त ॥ ४ ॥
संप्रति भाषा बह्व्य संस्कृतभाषाविकारतो जाताः ।
यूरोपसर्वभाषा आसुरभाषाप्रसूता स्यु ॥ ५ ॥
जेन्दावस्ताभाषा त्वासुरभाषा प्रदृश्यते प्रथमा ।
लेटिनभाषा त्वपरा संभाव्यन्ते ततोऽप्यन्या ॥ ६ ॥

छन्दोभाषाया एव इण्डोयूरोपियन भाषात्वम् ।

यस्त्विह वदन्ति लोका इण्डोयूरोपियन नाम्ना ।
आसीद् काचिद् भाषा सा जननी विश्वभाषाणाम ॥ ७ ॥
मन्ये सा हि च्छन्दोभाषैव तु मूलभाषाद्या ।
जेन्दावस्ता छन्दोऽभ्यस्ता सच्छन्द आम्नाय ॥ ८ ॥

भारती भाषा ।

३—*अमरस्य कोशकर्तु समये सा भारती भाषा ।
ब्राह्मी नाम्ना लोके प्रथिताऽऽसीत् स हि नर्थयात ॥ ९ ॥

---

* ब्राह्मी तु भारती भाषा—इति । यत्त्वमरटीकाकारै [illegible]

यवाचित्वं प्रदर्श्यते तदज्ञानात् । भाषाशब्दस्य वाक्पर्यायत्वनौचित्यात् ।

भारतवर्षमनुष्याः संस्कारैः संस्कृता अभवन् ।
भाषा च भारतीयं पाणिनिना संस्कृताऽक्रियत ॥ १० ॥

प्राच्योदीच्यभेदाद् ब्राह्मीभाषाद्वैविध्यम् ।

ब्राह्मी तु भारतीयं भाषाऽऽसीत् प्रचरिता तदा लोके ।
पृथगिव सोदीच्यानां प्राच्यानां चाल्पशो भिन्ना ॥ ११ ॥
सा भारती तु भाषा संस्कारभ्रंशतो विकारेण ।
रूपान्तरतामागाद् द्विजातिधर्मा इवेह कालेन ॥ १२ ॥
दैवी छन्दोभाषा यथाऽभवद् ग्रन्थमात्रस्था ।
तद्वद् ब्राह्मी भाषाऽप्येवाऽभूद् ग्रन्थमात्रस्था ॥ १३ ॥

नागरी भाषा ।

४—संप्रति भारतभाषा प्रवर्तते नागरी नाम्ना ।
वैदेशिकसचिवास्त्विह तामाहुर्हैन्दवी हिन्दीम् ॥ १४ ॥

इति भारतीयभाषाप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

मातृकाप्रसङ्गः ॥ ७ ॥ लिपिप्रसङ्गः ॥ ८ ॥

(वर्णमातृका)

१—पथ्यास्वस्तिरिहासीद् देवयुगेऽक्षरसमाम्नायः ।
सप्तनवतिरिह वर्णाश्छन्दो भाषानुगा उक्ता ॥ १ ॥
यो ब्रह्मराशिरुक्तो वर्णसमाम्नाय उत्तरे तु युगे ।
स चतुःषष्ट्या वर्णैः संस्कृत भाषां प्रवर्तयति ॥ २ ॥
"त्रिषष्टिर्वा चतुःषष्टिर्वर्णाः संभवतो मताः ।"
प्राकृते संस्कृते चापि स्वय प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥
इत्थं पाणिनिरवदद् बहुपूर्वं त्वेष भारते जने ।
पथ्यास्वस्तिरिति प्राग् वेदयुगे वर्णमातृकाम्नाता ॥ ३ ॥
मन्ये ततः स्वयंभूरक्षरमालामिमां ब्राह्मीम् ।
वेदाभिज्ञानार्थं विनिर्ममे सर्वतः पूर्वम् ॥
या वर्णमातृकेयं पञ्चाशद्वर्णतः कृताऽस्त्यास्ति ।
कातंत्रकल्पिता सा वर्तयते नागरीं भाषाम् ॥ ४ ॥

इति भारतपरिचये वर्णमातृकाप्रसङ्गः ॥ ७ ॥

भारतीयब्राह्मीलिपेरस्य प्रचारलोपः ।

लिपिरपि खल्वार्याणां ब्राह्मी लिपिरेव सर्वत पूर्वम् ।
उद्भूद् ब्राह्मी भाषा चेत्युक्तं भारते शान्तौ ॥ ५ ॥
"इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गता ॥" (महाभा० शान्ति० १८८ । १५)
ब्राह्मी भाषा संस्कृतभाषेयं ब्राह्मणैरल्पैः ।
विज्ञायते न सर्वैर्ब्राह्मी तु लिपिर्न लिख्यते ह्यधुना ॥ ६ ॥

वेदमन्त्रनिर्माणकाले लिपिसामान्याभावमतखण्डनाय श्रुतिशब्दव्यपदेशस्य मौलिकरहस्योपपादनम् ।

२—ऋग्वेदश्रुतिनिर्मितिकाले काचिल्लिपिर्नासीत् ।
अत एव कण्ठपाठश्रवणाच्छ्रुतयः श्रुता वेदाः ॥ ७ ॥

इत्थं ब्रुवते केचित् पाश्चात्याः कल्पनारसिकाः ।
अनभिज्ञास्ते नूनं भारतवैदिकरहस्यविज्ञाने ॥ ८ ॥
विबुधैस्तु भारतीयैः संकेतित एष यत्रार्थे ।
श्रुति शब्दः प्राक् कालात् तं संकेतं प्रवक्ष्यामि ॥ ९ ॥
सत्यानां धर्माणां ज्ञाने हेतुः प्रमाणमित्युक्तः ।
प्रत्यक्षं ह्यनुमानं शास्त्रं चेति त्रिधा तत्स्यात् ॥ १० ॥
दृष्टि श्रुतिः स्मृतिर्वा निबन्ध इति हेतवो ज्ञाने ।
दृष्टेः प्रत्यक्षत्वं शास्त्रत्वं तु श्रुतिस्मृत्योः ॥ ११ ॥
चक्षुषि सत्यं निहितं चक्षुर्ह्यत्यदोषमनुपाधि ।
एकं तदेव मुख्यं प्रमाणमन्यत्तु तदपेक्षम् ॥ १२ ॥
वाक्यानपेक्षवाक्यं श्रुतिरिति मीमांसया सिद्धम् ।
दृष्टिः श्रुतिरेकोर्थो वेदाः प्रत्यक्षमित्याहुः ॥ १३ ॥
द्रष्टुर्वाक्यं श्रुतिरिति संकेतो दृष्टिमूला सा ।
द्रष्टा दृष्टं ब्रूते शृणुते श्रोता च दृष्टमेवार्थम् ॥ १४ ॥
दृष्टिः स्वतःप्रमाणं द्रष्टुर्वाक्यं स्वतःप्रमाणं स्यात् ।
प्राथमिकं तज्ज्ञानं न ज्ञानाज्ज्ञानमवतीर्णम् ॥ १५ ॥
श्रोतुर्वाक्यं स्मृतिरिति संकेतो नात्र वक्ताऽयम् ।
स्वीयां दृष्टिं ब्रूते परानुभूतं गिराऽभिनयेत् ॥ १६ ॥
स्मृतिरिति मतमनुमानं तल्लिङ्गज्ञानतो ज्ञानम् ।
नाप्तः स्वयं स वक्ता श्रुतवानाप्तात् स्मृतः सोऽर्थः ॥ १७ ॥
परपुरुषीयप्रत्ययने योऽस्य प्रत्ययस्तस्मात् ।
परतःप्रमाणमेतद्वाक्यं वाक्यान्तरापेक्षम् ॥ १८ ॥
द्रष्टृवाक्यं यावन्नोपष्टम्भकतयाऽयमाश्रयते ।
न च तावत्स्वं वाक्यं शक्नोत्येप प्रमाणयितुम् ॥ १९ ॥
इत्थं शास्त्रं द्विविधं स्वत.प्रमाणं परप्रमाणं च ।
नात परं तृतीयं शास्त्रं संभाव्यते किमपि ॥ २० ॥
परत·प्रमाणशास्त्रे यत्र द्वैविध्यमापतति ।
विप्रतिपत्तावन्योऽनुमानमत्र प्रवर्तयति ॥ २१ ॥

अनुमानाद् यद्युभयोर्विरुद्धवाचो स तात्पर्यम् ।
पृथगिव नीत्वा सत्यं गृहीयात्स हि निबन्ध स्यात ॥ २२ ॥
अपि च निबन्धं शास्त्र मन्यन्ते तस्य शास्त्रत्वम् ।
शास्त्रानुबन्धत. स्यादुपचारात् सोस्ति तर्कस्तु ॥ २३ ॥
सर्वमपीदं वाङ्मयमित्थं ज्ञेया प्रमाण स्यात् ।
यत् पुनरेभ्यो भिन्नं तदप्रमाणं प्रलापः स. ॥ २४ ॥
न तु केवलमिदमित्थं भारत एव प्रमाणमुपपाद्यम् ।
देशेषु किन्त्वशेषेष्वशेषभाषास्विदं तुल्यम् ॥ २५ ॥
किन्त्विह भारतवर्षे तदिदं मीमासितं तस्मात् ।
संकेताय नियक्ता' श्रुतिस्मृतिप्रभृतय. शब्दा ॥ २६ ॥
इति पूर्वेषां विदुषां संकेतं ये न जानन्ति ।
भ्रान्तं श्रुतिशब्दार्थ प्रकल्प्य ते भ्रामयन्त्यन्यान् ॥ २७ ॥
इह भारतीय विचारहस्यशिक्षामनासाद्य ।
भारतशास्त्रपदानां विक्षेपणमित्थमन्याय्यम् ॥ २८ ॥
न ह्येषश्रुतिशब्दो मन्त्रार्थे मन्त्रसहितासूक्त ।
लिपिकाले त्वविशेषान्मन्त्रे च ब्राह्मणे चोक्त ॥ २९ ॥
श्रवणाच्छ्रु तिरभविष्यच्छ्रु तिशब्दस्तर्ह्यवश्यमभविष्यत् ।
ऋग्वेदेऽप्युल्लिखित. किंतु न लिपिशब्दवत्स तत्रास्ति ॥ ३० ॥
श्रवणाद्यदि श्रुति. स्याच्छ्रु तिशब्दस्तर्हि न प्रयुक्तः स्यात् ।
लिपिकालोत्पन्नेषु ग्रन्थेषु ब्राह्मणाख्येषु ॥ ३१ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे वैदिकं प्रथमं प्रमाणम् ॥ १ ॥

३—अपि चाब्रुवते केचिद् लिपिर भविष्यत्तु वेदसमये चेद ।
लिपिलेखनीमसीनामप्यभविष्यत् क्वचोल्लेख ॥ ३२ ॥
तत्र ब्रूमो लिप्युल्लेखार्थो न प्रसङ्ग आयात. ।
तेन स तत्र न दृष्टो न तु हेतुर्लिप्यभावे स्म ॥ ३३ ॥
श्रुति शब्दोऽपि तु मन्त्रे मन्त्र प्ररत्वेन न कश्चिद्दृष्ट ।
अथ मन्यसे तु मन्त्रे श्रुतिशब्दं तद्वदिह विद्यात् ॥ ३४ ॥

अथवा दृश्यत एव तु वेदे लिखनार्थशब्दोऽपि ।
लेखन्याश्च लिपेरपि सत्त्वं शक्यं ततो ज्ञातुम् ॥ ३५ ॥
यजुषश्च संहितायाः पञ्चदशेऽध्याय आम्नातम् ।
छन्दः क्षुरोभ्रज इति क्षुरधातुर्विलिखेन दृष्टः ॥ ३६ ॥
"अक्षर पंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दो, विष्टारपंक्तिश्छन्दः ।
क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ३७ ॥ (इति यजुः संहिता १५ । ४)
कस्याचिच्छायां तु—'क्षुरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः—" इति पृथक्त्वेनाम्नायते ॥

तत्राप्यक्षरपदयोः साहचर्य्यादिह लोहनिर्मिता पूर्वयुगीया लेखन्येव क्षुरः संभाव्यते । पुरायुगे सूक्ष्मखनित्रेणैव सूच्याकारेणाक्षरलिपेः क्रियायाः संभाव्यमानत्वात् । भ्रज इति पत्रोल्लिखिता प्रकाशमाना वागेव स्यात् ।

अक्षरपंक्तिर्वर्णैः पदपङ्क्तिः स्यात् पदैर्यथा वाक्यैः ।
विष्टार पंक्तिरेवं क्षुरोभ्रजो लिपिकृतं मन्ये ॥ ३८ ॥
क्षुरसा लेखन्या या लिखनाद् भ्राजेत दृश्येत ।
लिपिरेव सा तु वाक् स्याच्छन्दस्तच्च क्षुरोभ्रजो नाम ॥ ३९ ॥
छन्दः सर्वं वाङ्मयमक्षरपदवाक्यसाहचर्य्याच्च ।
अक्षरलिखनादन्यत् विलिखनमिह नोपपद्येत ॥ ४० ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्वे वैदिकं द्वितीयं प्रमाणम् ॥ २ ॥

४—अन्यच्च तत्र काले लिपिसत्वेऽस्ति प्रमाणमत्रैव ।
विद्यासूक्ते वक्ति हि बृहस्पतिर्दर्शनं वाचाम् ॥ ४१ ॥
"उतत्त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः" ॥४२॥ (ऋ०सं० १० । ७१)
वाचामुच्चरितानां श्रवणं तु यथा तथैव लिखितानाम् ।
वाचां ग्रन्थमयीनां दर्शनमुपपद्यतेऽर्थवीधाय ॥ ४३ ॥
मूर्तिं विना च वाचां दर्शनमुपपद्यते क्वापि ।
तस्माल्लिपिरिह वाचां मूर्तिरवश्यं तदाप्यासीत् ॥ ४४ ॥
लिपिसंकेतविज्ञः पश्यन्न च तां ददर्श वाक्त्वेन ।
शृण्वन्न शृणोत्येतां वेत्ति न यस्त्वर्थ-संकेतम् ॥ ४५ ॥

वैदिकं तृतीयं प्रमाणम् ॥ इति ॥

वैदिकं तृतीयं प्रमाणम् ॥ ३ ॥

५—अपि च पुरा देवयुगे सत्त्वे कस्याश्चिदेव देवलिपे ।
मन्त्रकृतामाचारं वीक्षे नूनं प्रमाणतया ॥ ४६ ॥
कृत्सनृपो गन्धर्वो हृतराज्यो दस्युभि. पुराकाले ।
विकलश्चिन्तामापत् त प्रति घोर. प्रगाथ इत्याहु ॥ ४७ ॥
❀ माचिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं स चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ ४८ ॥ (८ । १ । १)
याभि काण्वस्योपबर्हिरासदं यासद्वज्री भिनन् पुर' ।
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुयं पुरन्दर ॥ ४९ ॥ (८ । १ । ८)
इत्यादिष्ट कुत्सः शक्रमुपेत्येन्द्रसखकाण्व ।
गीतान्याह्वानार्थं न्यवेदयद् भद्रसूक्तानि ॥५०॥
आयाहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्द्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते ॥
भद्रा इन्द्रस्य रातय ॥ ५१ ॥ (८ । ६२ । ४)
यच्चिद्धित्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्रभूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम ॥ ५२ ॥ (८ । १ । ३)
एन्द्र या हि मत्स्व चित्रेण देवराधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरासोमेभिरुरुस्फिरम ॥ ५३ ॥ (८ । १ । २३)
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५४ ॥ (८ । ३४ । १)
कण्वानां तु न चैषां स्वर्गे गमनं श्रुतं तत्र काले ।
लिखितं विना नु भारतभूस्थैं शक्यं स आह्वय. कर्तुम ॥ ५५ ॥

❀ प्रगाथ' काण्व आह—हे [illegible] । [illegible]
चानेन राज्यहरणादिदु.खेनातितरां चिन्ताविह्वलितान्तरा भ[illegible] । [illegible]
काम प्रवर्षकं भगवन्तमिन्द्रमेवाश्रयत। उक्था = उक्थै[illegible] । (८।१।१)
अपि च—अस्मै इन्द्राय गायत्र [illegible] ।

तस्मादवश्यमेते विलिख्य कण्वा इमानि सूक्तानि ।
इन्द्रस्यागमनार्थं कुत्सकरात् प्रेषयामासुः ॥ ५६ ॥
मन्यामहे ततः प्राग् वैदिकमन्त्रावतारकालेपि ।
आसील्लिपिप्रचारो विबुधैरुद्भावितः कुशलैः ॥ ५७ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले लिपिसत्त्वे चतुर्थं प्रमाणम् ॥ ४ ॥

६—ऋज्राश्वो नामासीत् पश्चिमभारत ऋषिः कश्चित् ।
जरदस्त्रस्तस्याभूद्दौहित्रो ब्राह्मणद्वेषी ॥ ५८ ॥
ब्राह्मणविद्वेषात् स हि तेषां ब्राह्मीं लिपिं त्यक्त्वा ।
विपरीतां तु खरोष्ट्रीं लिपिमन्यां कल्पयामास ॥ ५९ ॥
ब्राह्मी वामाद्दक्षिणमेति खरोष्ठी तु दक्षिणाद्वामम् ।
शाकद्वीपेऽन्यत्र च लिपिः खरोष्ठी प्रचलिताभूत् ॥ ६० ॥
अस्याः पुनः खरोष्ठ्या विकारतोऽनेकलिपयः स्युः ।
विपरीताचरणादथ जरदस्त्रमतोनुगा मगाः ख्याताः ॥ ६१ ॥
शाकद्वीपिमगा इह पणिभिः सह भारतेऽभ्येत्य ॥
कीकटदेशे न्यूषुस्तं देशं मगधमाचख्युः ॥ ६२ ॥
तेषां प्रसङ्गतस्त्विह लिपिः खरोष्ठी समागता मगधे ॥
ब्राह्मी लिपिरासीत् प्राक् तेन द्विविधा लिपिः प्रचरिताऽत्र ॥ ६३ ॥
ब्राह्म्या बह्व्यो बह्व्यो विकृतय आसन् खरोष्ठ्याश्च ।
ता अपि वामाद्दक्षिणमथ वामं दक्षिणादायन् ॥ ६४ ॥
मगधे पाटलिपुत्रे बभूव सम्राडशोकः प्राक् ।
स लिपी उभयविधे अपि निजराष्ट्रे वर्तयामास ॥ ६५ ॥
इत्थं द्विविधो लेखो वामावर्ती च दक्षिणावर्ती ।
अद्यावधि प्रचरितो लोके सर्वत्र दृश्यते प्रायः ॥ ६६ ॥
वामार्तिन्यास्त्विह जरदस्त्रो जन्मदी लिप्याः ।
ब्राह्मीलिपेर्विरोधादेष च भिन्नक्रमं लिपौ चक्रे ॥ ६७ ॥
तेन स्पष्टं सिध्यति जरदस्त्रस्याद्य जन्मतः पूर्वम् ।
ब्राह्मी लिपिः प्रचरिता सर्वत्रासीत् पुराकालात् ॥ ६८ ॥

पञ्चमं प्रमाणम् ॥ ५ ॥

७—परिपूर्णसभ्यतायां वृत्तायां निर्म्मिता इमा श्रुतय ।
वैज्ञानिकता ह्येषां दृश्यत इह सभ्यतामूलम् ॥ ६६ ॥
राजप्रजाविभाग सामाजिकता च धर्मनीतिश्च ।
कार्य्याकार्य्यविभागो दृश्यत इह सभ्यताचिह्नम् ॥ ७० ॥
कालेऽनादौ लक्षाधिकेषु वर्षेष्वतीतेषु ।
वेदा इमेऽवतीर्णा वहुषु च शास्त्रेष्वतीतेषु ॥ ७१ ॥
पूर्वे साध्या देवा पूर्व्या धर्माश्च पूर्वजा गाथा ।
पूर्वाण्याख्यानान्यपि वहुधोल्लिख्यन्त इह वेदे ॥ ७२ ॥
तस्मादेभ्यो वेदग्रन्थेभ्योऽपि च पुरातनेके ।
उन्नत्यवनतिपर्य्ययधारा लोकेऽवगम्यन्ते ॥ ७३ ॥
एतद्वेदात् प्रागपि वह्वयो विद्या अनेकधा भाषाः ।
नाना लिपयो जाता सम्भाव्यन्ते विलुप्ताश्च ॥ ७४ ॥
प्रकृतिक्रमानभिज्ञाः सहस्रपट्कान्तरार्थमात्रदृश ।
कालविलुप्तानर्थान्नाभ्युपगच्छन्त्यदर्शनाद्धेनो ॥ ७५ ॥
अद्यत्वे त्विह वाङ्मयमुपलब्ध यावदेवास्ति ।
सर्वस्मादपि तस्माद्वेद. प्राचीन इति सत्यम ॥ ७६ ॥
वेदात्प्रागपि विद्या भाषा लिपयोऽनुवृत्तास्तेन ।
ध्रुवमत्र वेदकालेऽप्येता आसन्निति न्रूम ॥ ७७ ॥

षष्ठं प्रमाणम् ॥ ६ ॥

८—यास्कोऽप्याह निरुक्ते (१ । ६ । ५) धर्मान दृष्ट्वेव पुराऽनृ ।
श्रुत्वा मन्त्रग्रहणात्तमा इम ग्रन्थमानन्नु ॥ ७८ ॥
विल्मो विभिन्नखण्डो विल्मग्रहणान कल्पितो [illegible] ।
लिपिमन्तरेण भिन्नो भिन्न खण्डो न शक्यते [illegible] ॥ ७९ ॥

सप्तमं प्रमाणम् ॥ ७ ॥

९—द्वैपायनश्च कृष्णो हिमवति बदरीवने निवसन ।
वेदं व्यस्यन् मन्त्रान्संगृह्य तुस [illegible] ॥ ८० ॥

मन्त्राणां संकलनं तेषां चानेकसंहिता रचनम् ।
लिपिमन्तरेण कर्तुं न शक्यमेकेन पुरुषेण ॥ ८१ ॥

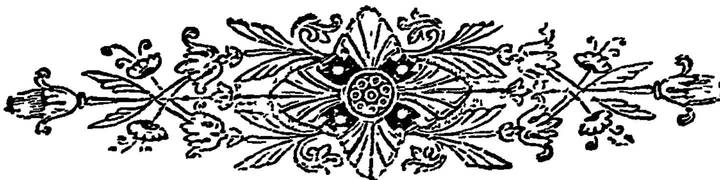
अष्टमं प्रमाणम् ॥ ८ ॥

१०—साहसिकः पुनरन्यस्त्वदूरदर्शीत्यदीर्घदर्शीति ।
मागधराजशोकात् प्राग् लिपिसत्वं न भावयति ॥ ८२ ॥
हन्ताशोकस्य द्वाविंशतिशतकल्पवर्षाणि । [२२५०]
प्रययुः किन्त्विह रामः पञ्चसहस्रान्दतोऽभवत्पूर्वम् ॥ ८३ ॥
रामस्यापि च समये लिपिरासीदिति पुरा हनुमान् ।
नामाङ्किताङ्गुलीयकमदर्शयत् तत्र जानक्यै ॥ ८४ ॥
"वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्" ॥ ८५ ॥ [वाल्मी०सु० ३६ । २]
चीनपरिव्राडासीदित्सङ्गस्तद्वचः प्रमाणं ये ।
भारतविद्वच्छास्त्रं तु न प्रमाणं वदन्ति ते धन्याः ॥ ८६ ॥

मन्त्रनिर्माणकाले विद्यमानाया लिपेर्ब्राह्मीसंज्ञा ।

११—इत्थं च वेदकाले लिपिसत्त्वे सन्ति हेतवः कतिचित् ।
सा च लिपि र्ब्राह्मी वा दैवी वा नामतोन्या वा ॥ ८७ ॥

इति भारतपरिचये लिपिप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ८ ॥



सभ्यताप्रसङ्गः ॥ ६ ॥

देव युगेभारतवर्षस्य परमोन्नतिः ।

अपि पूर्वस्मिन् काले परमोन्नतिशिखरमायाता ।
एते तु भारतीया विश्वेषां शिक्षका अभवन् ॥ १ ॥
एष गुरुः सर्वेषां देशानामुत्तमो देशः ।
अत एवास्य मनुःप्रागवर्णयद् गौरवं पूर्णम् ॥ २ ॥
"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः" । (मनुः)
न तदात्वे यवनानां न रोमकाणां न चीनानाम् ।
ज्ञानं बलं च लक्ष्मीस्तथा यथा भारतीयानाम् ॥ ३ ॥
ज्ञानं तेषामधिकं तत इह विद्याश्चतुःषष्टिः ।
भारतवर्षे प्रथमं प्रादुर्भूता असामान्याः ॥ ४ ॥
बलमपि तेषामधिकं बहवोऽत्रेह चक्रवर्त्तिनोऽभूवन् ।
सप्तसमुद्रां पृथ्वीं मांधातैकः शशास तच्चोक्तम् ॥ ५ ॥
"यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते" । (विष्णुपु॰ अ॰ २१ श्लो॰ ३५)
अमरीकाख्यो देशो देशो यो वाऽफरीकाख्यः ।
यूरोप एशिया तान् सर्वान् शास्ति स्म मान्धाता ॥ ६ ॥
पाताले गन्धर्वैर्वीरा नागाः प्रपीडिताः सन्तः ।
शरणमगुर्मान्धातुः स हि तेषां रक्षणंचक्रे ॥ ७ ॥
इक्ष्वाकुश्च ययातिः शशबिन्दुर्हैहयः सगरः ।
एवं क च रविवंश्याः क च शशिवंश्योऽभवन् सम्राट् ॥ ८ ॥
एषा सुवर्णभूमिर्गौरेषा दोग्धि भूयसीलक्ष्मीं ।
अन्नधनैः स्वान् बिभ्रत्यन्यान् देशान् बिभर्ति स्माऽत्रापि ॥ ९ ॥

इति भारतपरिचये सभ्यताप्रसङ्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

धर्मप्रसङ्गः ॥ १० ॥

भारतीय धर्माणां वैज्ञानिकत्वम् ।

अत्राचारविचाराः वैज्ञानिकनियतिभावनाक्लृप्ता ।
तेनेह लौकिका अपि धर्मा इह पारलौकिकाः सर्वे ॥ १ ॥
सर्वेभ्योऽपि च देशान्तरीयधर्मेभ्य उत्कर्षः ।
धर्मेऽत्र भारतीये यदयं लोकद्वयौपयिकः ॥ २ ॥
मतभेदा बहवोऽस्मिन्नैको मार्गोऽत्र सुस्थिरः कश्चित् ।
इति दोषं ब्रुवतेऽन्ये भारतवर्षीयधर्मेऽस्मिन् ॥ ३ ॥
अनभिज्ञास्ते भारतधर्म्मरहस्यादसूक्ष्मदृशः ।
नैषा नीतिर्नायं भारतधर्म्मो यदृच्छयाक्लृप्तः ॥ ४ ॥
वैज्ञानिकस्तु धर्म्मः सर्वेषां नैकरूपः स्यात् ।
अपि देशकालपात्रप्रभेदतो भिन्नतौचित्यात् ॥ ५ ॥
नरकल्पितस्तु धर्म्मो नीतित्वात् संभवत्येकः ।
वैज्ञानिको मनुष्यो न च स्वतन्त्रोऽभिनेतुमेकतया ॥ ६ ॥
वैज्ञानिको हि सूक्ष्मोपपत्तिको भारते धर्म्मः ।
तस्य तदेव महत्त्वं यदनेकत्वं रवीन्दुनियतत्वात् ॥ ७ ॥

भारतीयधर्मस्वरूपम् ।

यो धृतः सन् धारयते स धर्म्मः । स्वरूपसंपादको गुणो धर्म्मः । प्रजासंरक्षणे दीक्षितो राजा भवति । दीक्षितोऽधिकारं प्राप्तः । यावता प्रजां स्वदीक्षानुसारेण पालयेत् तावता स राजा स्यात् । दुष्टनिग्रहानुग्रहाभ्यां शान्तिसंरक्षणं पालनम् । स यद्येतन्न कुर्य्यात् न स तर्हि राजेत्युक्तः स्यात् स स्वरूपाद् विच्यवेत । मनुष्यत्वमस्यावशिष्येत न राजत्वम् । तस्माद्राजस्वरूपसंपादकमिदंकर्म्म धृतं सद् राजानं धारयति तेनायं राज्ञो धर्म्मः । अतएवाहुः—"धर्म्म एव हतो हन्ति धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।"

धर्म्मो द्विविधः—प्राकृतः संस्कृतश्च । यत्र मनुष्याणां हेयत्वोपादेयत्वयोः स्वायत्तत्वं नास्ति स प्रकृत्या सिद्धः सर्वो गुणः प्राकृतो धर्म्मः । यथा मनुष्यत्वादिः मैथिलत्वसारस्वतत्वादिः । यावांस्तु गुणो मनुष्यैः स्वायत्ततयोपपाद्यते मनुष्येषु मनुष्यैराधीयते स संस्कारजन्यत्वात् संस्कृतो

धर्म्म. । यथा राजत्वं प्राड्विवाकत्व गुरुत्व भृत्यत्वम् । एवमादयो गुणा अधिकारयोगा [illegible] । तस्मात्ते संस्कृता धर्मा. ।

अष्टधा व्याक्रियन्ते हीमे धर्म्माः—

१ दीक्षाव्रतम् ।	५ पुष्टि. ।
२ संस्कार ।	६ शान्ति. ।
३ आचारव्रतम् ।	७ स्वस्त्ययनम् ।
४ शुद्धिः ।	८ आनृशस्यम् ।

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां जन्मना लब्धोऽधिकारो दीक्षा । कुलक्रमागतं कर्म [illegible] । अधिकारवृत्तिर्दीक्षाव्रतम् । तत्र ब्राह्मण व्याख्यास्याम ।

१ स्वयं विज्ञानान्युपार्जयेत् । परेभ्यो विज्ञानान्युपदिशेत् । तत् तप. ।

२ स्वयं यज्ञैर्यज्ञपुरुषं याजयेत् । परेभ्यो यज्ञैर्यज्ञपुरुष याजयेत । स यज्ञ ।

३ राजभ्यो धनाढ्येभ्यश्च कररूपेण प्रतिगृह्णीयात । दीनेभ्यो जीवन [illegible] । तद्दानम् ॥

यथाऽयं क्षत्रियो राजा आधिभौतिकेभ्यो दुःखेभ्यो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यान प्रजा [illegible] । सरक्षणशुल्कतया करं प्रतिगृह्णाति । सत्यामावश्यकतायामधिकमपि समये समये प्रतिगृह्णाति । दीनदरिद्रेभ्यस्तज्जीवनार्थं ददाति च । तथायं ब्राह्मणो [illegible] ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यान् प्रजा' संरक्षति । सरक्षणशुल्कतया राजभ्योऽपि करं प्रतिगृह्णाति । [illegible] तायामधिकमपि समये समये प्रतिगृह्णाति । यथा राज [illegible] नानि भवन्ति तथामुष्य ब्राह्मणोदेवयजनमण्डलाधीनाः [illegible] भवन्ति ॥

भोजमहाभोजौ राजानौ । चक्रवर्तिसार्वभौमौ सम्राजौ । [illegible] विराजाविति चतुःकक्षं क्षत्रं भवति । तथा द्विजो विप्रो देवो [illegible] । [illegible] ब्रह्मा मूर्धाभिषिक्तश्च लोकानां दीक्षापालौ भवत. । एतावेव सर्वा प्रजा [illegible] ॥ [illegible] क्षत्रमनुशास्ति । तस्माद् ब्राह्मणो राजभ्य कर प्रतिगृह्णाति ॥ यथा [illegible] । नगरे सर्वमापणं सर्वा वीथ्यो राजमार्गा राज्ञ एव । राजानुमत्या च सर्वा. प्रजा [illegible] एवमेवं तेषां राज्ञामपि तत्र तत्राधिकारो ब्राह्मणानुमत्या प्रतिपत्तव्य । [illegible] । [illegible] राज्ञोऽधिपति । राजा वैश्यवर्गस्याधिपति । यदि प्रजा. सर्वा [illegible] स्युः राजाज्ञां नानुपालयेयु. स तर्हि राजा [illegible] यितु शक्नोति । एवं यदि राजान. सर्वे विप्रतिपन्धिनः स्यु [illegible]

स तर्हि ब्रह्मा ब्रह्मवीर्य्याच्च्युतोऽनधिकारो भवति न स्वधर्म्मं परिपालयितुं शक्नोति । यथा शरीरे आग्नेयमुदरमण्डलं—वायव्यमुरोमण्डलं—ऐन्द्रं शिरोमण्डलं परस्परानुगृहीतं वीर्य्यवद् भवति । पृथक्कृतं चेतदेकैकं स्वतन्त्रं सन्निर्वीर्य्यं मृतं भवति । तथेदं विण्मण्डलं क्षत्रमण्डलं ब्रह्ममण्डलं च पृथक्कृतं सदेकैकं स्वतन्त्रं भूत्वा निर्वीर्य्यं मृतं भवति । स्वतन्त्रा वैश्या न राजाज्ञामनुपालयति स्वतन्त्राश्च राजानो न ब्राह्मणाज्ञामनुपालयन्ति । तेनैते त्रयोऽपि निर्वीर्य्या मृता इव संप्रति दृश्यन्ते । परस्परानुगृहीतास्त्वेते स्वं स्वं धर्म्ममसंकीर्णमनुवर्तमाना वीर्य्यवन्तः स्युः । सर्वैश्चैतैः स्वस्व धर्म्मानसांकर्य्येणानुतिष्ठद्भिरेकः समाजात्मा जीवितो भवति । तत्रायं ब्राह्मणः समाजात्मनः शिरःस्थानीयः ॥ स एष व्याख्यातः ॥ १ ॥ एवमुरःस्थानीयः क्षत्रियः । उदरस्थानीयो वैश्यश्चव्याख्यातव्यः । अस्य हि समाजरूपस्यात्मनोऽयं ब्राह्मणस्तावदाधिदैविकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाच्चर्म्मस्थानीयोन्तरङ्गोऽङ्गरक्षको भवतीति शर्म्मेत्युच्यते—"चर्मेति मानुषं शर्म्म देवत्रा"! (श० १ । १ । ४ ।४) इति श्रुतेः । क्षत्रियस्तु आधिभौतिकव्यापत्तिनिवर्तकत्वाद् वर्मस्थानीयो बहिरङ्गोऽङ्गरक्षको भवतीति वर्म्मेत्युच्यते ॥ द्वाविमौ गोपयितारौ भवतः । यस्तु ताभ्यामुभाभ्यां संगुप्यते स गुप्तो वैश्यः । तेषामेषां त्रयाणां स्वस्व व्रतोपयोगिशक्तिप्रवर्धककर्मकरणं स्वस्वव्रतोपयोगिशक्तिव्यापादककर्म्मपरित्यागश्च प्रातिस्विको धर्म्मः सिद्धो भवतीति विज्ञेयम् ।

वैज्ञानिकधर्मनिबन्धनं भारतवर्षमहत्त्वम् ।

एतद् भारतवर्षप्रशंसनं यत्पुराणेषु ।
वैज्ञानिकं तदुक्तं धर्म्मो न यदृच्छयाऽत्र क्लृप्तोऽस्ति ॥ १ ॥
अस्मिन्वर्षे वेदविज्ञानधारा दीक्षा शिक्षापूर्णपाकोदयेन ।
दिव्या धर्म्मा यादृशाः सन्ति दृष्टा दृश्यन्ते ते नान्यदेशेषु तद्वत् ॥ २ ॥
चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यमेवं चातुर्वर्ग्यं यज्ञदाने तपश्च ।
इष्टापूर्ते दत्तमाराधना वा तीर्थत्रयाणां देवतानां गुरूणाम् ॥ ३ ॥
इत्थं दृष्टा वेदविद्भिः पुराणैरस्मिन्वर्षे भारते धर्म्मभेदाः ।
अत्रैवैषामस्ति सम्यग् विधानं देशेऽन्यस्मिन् सन्ति नैषामुदर्काः ॥ ४ ॥
एतत्सत्यं वर्णयन्ति स्म पूर्वे सूक्ष्मप्रेक्षादक्षपौराणिकाग्र्याः ।
ब्राह्मेऽध्याये पञ्चविंशे पुराणे भूयो भूयोऽन्यत्र चान्यत्र चेति ॥ ५ ॥

पौराणिकं भारतवर्षमाहात्म्यम् ।

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति किञ्चन ।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्रस्तुवन्त्यभिवाञ्छितम् ॥ १ ॥

धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ २ ॥
प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम् ।
सर्वदानफलं यत्र सर्वयज्ञ फलं तथा ॥ ३ ॥
तीर्थयज्ञफलं सम्यक् गुरुसेवाफलं तथा ।
देवताराधनफलं गार्हस्थ्ये चैव यत्फलम् ॥ ४ ॥
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छंति शोभनम् ।
नाना व्रत फलं यत्र नाना शास्त्रफल तथा ॥ ५ ॥
अहिंसादिफलं सम्यक् फलं सर्वाभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्मचर्य्यफलं यत्र स्वाध्यायेन च यत्फलम् ॥ ६ ॥
यत्फलं वनवासेन संन्यासेन च यत्फलम् ।
इष्टापूर्त्त. फलं चैव तथाऽन्यच्छुभकर्मणाम् ॥ ७ ॥
प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र. क्वचिद्भुवि ।
क शक्नोति गुणान्वक्तु भारतस्याखिलानपि ॥ ८ ॥ [ब्रह्मपुराण. २४ अध्याय]

भारतीयमहर्षीणां वैज्ञानिकतया दूरदर्शित्वम् ।

अत्रत्या विद्वांसो मान्या ब्रह्मर्षय. पूर्वे ।
विज्ञानं तदपश्यन् येनापश्यन् परत्र कर्म्मफलम् ॥ १ ॥
मरणोत्तरमयमात्मा विलुप्यते सर्वथेति नावेयात् ।
जीवन्निव स तदानीमपि सुखदु.खे ननु गतो भुंक्ते ॥ २ ॥
इह यत्कर्म कृतं स्याच्छुभमशुभं वा फल अरं तस्य ।
लभते परत्र जीवः स्वर्गसुखं यातनां याम्याम् ॥ ३ ॥
यज्ञस्तपश्च दानानीष्टापूर्त्तं च दत्तं च ।
कर्म्म स्वर्गप्राप्त्यै विकर्म्म चाकर्म्म ॥ ४ ॥

इत्थं यज्ञं कुर्य्यादित्थं कुर्य्यात् तपश्च दानं च ।
परपीडनं न कुर्य्याद् वपुषा वचसा च मनसा च ॥ ५ ॥
पारत्रिकमिदमित्थं धर्म्मश्चार्थश्च कामश्च ।
मोक्षश्च भारतीयैः पूर्वैर्विज्ञानतो दृष्टः ॥ ६ ॥

कुर्वन्ति भारतीया एव परलोकसाधनं कर्म्म ।
उत्तरजन्मन्युत्तमयोनिनिदानंत एव जानन्ति ॥ ७ ॥
इतरजनाः श्रद्दधते परलोके नैवमज्ञानात् ।
तेषां सर्वमपीदं कर्म्मैहिकभोगसाधनं नियतम् ॥ ८ ॥
अद्येतरवर्षीयप्रोन्नतिकालोऽस्ति किन्तु तत्रापि ।
नैषां तद्विज्ञानं मस्तिष्केऽद्यापि संरूढम् ॥ ९ ॥
धन्यं भारतवर्षं यत्रैतद्बहु पुरातने काले ।
विज्ञानं प्रतिबुद्धं सर्वा पृथ्वी यतोऽनभिज्ञास्ति ॥ १० ॥

उन्नत्यवनतिविचारे भारतीयानां प्राचां विदुषां सिद्धान्तः ।

क्षीणभारतोपहासानौचित्यम् ।

१—भारतवर्षस्यास्य प्राचीनं गौरवं श्रुत्वा ॥
अद्यत्वेऽवनतं तद् दृष्ट्वोपहसन्ति वैदेश्याः ॥ १ ॥
धाष्ट्यं तदेतदेषामनभिज्ञत्वं बालकत्वं च ॥
अपमानयन्ति ये तु क्षीणं दैवापराधेन ॥ २ ॥
अपि युद्ध्यतोर्द्वयोरिह जयति क्व च दुर्बलो दैवात् ॥
दैवापराधतश्च क्वापि पराजीयते प्रबलः ॥ ३ ॥

धर्म्मरक्षोपेक्षाया भारतावनतिहेतुत्वम् ।

२—भारतवर्षाधिपतिर्भारतधर्म्मं न हन्त पालयति ॥
संप्रति भारतवर्षे शास्तुरुपेक्षैव हेतुरवनत्याः ॥ ४ ॥
भारतवर्षाधिपतिर्यमिदानीमुन्नतेरस्य ।
हेतुं पश्यति स ध्रुवमवनतिहेतुस्ततोऽवनतिः ॥ ५ ॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया अवनतिहेतुत्वाभावः ।

३—अध्यनभिज्ञाः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।
अवनतिहेतुं प्राहुर्न त्वेते दूरदर्शिनः सन्ति ॥ ६ ॥
भारतवर्षे यावच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।
आसीत् सुदृढं तावत् परमोन्नतिरस्य देशस्य ॥ ७ ॥

यद्वधि राज्ञोऽसत्वाच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानम् ।
अभवच्छिथिलं लोके तत आरम्भो निपातस्य ॥ ८ ॥

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया एव भारतीयोन्नतिहेतुत्वम् ।

४—यत्तु ब्रूयुः केचिच्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थाया ।
देशान्तरेष्वसत्वेऽप्युन्नतिरस्तीत्यहेतु सा ॥ ९ ॥
तत्र ब्रूमः सोन्नतिरेतद्देशोन्नतेस्तुलनाम् ।
नार्हति भारतवर्षोन्नतिरासीदुन्नतिः परमा ॥ १० ॥
भारतवर्षस्योन्नतिरथ चोन्नतिरन्यदेशानाम् ।
भिद्यत इतरेतरतः परमं त्वेवान्तरं हि तयोः ॥ ११ ॥
आत्मोन्नतिरिह परमा भौतिक्युन्नतिरथान्यदेशेषु ।
भौती परसापेक्षा निरपेक्षा त्वात्मनः सिद्धिः ॥ १२ ॥

विज्ञानतेजसोः संपत्त्यै प्रथमतः शिल्पद्वारा धनापेक्षा ।

५—आत्मोन्नतिरिह यद्यपि परमोन्नतिरस्ति किन्तु नोदेति ।
न विना धन संपत्त्या न च राजानुग्रहेण विना ॥ १३ ॥
अन्योन्याव्यतिरेकात सिद्धिस्त्रिष्वन्योन्यापेक्षा ।
उदरस्य च हृदयस्य च शिरसश्च यथा घनिष्ठसंबन्धः ॥ १४ ॥
धनतः प्राणोत्साहो धनतो विज्ञानमुपयाति ।
प्राणोत्साहादपि वा धनमपि विज्ञानमायाति ॥ १५ ॥
विज्ञानतो धनं च प्राणोत्साहश्च जायेते ।
सिद्धेनैकेनान्यद् द्वयमपि सिद्धं ध्रुवं भवति ॥ १६ ॥
यावद् भारतवर्षे नोत्साहो नास्ति विज्ञानम् ।
तावद् धनमधिकाधिकमपेक्ष्यतेऽन्यस्य संसिद्ध्यै ॥ १७ ॥
विज्ञानतेजसोरिह यावदभावोऽस्ति भारते वर्षे ।
शिल्पैरेव तु तावद्धनानि ते साधनीयानि ॥ १८ ॥
सिद्धे प्राणोत्साहे विज्ञाने वा पुनर्धनापेक्षा ।
न स्यात् सर्वेऽप्यर्था विज्ञानेनैव साध्येरन् ॥ १९ ॥

विज्ञानं हि महार्थं मन्दार्थं तद्धनं भवति ।
यद्यद्धनैरसाध्यं तद्विज्ञानेन साध्यते न चिरात् ॥ २० ॥

शिल्पविज्ञानस्य आत्मोन्नतिहेतुविज्ञानत्वाभावः ।

वपुर्बलाभ्युन्नतितो धनोन्नतिः परा ततोऽपि प्रवरा प्रतीयते ।
प्राणोन्नतिः किन्तु ततोऽपि शस्यते ज्ञानोन्नतिर्नास्ति ततः परोन्नतिः ॥ १ ॥
ज्ञानोन्नतिर्यद्यपि शिल्पगाधुनाप्यस्त्येव देशेष्वखिलेषु भूयसा ।
तथापि सा भूतबलव्यपेक्षया पराश्रिताऽस्तीति न सातिशस्यते ॥ २ ॥
यदस्ति शिल्पोन्नतिकारिशिल्पिनां विज्ञानमेतत्तु कथंचिदिष्यते ।
लोकोपकारीह धनाप्तिकारणं तथापि नात्मोन्नतिहेतुरस्ति तत् ॥ ३ ॥

आत्मोन्नत्यपेक्षया धनोन्नतेरत्यन्तनिकृष्टत्वम् ।

यथेच्छलब्धिं सुखसाधनानां तत्साधनानामपि साधनानाम् ।
स्वर्णादिकानामुपलब्धिमद्य त्वभ्युन्नतिं प्राहुरिहान्यदेश्याः ॥ १ ॥
धनं सुखायास्तु तदेव दुःखस्याप्यस्ति हेतुः क्वचनातिशय्यं ।
अमर्षणेर्ष्यादिविरोधमूला उपद्रवा अप्यत उद्भवन्ति ॥ २ ॥
तेनर्षिजाता इह भारतीयाः धनोन्नतिं नोन्नतिमाहुरार्याः ।
आत्मोन्नतिस्तून्नतिरिष्यते तैराध्यात्मिकीमुन्नतिमास्थुरेते ॥ ३ ॥

तेजोविज्ञानाभ्यामिव धनेनात्मावलम्बनस्वातन्त्र्याभावः ।

प्राणादपि विज्ञानात् सिध्यत्यात्मावलम्बनं लोके ।
न तथा धनेन शक्यं न धनं सर्वत्र सह भवति ॥ १ ॥
धनिकानामिह गर्वो यत्र धने तस्य ते स्ववशात् ।
रक्षां कर्तुमशक्ता यदि राजा नानुगृह्णीयात् ॥ २ ॥

धनोन्नतेर्निकृष्टत्वे त्रिदोषोत्पादकत्वहेतुः ।

धनैरुन्नतिस्तावदेवोन्नतिः स्यान्न यावन्मनः प्राणयोरुन्नतिः स्यात् ।
मनः प्राण आत्मेयमात्मोन्नतिश्चेत् परेषां श्रियोऽप्यस्य सर्वा वशे स्युः ॥ १ ॥

धनोन्नतिर्भतपरिग्रहोन्नतिर्नाभ्युन्नतिर्वास्तविकी प्रनीयते ।
दोषाकुलत्वात् सहसा भवन्ति हि त्रयोऽत्र दोषा मुग्धाधनजन्मा ॥ २ ॥
आराममार्गा तरवोऽयनस्था राजेच्छया सर्वजनोपभोग्या ।
तथा धन सर्वविधं तु बाह्यं राजेच्छयैवैकजनो भुनक्ति ॥ ३ ॥
तस्माद्धनं सर्वविधं हि राज्ञो न तु स्वकीयं धननास्ति किञ्चित् ।
ममेदमस्तीति वृथाभिमानो यथा प्रगृह्यस्य शुकस्य भोग्ये ॥ ४ ॥
पित्रा भृत वलृप्तसमृद्धभाव. शिशु स्वभाग्योपचयान् सुखोऽस्तु ।
भोग्ये न तस्यात्मबलप्रभावस्तस्मान्न सात्मोन्नतिरिष्यतेऽस्य ॥ ५ ॥
तथा नृपानुग्रहलब्धवित्त. सुखानि भुङ्क्तां स्विमनेन जातम् ।
राज्ञः कृपा सास्ति, नृपानपेक्षं तद्रक्षणोऽस्यास्ति जनो न शक्तः ॥ ६ ॥
दु खं क्षये दु खत एव लाभो मिथो विरोधाश्च कृते धनानाम् ।
दु खानुविद्धं धनत सुखं स्याद्धन क्वचिज्जीवननाशहेतु ॥ ७ ॥
शस्त्रास्त्रयोगेन तु विक्रमोऽयमन्यद्विक्रमस्योपार्जयति शस्त्रम् ।
क्लैब्यं स वैक्लव्यमुपैत्यशक्तो न स्वात्मना किञ्चिदलं स [illegible] ॥ ८ ॥
धनानि भाराय भवन्त्यशक्तेर्धनानि भाराय भवन्त्यबुद्धे ।
धनैर्वणिक्त्वं न धनैर्नृप स्यादुत्साह [illegible] नृपो [illegible] ॥ ९ ॥

नैसर्गिकोत्साहतेजसोमध्यमकक्षा[illegible]न्तोन्नतिस्वम् ।

उत्साह आत्मोन्नतिरस्ति शक्तिस्तेजश्च तत [illegible] ।
उपैति भूयांसि धनानि लक्ष्मी[illegible] ॥ [illegible] ॥
उत्साहआत्मोन्नतिरस्ति तस्माद् [illegible] ।
संपद्यते तेन परानन्यानपीत्तेऽस्यास्ति [illegible] ॥ [illegible] ॥
आत्मा प्राण प्राण उत्साह एतस्मा[illegible] ।
नो दारिद्र्य वित्ततो यो दरिद्रो [illegible] ॥ [illegible] ॥
वित्तादस्योत्साह उत्साहतो वा [illegible] ।
यस्तूत्साहो चित्तजन्मा स मन्दो [illegible] ॥ [illegible] ॥

बाह्यसंपत्त्यपेक्षया प्राणसंपत्तेः[illegible] ।

यावत्यो वा लोके दृश्यंते श[illegible] ।
प्राणस्तासां कोश प्राणविद्या एव ता [illegible] ॥ [illegible] ॥

योऽल्पप्राणः सोऽसावकिञ्चनोऽत्यल्पशक्तित्वात् ।
यावानधिकः प्राणो यत्र स तावान् विशिष्यते लोके ॥ २ ॥
तस्मादिह वहिरङ्गो न भूतभारस्तथोन्नतेर्मूलम् ।
प्राणोऽयमन्तरङ्गो यथात्मनोऽभ्युन्नतिं कुरुते ॥ ३ ॥

प्राणसंपत्त्यपेक्षया विज्ञानसंपत्तेरात्यन्तिकोन्नतिहेतुत्वम् ।

प्राणाभिवृद्धिहेतुर्विज्ञानं साधितं धर्मैः ।
यद्विषये विज्ञानं पूर्णं तत्रैव सिद्धः स्यात् ॥ १ ॥
देशान्तरवदिदानीं भारतवर्षेऽपि जनतायाः ।
वैज्ञानिको न मूर्द्धा प्रदृश्यते हन्त दुर्योगात् ॥ २ ॥

अपस्वार्थिनां धनहेतुकसुखभोगप्रवणानां मोघजीवत्वम् ।

सुखभोगोन्नतिरित्याहुर्भोगलिप्सवो लोकाः ।
ते त्विह पशुसामान्याः पशवोऽपि हि भोगमीप्सन्ते ॥ १ ॥
एषा ह्यासुरबुद्धिर्यात्त्यन्तं स्वार्थपरता स्यात् ।
स सुखप्रवणः पशुवज्जीवत्युदरंभरिर्मोघम् ॥ २ ॥
मोघाशास्ते मोघकर्माण एते मोघ तेषां जीवितं जन्म मोघम् ।
येषां पाकः कर्म्म वा जीवितं वा स्वार्थान्धानां सर्वमेवात्महेतोः ॥ ३ ॥
किमनेन यत् स जीवति का हानिर्वा न जीवेच्चेत् ।
विज्ञानवीर्य्यविकलस्यजननिः श्रेयसी धनिनः ॥ ४ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा जीवनसारस्ततो जगतः ।
क्रियतेऽभ्युन्नतिरेतेनेदं जगदुपकृतं भवति ॥ ५ ॥
विज्ञानं वीर्य्यं वा भवति मनुष्ये मनुष्यत्वम् ।
विज्ञानावीर्य्यरहितः सुखभुक् स्याद् राजकृपयैव ॥ ६ ॥

विज्ञानतेजसोर्ब्रह्मक्षत्रवीर्य्ययोरुत्पत्तौ चातुर्वर्ण्यधर्म्मानुपालनं हेतुः ।

क्षत्रं वीर्य्यं ब्रह्म तु विज्ञानं या तदुन्नतिः क्रियते ।
सैवोन्नतिरिह वाच्या न धनोन्नतिरुन्नतिः कल्प्या ॥ १ ॥

आत्मनि मनसि प्राणे यावन्न वलं प्रवर्त्ततेऽतिशयात्।
विज्ञानं वीर्य्यं वा तावत्पुरुपेपु नोदेति ॥ २ ॥
क्वचिदिह मनसि प्राणे तद्वलमुदितं स्वतो भवति।
अपि वा साधनतस्तत्पुरुपेऽवश्यं समुद्भवति ॥ ३ ॥
चातुर्वर्ण्यं धर्म्मं व्यवस्थया यदि तु साधयति।
पुरुपे वलं तदेदं ब्रह्मक्षत्रं समुद्भवति ॥ ४ ॥

अयथाकृतस्य चातुर्वर्ण्यधर्म्मस्य वीर्य्योत्पत्तौ हेतुत्वाभावः।

विज्ञानं तु ब्रह्मवीर्य्यं निरुक्तं यस्तूत्साह क्षात्रवीर्य्यं तदाहुः।
विड्वीर्य्यं तद् यानि शिल्पानि लोके पूर्वं पूर्वं श्रेष्ठमेषां त्रयाणाम् ॥ १ ॥
वलमवले तु शरीरे व्यायामादिभिरुपायतस्तु यथा।
जनयति तद्वज्जनयति चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थया वीर्य्यम् ॥ २ ॥
नियतोपायविरुद्धो व्यायामो हानिकृद् वृथा भवति।
अयथाकृतं तथेदं चातुर्वर्ण्यं वृथा धर्म्मम् ॥ ३ ॥
तदिदं चातुर्वर्ण्यं वैदिकज्ञानतः सम्यग्।
ज्ञातं सम्यक् चरितं ब्रह्मक्षत्रादिवीर्य्यजनकं स्यात् ॥ ४ ॥
तस्मात् प्रथमं वैदिकविज्ञानं साधु जानीयात्।
तेनाधिदैविकार्था अध्यात्मं साधु नीताः स्यु ॥ ५ ॥
चातुर्वर्ण्यस्येदं शैथिल्यं तु व्यवस्थायाः।
अवनतिहेतुर्भारतवर्षस्याद्यत्व आभाति ॥ ६ ॥
धर्म्मप्राणं भारतवर्षं शिल्पे श्लथं पुरैवाभूत्।
धर्म्मेप्यधुना शिथिलं भूत्वोभयतोऽभवद् भ्रष्टम् ॥ ७ ॥

भारतस्य पुनरभ्युत्थाने चातुर्वर्ण्यधर्म्मानुपालनस्यैव हेतुत्वम्।

चातुर्वर्ण्ये धर्म्मे यदि भूयोऽभ्युन्नतिं कुर्य्यात्।
नूनं प्राग्वदिदानीमप्यात्मोन्नतिमलं यायात् ॥ १ ॥
चातुर्वर्ण्ये धर्मेऽभिज्ञानार्थं प्रवृत्यर्थम्।
वैदिकविज्ञानानां वाहुल्येन प्रचार उपपाद्यः ॥ २ ॥

चातुर्वर्ण्यधर्म्मप्रवृत्यर्थं वैदिकविज्ञानप्रचारबाहुल्यस्यावश्यकत्वम् ।

भारतधर्म्मरहस्यं वैदिकविज्ञानतः प्रतीयेत ।

ज्ञानादुदियाच्छ्रद्धा ततः प्रवृत्तिः स्वतः प्रभवेत् ॥ १ ॥

वैदिकधर्म्माचरणात् प्रवर्द्धते वीर्य्यमुन्नतिश्च ततः ।

आत्मोन्नत्या प्राणोन्नत्या वित्तानि सहजानि ॥ २ ॥

इत्युन्नत्यवनतिविचारः ।

इति भारतपरिचये, धर्म्मप्रसङ्गः समाप्तः ॥ १० ॥



भारतवर्षीय-ब्रह्मवीर्य्याख्यानम् ।

भारतवर्षमहत्वहेतवश्चतुःषष्टिविद्याः ।

१—भारतवर्षगुरुत्वं पुरायुगे विश्वविख्यातम् ।
आसीत् तत्र च हेतुर्विद्यैवासीद् विशेषेण ॥ १ ॥
प्राकृतविद्या, लौकिकविज्ञानं पार्थिवार्थविषयं यत् ।
दिव्याविद्या, वैदिकज्ञानं सूर्य्यरसविषयम् ॥ २ ॥
तत्र प्राकृतविद्या निगमागमभेदतो द्विविधा ।
इत्थ त्रिविधा विद्या भारतवर्षस्य गौरवे हेतुः ॥ ३ ॥
लौकिकसिद्धेरचितिमार्गः क्लृप्तस्तु नीतिः स्यात् ।
वैदिकसिद्धे रात्ततिमार्गो दृष्टस्तु धर्मः स्यात् ॥ ४ ॥

निगमविद्याभेदाः ।

२—आसु च दिव्या विद्या भवति चतुःषष्टिभेदतो भिन्ना । (६४)
नैगमविद्यास्तत्र च मुख्यतयाऽष्टादश प्रथिताः ॥ ५ ॥
आगमविद्या विंश शतमित्थं सर्वविद्यानाम् । (१२०)
द्विशती द्व्यधिका संख्याऽवान्तरभेदास्तु बहवः स्युः ॥ ६ ॥ (२०२)

४ ४ ६
वेदाः सहोपवेदा अष्टावथ षट् तदङ्गानि ।
१ १ १ १
इतिहासः सपुराणो योगो न्यायश्च मीमांसा ॥ ७ ॥
४ ४ ६ ४
वेदा अथोपवेदा वेदाङ्गानि च तथोत्तराङ्गानि ।
चत्वारश्चत्वारः षट् चत्वारीति नैगमश्रेणी ॥ ८ ॥ (१८)
१ २ ३
ज्योतिःशास्त्रं त्रिविधं गणितं फलितं च संहिताशतकम् ।
ताराज्ञान कुण्डनक्षत्रमिति वृष्टिविज्ञानम् ॥ ९ ॥
विद्यागणिते प्रबला ऋतुपर्णनलौ यया तु वृक्षाणाम् ।
पर्णानि दूरतः प्रागगणयतां नानृतं तत्र ॥ १० ॥

आगमविद्याभेदाः । १२० ।

३—आगमविद्या षोढा—सिद्धान्तः संहिताकल्पः ।
यामलडामरतन्त्राण्येषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥ ११ ॥

षट्कल्पाः सिद्धान्ताश्चतुर्दशाष्टादशेह सांहितिकाः ।
तन्त्राणि चतुष्षष्ट्यर्यामलदशकं च डामरा अष्टौ ॥ १२ ॥
मणिमन्त्रौषधिभेदात् त्रिविधा विद्याः सहस्रशस्तन्त्रे ।
ताभिः किं नहि सिध्येत् कः स्पर्द्धेतेह तद्विद्भ्यः ॥ १३ ॥
सनिवर्तनाभिचारा डामरविद्याथ यामलेत्याख्या ।
नैमित्तिकी हि विद्या वृष्ट्यादिर्ज्ञायते यत्र ॥ १४ ॥
कल्पा औपासनिकास्तेषु षडाम्नायभेदाः स्युः ।
ऊर्ध्वः पूर्वो दक्षिणपश्चिमवामाधरा इति हि ॥ १५ ॥
ऊर्ध्वाम्नयो योगः पूर्वो वेदोदितो यज्ञः ।
स्मार्तो दक्षिणमार्गः पश्चिमको यावनो म्लेच्छः ॥ १६ ॥
वामः पञ्चमकारोऽघोरो मार्गोऽधराम्नायः ।
विज्ञानादद्भुतविद्या रसायनाद्या तु सिद्धान्तः ॥ १७ ॥
क्रीडाकौतुकविद्या रत्नपरीक्षा च पुंपरीक्षा च ।
सामुद्रिकी च शकुनं पशुतन्त्रं मुकुटभूषादि ॥ १८ ॥
विद्या दृगार्गलाख्या नीतिः सर्वा पुराणमितिहासः ।
एवंविधाः प्रकीर्णा बहुविषयाः संहिता सूक्ताः ॥ १९ ॥

निगमविद्याविभागाः ॥ १८ ॥	आगमविद्याविभागाः । १२० ।
४ वेदाः = ऋग्यजुःसामाथर्वाणः श्रुतयः।	१८ संहिताः इतिहासादयो नानाप्रकीर्णविषयाः ।
४ उपवेदाः = आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्ववेदार्थवेदाः ।	१४ सिद्धान्ताः रसायनादयो वैज्ञानिकविद्याः
६ वेदाङ्गानि = शिक्षाछन्दोव्याकरणनिरुक्तज्योतिःकल्पाः ।	६ कल्पाः आम्नायाः ऊ. पू. द. प. उ. अ.
४ उत्तराङ्गानि = इतिहासपुराणन्यायमीमांसायोगाः ।	१० यामलानि वृष्टिविज्ञानादिनैमित्तिकविज्ञानानि ।
	८ डामराः । अभिचाराः सनिवर्तनाः ।
	६४ तन्त्राणि-मणिमन्त्रौषधयः ।
१८	१२०

४—यद्यप्यासां काश्चित्संप्रति देशान्तरेऽपि दृश्यन्ते ।
किन्त्वद्यापि च कृत्स्ना सर्वा साऽत्रैव देशेऽस्ति ॥ २० ॥

यज्ञा. सवेदविद्या आगमभेदा. पुराणयोगाश्च ।
धर्म्मत्रयं निरुक्तं न्यायो मीमांसनं फलितम् ॥ २१ ॥
अद्याप्येता विद्या दृश्यन्त इहैव भारते वर्षे ।
देशान्तरस्थ जनता नासां जानाति माहात्म्यम् ॥ २२ ॥
अद्य तु यद्यपि विद्या भारतवर्षे श्लथा सर्वा ।
किन्त्वार्य्याणां तत्र च परवशता विद्यते हेतुः ॥ २३ ॥

दिव्यविद्याप्रभेदाः (६४) ।

४—एताः प्राकृत विद्या अद्‌भुतविद्यास्तु सन्ति तद्भिन्ना ।
आत्मबलादुत्पन्नास्ताभ्यो भारतशिरोऽस्त्युच्चम् ॥ २४ ॥
दिव्यं ज्ञान योगजसिद्धयाऽऽत्मबल यदुद्भवति ॥
तस्य कला आलम्बनसंदीपनभेदतश्चतस्रः स्यु ॥ २५ ॥
१ २ ३
मानसकलाऽधिदैवतकला तथेन्द्रियकलाऽध्यात्मम् ॥
४
शिल्पकलेति विभेदादात्मबलं तच्चतुष्कलं भवति ॥ २६ ॥
विज्ञानमेक आत्मा, तत्र चतुर्भ्यो निधीयते हि बलम् ॥
१ २ ३ ४
प्रज्ञामनसो, धीन्द्रियकर्म्मेन्द्रियभूत योगेभ्य. ॥ २७ ॥
आलम्बनं मनो यदि मन एवोद्दीपनं यदा भवति ॥
१
१—आत्मबलं तन्मानसमेतद्भेदा अनेकधा दृष्टा ॥ २८ ॥
शिरसो बलं यदर्जितमुद्दीपयतीह दैवतैर्यदि तत ॥ १६
१
२—आत्मबलं तद् दैविकमस्य च बहव स्मृता भेदा ॥ २६ ॥
यज्ञजबलं यदात्मनि तद् यदि यज्ञात् प्रदीपितं भवति ॥ ३०
३
३—आत्मबलं तद् याज्ञिकमेतद् भेदाश्च बहव स्युः ॥ ३० ॥
शिल्पकलाविज्ञानं शिक्षाप्राप्तं यदु प्रमातिशयात् ॥ ४८
४—व्यवसायावसायैर्दीपयते भौतिक तत् स्यात् ॥ ३१ ॥
मानस—दैविक—याज्ञिक—भौतिक—भेदाच्चतुर्विधा विद्या ॥
प्रत्येकं षोडशधा तत इह विद्याश्चतु.षष्टि ॥ ३२ ॥
भारतवर्षीयार्य्यैरेता विद्याश्चतु षष्टिः ॥
प्रथमं दृष्टास्तस्माज्जगतो गुरवस्त एवासन् ॥ ३३ ॥

आत्मबल-प्रदर्शिनी-तालिका

१	मानसबलानि षोडश (१६)	२	धीन्द्रियबलानि षोडश (१६)
	मनःसंयमाद् योगबल सिद्धयोऽष्टौ		हृदयसंयमात् तपोबल सिद्धयोऽष्टौ
१	अणिमा ।	१	देवसाक्षात्कारच्छायापुरुषसिद्धिः ।
२	महिमा ।	२	बलगा (कृत्याभिधाना)
३	गरिमा ।	३	आत्मोत्क्रमसाक्षात्कारः ।
४	लघिमा ।	४	मृतपुरुषसाक्षात्कारः ।
५	प्राप्तिः ।	५	विश्वरूपदर्शनम् (विराट्रूपदर्शनम्) ।
६	प्राकाम्यम् ।	६	मायाव्यामोहनम् ।
७	ईशित्वम् ।	७	उपश्रुतिविद्या ।
८	वशित्वम् ।	८	संस्कारोपधानी ।
१	इन्द्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ	२	प्राणसंयमाद्—देवबल सिद्धयोऽष्टौ
९	अतीतानागतज्ञानजन्मान्तरज्ञानम् ।	९	कायव्यूहः ।
१०	दूरपरोक्षज्ञानम् ।	१०	परकायप्रवेशः ।
११	सर्वभूतरुतज्ञानम् ।	११	प्राणहारिणी ।
१२	मनोविज्ञानम् ।	१२	मृतसंजीवनी दैवी शक्ति. ।
१३	भूगर्भज्ञानम् ।	१३	स्थाणुसंजीवनी ।
१४	भुवनज्ञानम् ।	१४	छायानिग्रहणी ।
१५	ओषधिप्रभावज्ञानम् ।	१५	आकृतिपरिवर्तिनी ।
१६	ताराज्योतिःप्रभावज्ञानम् ।	१६	लिंगपरिवर्तिनी ।
३	याज्ञिकानि कर्मेन्द्रियबलानिषोडश (१६)	४	भूतबलानि षोडश (१६)
	नैगमीय मन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ		महौषधिबलसिद्धयोऽष्टौ
१	सर्पाकर्षिणी ।	१	मृतसंजीविनी गुटिका ।
२	अग्निजलस्तम्भिनी ।	२	संजीवनकरणी ।
३	अक्षयकरणी ।	३	विशल्यकरणी ।
४	निग्रहानुग्रहणी ।	४	सावर्ण्यकरणी ।
५	पुत्रसंजननी पुत्रेष्टिः ।	५	संधानकरणी ।
६	प्रावृषेण्या जलवर्षिणी ।	६	अरिष्टभपज्या ।
७	आपोनप्त्रीयम् ।	७	डिम्भप्रसविनी ।
८	मधुविद्या ।	८	बलातिबले ।

३	आगमीय मन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ	४	यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ
९	मारणम् ।	९	दिव्यविमानं त्रिचक्रं रथाकारम् ।
१०	मोहनम् ।	१०	पुष्पकविमानं हंसरयो दर्द्धिष्णु
११	उच्चाटनम् ।	११	सोमविमानम् नगराकारम् ।
१२	वशीकरणम् ।	१२	सूतविमानम् नौकाकारम् ।
१३	विद्वेषणम् ।	१३	हर्य्यश्वविमानं हययुग्माकारम् ।
१४	स्तम्भनम् ।	१४	प्लवविमानं पक्ष्याकारम् ।
१५	आकर्षणम् ।	१५	अमृतगवी विश्वरूपा ।
१६	संरक्षणम् ।	१६	शिलासतरणी संतरणशिला ।

आसां विद्यानां प्रयोगोदाहरणानि कानिचित् प्रदर्श्यन्ते ।

१—मनःसंयमाद् योगबलसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अणिमा अणुता ह्रस्वकायता । विशालकाय य सङ्कल्पमात्रेण तत्क्षणादेवावयवापचयेन मशकादिवत् क्षुद्रशरीरोपपादनम् । यथा हनुमान समुद्रलङ्घनकाले विशालकायेन प्रसन्त्या सुरसाया मुखे मशकवत् क्षुद्रो भूत्वा प्रविश्य निर्गतः ॥ १ ॥ रावणगृहे सीताशोधनाय प्रवृत्तो वृषदंशकवत् क्षुद्रशरीरो भूत्वा प्रच्छन्नो गृहान् परिगोपयामास ॥ २ ॥ लङ्कायामशोकवाटिकायां सीतारावणसंवादं श्रोतुमतिक्षुद्रशरीरो भूत्वा वृक्षान्तरं प्रच्छन्नस्तस्थौ ॥ ३ ॥

(२) महिमा महत्ता कायवैपुल्यम् । क्षुद्रशरीरस्य सतो महाविशालशरीरसंपादनम् । यथा हनुमान् समुद्रलङ्घने सुरसामुखे प्रवेशाभावाय कायं महाविशालं चक्रे ॥ १ ॥ यथा वा चाक्षुषमन्वन्तरे मत्स्यस्य मनुहस्तपतितस्यातिक्षुद्रशरीरस्यापि क्षणेन महाविशालशरीरोपपत्तिः ॥ २ ॥

(३) गरिमा गुरुत्वं शरीरभारवर्द्धनम् । यथा निषधपर्वते संचरतो भीमस्य बलाभिमानं नाशयितु मध्ये मार्गं पतितेन हनुमता शरीरगुरुत्वं प्रवर्द्धितमिति स [illegible] क्षुद्रकायोऽपि कपिरनेन भीमेनोत्थापयितुमशक्योऽभून ॥ १ ॥ अङ्गदो लङ्कायां रावणसभायां पादमवरोप्य बलिष्ठैरपि सर्वैं राक्षसैस्तुल्याप्यपादो [illegible] ॥ २ ॥ बालत्वेन श्रीकृष्णेन [illegible] ॥ ३ ॥

(४) लघिमा गुरुतरशरीरस्यापीषीकातूलवत् शरीरलघूकरणाद् विमानादिसाधनं विनापि आकाशे संचारः। यथोक्तं योगसूत्रे—"कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्" ॥ ३। ४१॥ इति ॥ यथा हनुमान् शरीरलघूकरणादाकाशमार्गेण पवनाधारेण समुद्रमुल्ललङ्घे ॥ १॥ नारदश्चानेकवारमाकाशमार्गेण सञ्चरन् द्वारकायां श्रीकृष्णान्तिकमन्यत्रान्यत्र चाजगाम। विभीषणश्चाकाशमार्गेणागत्य रामसेनायामाजगाम॥
"उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत।"
स उवाच महाप्राज्ञः खस्थ एव विभीषणः—"(यु०१७) १६५॥
"खात् पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह" (यु० १९) इति रामायणे तथोक्तेः॥ १८६॥

(५) प्राप्तिः एकत्र स्थितवता बहुविप्रकृष्टार्थस्यानायासेनेन्द्रियैर्ग्रहणम्। यथा भूमिस्थ एवाङ्गुल्यग्रेण चन्द्रमसं स्पृशति। पर्वताग्रस्थिताद् उद्यानात् फलमवचिनोति।

(६) प्राकाम्यम् पृथिव्यादितत्त्वधर्मानभिघातान् मनोवृत्त्यप्रतिबन्धः भूमावपि मज्जति यथोदके मज्जति। शिलामप्यनुविशति। नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति। नाग्निरुष्णो दहति। न वायुः परिणामी वहति। अनावरणेऽप्याकाशेऽयमावृतकाय इव भूत्वा सिद्धानामप्यदृश्यो भवति। आतपस्थोऽप्यातपावरणाच्छायायामिव भवति। अप्रतिरुद्धगतित्वाद् बन्दीगृहतोऽपि बहिर्भावः। यथा द्वारकान्तिके रैवतकपर्वते जरासन्धसैनिकैः सर्वतः प्रतिरोधितस्यापि श्रीकृष्णस्य द्वारकायां प्रवेशः। मथुरायां जरासन्धसैनिकैः कालयवनसैनिकैश्चावरोधितस्यापि तस्यैकेनाह्ना द्वारकायां नवनिर्मितायामखिलबालवृद्धस्त्रीनिकायसंप्रापणं युद्धाय पुनरागमनं च ॥ २॥ अद्भुतकर्मणोऽप्यत्रैव संनिवेशः। यथोक्तं भारते दमयन्तीं प्रति केशिन्या नलचरिते—

"ह्रस्वमासाद्य संचारं नासौ विनमते क्वचित्।
तं तु दृष्ट्वा यथा सङ्गमुत्सर्पति यथा सुखम्॥ १॥
संकटेऽप्यस्य तु महान् विवरो जायतेऽधिकः।
तस्य प्रक्षालनार्थं य कुम्भास्तत्रोपकल्पिताः॥ २॥
ते तेनावेक्षिताः कुम्भाः पूर्णा एवाभवंस्ततः।
तृणमुष्टिं समादाय सवितुस्तं समादधत्॥ ३॥
अथ प्रज्वलितस्तत्र सहसा हव्यवाहनः।
तदद्भुततमं दृष्ट्वा विस्मिताहमिहागता॥ ४॥

अन्यच्च तस्मिन् सुमहदाश्चर्य्यं लक्षितं मया ।
यदग्निमपि संस्पृश्य नासौ दह्यते शुभे ॥ ५ ॥
छन्देन चोदकं तस्य वहत्यावर्जितं द्रुतम् ।
अतीव चान्यत् सुमहादाश्चर्य्यं दृष्टवत्यहम् ॥ ६ ॥
यत् स पुष्पाण्युपादाय हस्ताभ्यां ममृदे शनैः ।
मृद्यमानानि पाणिभ्यां तेन पुष्पाणि नान्यथा ॥ ७ ॥
भूय एव सुगन्धीनि हृषितानि भवन्ति हि ।
एतान्यद्भुतलिङ्गानि दृष्ट्वाहं द्रुतमागता ॥ ८ ॥ "इति" (वन० ७५)॥

(७) ईशित्वम् 'अलौकिककर्म्मकरणे सामर्थ्यलाभः । अणिमादीनां षण्णां योगविभूतीनां स्वस्मिन्निवापरस्मिन्नपि संपादनम् । यथा हनुमान् द्रोणाचलमुत्थापयितुं श्रीकृष्णो वा गोवर्धनमुत्थापयितुं तस्य तस्याचलस्य विग्रहे लघिमानं जनयामास । तेनैव हनुमान् हस्तेन द्रोणाचलमुद्धृत्य लङ्कामानयत् ॥ १ ॥ विश्वामित्रस्त्रिशङ्कुराजानं जीवन्तमेव दिवि प्रतिष्ठापयामास ॥ २ ॥ वसिष्ठश्च नन्दिनीद्वारा परः सहस्राणि सैनिकानि जनयामास ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णो द्वारकास्थ एव हस्तिनापुरे द्रौपद्याश्चीरं परिवर्द्धयामास॥४॥ अगस्त्येन समुद्रः परिशोषितः ॥ ५ ॥ मनुर्मत्स्यो जलप्रलयनौकां शृङ्गेन दधार ॥ ६ ॥ अन्तर्द्धानमप्यत्रैव सन्निविशते । तच्चोक्तं योगसूत्रे-कायरूपसंयमात् तद् ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥ ३ । २० ॥ इति ॥

(८) वशित्वम् प्रबलस्य वशीकारः । यथा श्रीकृष्णो नागं वशीचक्रे ॥ १ ॥
ऋषीणामाश्रमेषु सिंहादयो हिंस्रजीवा वशीकृता अद्रोहिणस्तस्थुः ॥ २ ॥
भूतवशीकारोऽ यत्रैव संनिविशते ।
इतोऽन्या अप्यनेकधा योगसिद्धयो योगपातञ्जले विभूतिपादे प्रदर्शिताः । इत्यष्टौ संयमसिद्धयः ॥ ८ ॥

२—इंद्रियसंयमाद् दिव्यदृष्टिसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) अतीतानागतज्ञानम् = भूतभविष्यद्ज्ञानम् । तत्रातीतज्ञानं तावत् चिरकालातीतविषयाणां प्रत्यक्षविद्यमानवद्ग्रहणम् । यथा वसिष्ठो दिलीपराजाय दत्तं कामधेनोः शापं ददर्श । वाल्मीकिमुनिश्च परोक्षं रामचरितं सर्वं यथावद्ददर्श ॥ २ ॥ पातञ्जले योगसूत्रे तु—"धर्म्मलक्षणावस्थापरिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम्" (३ । १६) इत्युक्तम् ॥

"संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ ३ । १८ ॥ इति योगसूत्रोक्तं जन्मान्तरज्ञानमप्यतीतज्ञानमेव । यथा जैगीषव्यस्य दशसु महासर्गेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यतो विवेकजं ज्ञानं प्रादुरभूत् । श्रीकृष्णश्चाह ॥
"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप" ॥ इति ॥

यथा महाभारतयुद्धे प्रवृत्तानां कर्णदुर्य्योधनादीनां जन्मान्तरस्थासुरयोनित्वं वेदव्यासो दृष्ट्वा आदिपर्वणि वर्णयामास । शुकदेवस्य च पूर्वजन्मनि शुकपक्षित्वं शिवगौरीसंवादश्रोतृत्वं चाख्यातमार्य्यैः । अथ भविष्यज्ञानम् अनागतज्ञानम् । तद् यथा संभलग्रामे कल्की भविष्यतीति भारतीयाः पश्यन्ति ॥ १ ॥ पुराणे भविष्यतो राजवंशाः प्रदर्शिताः ॥ २ ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा ब्राह्मणाः शूद्रवृत्तय इत्येवमादयः कलिधर्मो भविष्यन्तः पुराणे प्रदर्शिताः ॥ ३ ॥ सूर्य्यचन्द्रोपरागा भविष्यन्तः कथ्यन्ते ॥ ४ ॥ कालज्ञानमप्यत्रैव संनिविशते । अनया विद्ययात्मनः परस्य च मृत्युकालो विज्ञातो भवति । कालज्ञानोपायभेदे छायापुरुषसिद्धिरप्यस्ति ॥ ५ ॥

(२) दूरातिक्रान्तदर्शनश्रवणम् । तत्रादौ दूरपरोक्षदर्शनं यथा । संजयो हस्तिनापुरे स्थितो वेदव्यासदत्तदिव्यदृष्टिप्रभावेण दूरदेशे कुरुक्षेत्रे जायमानं युद्धं यथावत् पश्यन् धृतराष्ट्राय कथयतिस्म ॥ १ ॥ श्रीकृष्णो द्वारकास्थितो हस्तिनापुरस्थाया द्रौपद्याश्चीरहरणं दुःशासनकृतम पश्यत् तदुक्तं योगसूत्रे—"प्रवृत्त्या लोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्" । ३ । २४ ॥ इति ॥ अथ विदूरश्रुतिः । संजयो वेदव्यासप्रदत्तविद्याप्रभावेण दूरे कुरुक्षेत्रे भवन्तं कृष्णार्जुनगीतासंवादं स्वदेशस्थो यथायथं शुश्राव ॥१॥ "श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम्" ॥ ३ । ४० ॥ इति योगसूत्रम् ॥

(३) सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ तदुक्तं योगसूत्रे—"शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत् प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ ३ । १७ ॥ इति ॥
युधिष्ठिरविदुरादयः पक्षिरुतं जानन्ति स्म ॥ ब्रह्मदत्तश्च काम्पिल्यो राजा पिपीलिकारुतं जानाति स्म ॥

(४) मनोविज्ञानम् । मनसः संकल्पनकाले शारीरः प्राणवायुः क्षोभितो विकृतिमापद्यते । विद्युद्वर्णेन च तेन रोमकूपेभ्यो बहिर्भवता विक्षिप्तः परिक्षुब्धोऽयं शरीरमभितो बाह्यवायुः पुरुषमनसोऽभिज्ञानाय प्रभवति । यथोक्तं वेदमन्त्रे—

"मनसा संकल्पयति, तद्वातमभिगच्छति ॥
वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुष ते मनः"—इति ॥

ब्राह्मणेऽपि श्रूयते—

"मनो देवा मनुष्यस्य जानन्तीति।

मनसा सङ्कल्पयति, तत् प्राणमपि पद्यते।

प्राणो वातम्, वातो देवेभ्य आचष्टे यथा पुरुषस्य मन."—इति।

(शत० ब्रा० ३।३।३१)॥ "प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानमिति" (३ १९) योगसूत्रम्।

(५) भूगर्भज्ञानम्। महौषधसंस्कृतचक्षुषा अधोमुखजातेन भूतलाधस्ताद्दशहस्तपर्य्यन्तं स्थितानां भावानां साक्षात्कार. शक्यते कर्तुम्। तत्र दिव्याञ्जनप्राधान्येऽपि तेन दैवीदृष्टिरेवानुगृहीता भवतीत्यत्र समादेशः।

(६) भुवनज्ञानम्=अस्ति हि सप्तलोकसंग्रहश्लोक.। "ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोक. प्राजापत्यस्ततो महान्। माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजाः"—इति। आवीचे. प्रभृति मेरुपृष्ठं यावद् भूलोकः॥ १॥ मेरुपृष्ठादारभ्य ध्रुवाद् ग्रहनक्षत्रतारा विचित्रोऽन्तरिक्षलोकः॥ २॥ ततपरः पञ्चविधो माहेन्द्र. स्वर्गलोकः॥ ३॥ प्राजापत्यो महर्लोक॥ ४॥ जनलोकस्तपोलोक सत्यलोक इति त्रये. ब्रह्मलोका.॥ ७॥ एषां साक्षादिव दर्शनं भुवनज्ञानम्। भुवनज्ञानं सूर्य्ये सयमादिति योगसूत्रम्।

(७) ओषधिप्रभावज्ञानम्=यथा सोमहरीतकीविनीतकजङ्गिडापामार्गादीनामोषधीनामतुलिता प्रभावा आथर्वणसंहितायां मन्त्रैराम्नाताः तेषां प्रभावाणां यथावत्परिज्ञानमपि भवति नत्वनृषिश्चक्षुरयोग्य प्रभावं ज्ञातुं शक्नोति। उक्त चाभियुक्तैः—

"आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।

अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते॥ १॥

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।

ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते"॥ २॥ (वाक्यपदीयम् का० ६। ३। १०९)

(८) तारा ज्योतिःप्रभावज्ञानम्। यावत्य इमा रोचन्ते रोचना दिवि तासामेकैकस्याज्योतिष प्रभावग्रहणमृषीणामेव शक्यम्। असंख्यातास्वपि तासु—एकता द्विता त्रिता—इत्येवं त्रेधा विभक्तासु त्रितानां प्रायेणास्यानां प्रभावा वेदे श्रूयन्ते। यथा—

"जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा"

इत्यादिभिर्मन्त्रैर्ध्रुवादितारकाणां प्रभावा आम्नाताः। "चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्" ।३।२६ इति योगसूत्रम्।

३—हृदयसंयमात् तपोबलसिद्धयोऽष्टौ ॥ ८ ॥

(१) देवप्रत्यक्षीकरणम्=कतिचिद् भावमालम्ब्य तत्र धारणाध्यानसमाधिसंयमे हृदयस्थमनस एवोपादानात् तत्तद्देवतारूपाविर्भावः एतच्च पुरायुगे तपश्चरतामृषीणां मनुष्याणां वा भूयः श्रुतमितिहासपुराणेषु। भरद्वाजपुत्रो यवक्रीतो ब्राह्मणानामनधीता एव वेदाः प्रतिभान्त्विति कामनया घोरं तपस्तप्त्वेन्द्रं प्रत्यक्षीचकार। तमिन्द्र उवाच। अमार्ग एष विप्रर्षे येन त्वं यातुमिच्छसि। किं विघातेन ते विप्र, गच्छाधीहि गुरोर्मुखादिति (भा० वन० १३५)। छायापुरुषसिद्धिरप्यत्रैव संनिविशते।

(२) बलगा कृत्या अभिचारविद्या। परविद्रोहाय पुराक्रूराः कृत्यापुरुषाः स्त्रियो वा तपःप्रभावादुत्पाद्यन्तेस्म ॥ राक्षसनुरुषः स्त्रियो वा राक्षस्यस्तत्काल जनिता निर्दिष्टपुरुषस्य प्राणानपहरन्ति विभीषयन्ति वा ॥ यथा भरद्वाजरैभ्यौ सखायावास्ताम्। भरद्वाजपुत्रो यवक्रीरैभ्याश्रमं गत्वा रैभ्यपुत्रस्यार्वावसोः पत्नीं बलादाक्रम्य मैथुनायोपचक्रमे। रुदन्त्यास्तस्या वृत्तमभिज्ञाय स रैभ्यो मन्युनाविष्टो जटामेकामवलुञ्चयाग्नौ जुहाव। ततो जटत्कारान्नारीः समुत्तस्थौ। पुनरन्यां जटामालुञ्च्याग्नौ जुहाव। ततो घोराक्षं भीमदर्शनं रक्षोऽभवत्। यवक्रीर्वध्यतामिति तौ रैभ्योऽब्रवीत्। भुञ्जानस्य यवक्रीतस्यादौ कृत्या कमण्डलुं जहार। ततः शूलहस्तेन रक्षसा काल्यमानोऽयमुच्छिष्टमुखोऽन्यत्र शरणमपश्यन्नग्निहोत्रशालां गन्तुमैच्छत्। तत्रान्धेन गृहरक्षिणा निगृहीतः पपात। शूलेन रक्षसाऽऽहतः प्राणांस्तत्याज। (महाभा० वन० १३६)

(३) आत्मप्रयाणदर्शनम्=मुमूर्षोः शिरः प्रदेशादूर्ध्वमाकाशे सद्य उत्क्रममाणमात्मानं प्रत्यक्षमनुपश्यति। यथा वेदव्यासो द्रोणस्यात्मानमूर्ध्वं गच्छन्तं ददर्श।

(४) मृतपुरुषदर्शनम्। मृतानां पुरुषाणां प्रतिकृतयश्छायापुरुषाः प्रत्यक्षं दर्श्यन्ते। यथा वेदव्यासो भारतयुद्धे मृतानां पुरुषाणां छायापुरुषान् परिदर्शयामास ॥

'एष राजा दशरथो विमानस्थः पिता तव ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥ १ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं प्रभुः ॥
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः" ॥ २ ॥

इति रामायणे युद्धकाण्डे १२१ रावणवधान्ते रामेणदशरथो दृष्टोऽनुभाषितश्च ॥

एतस्मिन्नेव काले तु जरत्कारुर्महातपाः ।
वायुभक्षो निराहारः शुष्यन्नहरहर्मुनि ॥ १ ॥
स ददर्श पितॄन् गर्ते लम्बमानानधोमुखान् ॥
निराहारान् कृशान् दीनान् गर्ते स्वत्राणमिच्छतः ॥ २ ॥

इति भारतादि पर्वणि (४५) पितृदर्शनमुक्तम् ।

(५) विराट् पुरुषदर्शनम् = यथा श्रीकृष्णेन भारतमहायुद्धोपक्रमेऽर्जुनाय भविष्यत्क्षणसंभावितस्य विश्वरूपस्य प्रागेव साक्षात्कारः कारितः । यथा वा श्रीकृष्णेन दुर्योधनसभायां धृतराष्ट्राय दिव्यचक्षुः प्रदाय सर्वेभ्य सभासद्भ्या विश्वरूपं प्रदर्शितम् । यथा वा यशोदायै स्वमुखान्तरतो नानावैचित्र्यं परिदर्शितम् ।

(६) माया व्यामोहनी = यथा नारदाभिमानखण्डनार्थं कनखलप्रदेशे मायापुरीनिर्म्माणं तत्र सुन्दरीस्वयंवरविधानं च । यमुनायां स्नानार्थमभिप्लुतस्य नारदस्याभिप्लवनोत्प्लवनयोरन्तरतः क्षणमात्रेऽवकाशे चत्वारिंशद्वर्षाणि माययातिवाहितानि । तत्र च नारदस्य स्त्रीभावं गमितस्य राज्ञा विवाह पुत्रपौत्रादिसृष्टयः तेषां निःशेषाणां मृत्यु । ततो दुःखकातरया राजमहिष्यास्त याशुद्धिस्नानार्थे यमुनायामागतायाः स्नात्वा जलादुत्प्लवन्त्या पुनर्नारदस्वरूपेणाविर्भाव पुराणेतिहासेषु स्मर्य्यते । मार्त्तिकावत नगराधीशः शाल्व कृष्णेन सह युध्यन् द्वारकाधीशाहुकपरिचारकरूपेण स्वमायापुरुषेण वसुदेवमृत्युसंवादं कृष्णाय श्रावयामास । क्षणेन पुन शाल्वविमानाद्वसुदेवशिरश्छिद्यमानमधस्तात्कृष्णान्तिके निपातयामास । तद् दृष्ट्वा कृष्ण पूर्वं चिन्ताग्रस्तोऽभून । पश्चात्पुन. शाल्वकृतां मायां विज्ञाय निर्विषादः शाल्वं निपातयामास ।

"तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितधारेण खड्गेन निजवानेन्द्रजित् स्वयम्" ॥ १ ॥(इतियु० ८१)

रामायणे मेघनादेन मायासीतावध उक्तः ॥

(७) उपश्रुतिविद्या खलु रात्रिनाम्नी सा विद्या यथा गुप्तं विलीनमपह्नुतमज्ञानप्रदेशस्थमर्थं प्राणिनं वा परिमार्गमाणास्तमनायासेनोपलभन्ते । आकाशवाण्या वा शिशुवाचा वा कर्म्मान्तरव्यापृतमनुष्यवाचा प्रकारान्तरेण वा तत्स्थानानुपश्रुतं भवति यत्रप परिभाजि-

तव्योऽर्थः स्थितो भवति। यथा देवराजे ब्रह्महत्यादोषेण क्वचित् प्रच्छन्ने नहुषे चैन्द्रं पदमध्यारूढे शची तयोपश्रुतिविद्यया तं देवराजं क्वचित्सरसि प्रच्छन्नं व्यजानात्। तदुक्तं भारते—

"पुण्यां चेमामहं दिव्यां प्रवृत्तामुत्तरायणे॥
देवीं रात्रिं नमस्यामि सिध्यतां मे मनोरथः॥ १॥
यत्रास्ते देवराजोऽसौ तं देशं दर्शयस्व मे।
इत्याहोपश्रुतिं देवीं सत्यं सत्येन दृश्यताम्॥ २॥
अयतां च निशां देवीमुपातिष्ठत तत्र सा।
पतिव्रतात्वात् सत्येन सोपश्रुतिमथाकरोत्॥ ३॥
सरसस्तस्य मध्ये तु पद्मिनी महती शुभा।
बिसतन्तुप्रविष्टं च तत्रापश्यच्छतक्रतुम्॥ ४॥" (भा० उ० १३)

(८) संस्कारोपधानी—सा विद्या यया योगिराजः कस्य चिच्छिशोर्मूर्द्धनि हस्तं निधाय तस्मिन् सर्वविद्याप्रबोधान् संस्कारविशेषान् मन्त्रप्रभावेणाधत्ते। तदुक्तं मन्त्रमहोदधौ पञ्चमतरङ्गे—

(१) विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम्॥ उपवेश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दत्वा जपेन्मनुम्॥ ८६॥ वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि। यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम्॥ ९०॥

(२) दुर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्तया। बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम्॥ ८३॥ संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात्। मन्त्रेणायुतसंजप्तां वचां बालस्य कण्ठतः॥ ८४॥ बध्नीयात् पूर्वसंप्रोक्तं वह्निं दत्वा विधानतः। द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भविता सा कविस्वकृत्॥ ८५॥ इति॥

४—प्राणसंयमाद्दैवसिद्धयोऽष्टौ यथा—

(१) कायव्यूहः युगपदनेकशरीरधारणमनेकदेशे भिन्नशरीरेणावस्थानं च। यथा श्रीकृष्णो रासलीलायां प्रतिगोपीशरीरसहकारेणान्यान्यशरीरोपपन्नस्तस्थौ। यशोदासदेशं तिष्ठत् गोपीनां गृहेष्वपि तत्कालं तस्थौ॥ १॥

(२) परकायप्रवेशः—स्वशरीरं पृथक् संस्थाप्य शुद्धेनात्मना शरीरान्तरे प्रवेशः तदुक्तं योगसूत्रे बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः। ३॥ ३७॥ इति॥

यथा शंकराचार्य्या राज्ञ. शरीरे विवेश। यथा वा किन्दमो नाम मुनिर्मृगशरीरे प्रविश्य मृग्या सह रेमे। (भा० आदि० १२३)

(३) प्राणसंहारिणी=यथा वेनस्य राज्ञ उनमार्गं गच्छतः प्राणान् कुशाघातेन महर्षयोऽपजह्नु।

(४) मृतसंजीवनी दैवीशक्ति=उत्क्रान्तप्राणे शरीरे पुनः प्राणसंधनम्। यथातिवेगेन धावमानानां रथाश्वानां प्रत्याघातान्मृतं ब्राह्मणशिशुं जानः पुरोहितः पुनरुज्जीवयामासेति बृहद्देवतायामुक्तम् ॥ १ ॥ सांदीपिनिना गुरुदक्षिणात्वेन मृतं मे पुत्रमानयेत्युक्तः कृष्णस्तत्पुत्रं स्वयमुज्जीव्य गुरवेऽपयामास ॥ २ ॥ अथ रैभ्यभरद्वाजौ सखायावास्ताम्। रैभ्य कृत्यामुत्पाद्य भरद्वाजसुतं यवक्रीतं मारयामास। पुत्रशोकपरितप्तो भरद्वाजः स्वयं प्राणांस्तत्याज। अथ रैभ्यपुत्रो ज्येष्ठ. परावसुर्मृगभ्रमात् स्वपितरं घातयामास। रैभ्यस्य कनिष्ठपुत्रोऽर्वावसुः ज्येष्ठभ्रातुर्ब्रह्मवध्याप्रायश्चित्तमचरत्। सोऽर्वावसुरुग्रं तप कृत्वा सूर्य्यस्य रहस्यवेदं चक्रे। तेन कर्मणार्वावसोरग्न्यादयो देवा. प्रीता अभवन्। अर्वावसुप्रार्थनया प्रसन्ना देवा रैभ्यं भरद्वाजं यवक्रीतं चेत्येतान्तमृतान् पुनरुज्जीवयामासु। सूर्य्यवेदस्य च प्रतिष्ठां चक्रुः।

"अर्वावसुप्रार्थनया देवाः सेन्द्रपुरोगमा ॥
संजीवयित्वा तान् सर्वान् पुनर्जग्मुस्त्रिविष्टपम्" ॥ १ ॥

(इति भारते वन १३८ तथैकः)

अथ हैहयकुमारोऽरिष्टनेमितार्क्ष्यस्य पुत्रं मृगभ्रमाज्जघान। स ब्रह्मवध्यानिर्विण्णस्तन्निष्कृत्यै तार्क्ष्याश्रमं गत्वा निष्कृतिमर्थयामास। तार्क्ष्यस्तूचे। यस्त्वया ब्राह्मणो हतः सोऽयं ममैव पुत्र आसीत्। स मयोज्जीवितोऽयं तवाग्रे तिष्ठति। कथमयं जीवितोऽभूदिति विस्मयेन पृष्टस्तार्क्ष्य उवाच—

"सत्यमेवाभिजानीमो नानृते कुर्म्महे मन ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठामस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ १ ॥
यद् ब्राह्मणानां कुशलं तदेषां कथयामहे ॥
नैषां दुश्चरितं ब्रूमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ २ ॥

अतिथीनन्नपानेन भृत्यानत्यशनेन च ॥
संभोज्य शेषमश्नीमस्तस्मान्मृत्युभयं न नः ॥ ३ ॥
शान्ता दान्ता तपःशीलास्तीर्थदानपरायणाः ।
पुण्यदेशनिवासाश्च तस्मान्मृत्युभयं न न. ॥ ४ ॥

(इति भारते वन १९४)

अकालमृत्युप्रतिघातः प्रदर्शितः ॥ स्वायु प्रदानमप्यत्रैव संनिविशते । यथा सर्पदंशनेन मृतायाः प्रमद्वराया रुरुणा स्वार्धायु प्रदानेन पुनरुज्जीवनम् । यथा वा रामचन्द्राय दशरथेन स्वजीवनशेषायुःप्रदानम् ॥ विषहरविद्याप्यत्रैव संनिविशते । यथा ब्रह्मणा कश्यपाय विषहरविद्यादानम् । यथा वा हरिद्वारे नागेन भीमाय विषहरविद्यादानम् ॥

(५) स्थाणूज्जीवनी = शुष्कतरोः पुनरार्द्रीभावात् पर्णोद्गमनम् । गायत्रीमन्त्रप्रभावेणाभिमन्त्रिताभिरद्भिः परिषिक्तः शुष्कतरुस्तं रसमात्मानं गृहीत्वा पुनरुज्जीवितो भवति । अत तत्र सद्यः पर्णान्याविर्भवन्ति । यथोक्तं यजुर्ब्राह्मणे—"तं हैतमुद्दालक आरुणिर्वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिने उक्त्वोवाच—य एतं शुष्के स्थाणौ निषिञ्चेत् जायेरन् शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ।"

(६) छायाग्रहणी = प्राणिन शरीरच्छायां तच्छरीरगन्धपर्य्याप्तामाक्रम्य तद्द्वारा तत्प्राणिशरीरानुकर्षणम् । यथाऽऽकाशमार्गेण समुद्रमुल्लङ्घयतो हनुमतश्छायां ग्रसित्वा सिंहिकया समुद्रस्थया हनुमानाकाशस्थोऽधस्तान्निपातितः ।

(७) आकृतिपरिवर्तिनी = शरीराकृतेरन्यजातीयाया अन्यजातीयतासम्पादनम् । यथा मृग्या मैथुनं चरतो मृगरूपस्य किन्दमस्य मुनेः पाण्डुना मृगयां चरता हननम् । यथा वा मनुष्याकारो विष्णुर्वराहो मोहिनी वा समपद्यत । धर्मः शुनो रूपं दध्रे । शिविपरीक्षायामग्निः कपोतोऽभूदिन्द्रः श्येनः ।

"इन्द्रः श्येनः कपोतोऽग्निर्भूत्वा यज्ञेऽभिजग्मतुः ।
ऊरुं राज्ञः समासाद्य कपोतः श्येनजाद्भयात् ॥ १ ॥
शरणार्थी तदा राजन्निलिल्ये भयपीडितः ।"

(वन० १३०) इति भारतोक्तेः ।

स तदा राक्षसेन्द्रेण संदिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥ १ ॥

स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

(यु० २०) इति रामायणे रावणः शुकरूपधारणमुक्तम् ।

रूपान्तरीकरणमिदं पुरायुगे देवकुले भूयसाभ्यस्तमासीत् अद्भुत रूपकरणमप्यत्रैव संनिविशते । यथा नृसिंहो यथा वा शरभः ।

(८) लिङ्गपरिवर्तिनी = लिङ्गयोर्विन्यत्यासः । अनया विद्यया पुंसां स्त्रीत्वं स्त्रीणां पुंस्त्वं च शक्यते कर्तुम् । यथा शिवः कदाचिदुमावने प्रविशतः सुद्युम्नस्य राज्ञः स्त्रीत्वमिलाया पुंस्त्वं चक्रे । इति भारताख्याने पुराणेषु च सर्वत्रिलेपाख्याने सुप्रसिद्धम् ।

नैगमीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ ।

(१) सर्पाकर्षिणी = सर्पाकर्षण्या विद्यया मन्त्रबलेन सर्पाः दूरस्था अपि अभीष्टदेशे आकृष्यन्ते निगृह्यन्ते निर्विषीक्रियन्ते यथा जनमेजयकृते सर्पसत्रे याजकाः समिद्धेऽग्नौ मन्त्रैः सर्पानाजुहुवुः ।

"क्रोशयोजनमात्रा हि गोकर्णस्य प्रमाणतः ।
पतन्त्यजस्रं वेगेन प्रदीप्ते हव्यवाहने ॥ १ ॥
उच्चावचाश्च बहवो नानावर्णा विषोल्बणाः ।
घोराश्च परिघप्रख्या दन्दशूका महाबलाः ॥ २ ॥"

(इति भारते ५२)

(२) अग्निस्तम्भनी विद्या सा यया मन्त्रेणाग्निः शीतलीक्रियते । तेनाग्नौ प्रविष्टोऽपि पुरुषो न दह्यते । सोऽग्निस्तम्भस्त्रेधा सम्पद्यते । सत्येन मन्त्रेण मणिना च । सत्येन यथा धर्माधिकारिभिरपराधी पुरुषो दिव्यपरीक्षार्थं दह्यमानेनाग्निना परीक्ष्यते । यथा वा सीता लङ्कायां सत्येनाग्नौ प्रवेशिता परीक्षिताऽऽसीत् ॥ १ ॥

मन्त्रेण यथा नलो महाराजोऽग्निं स्तम्भयति स्म ।

तदुक्तं भारते —

"अन्यच्च तस्मिन् सुमहदाश्चर्यं लक्षितं मया ।
यदग्निमपि संस्पृश्य नैवासौ दह्यते शुभे ॥" (वन० ७५)

अथ ग्रामदाहे तृणगृहान् प्रदहन्नग्निर्मन्त्रेण स्तम्भितो गृहान्तरं न दहतीति मन्त्र-

शास्त्रे निरूप्यते ॥ २ ॥ अथ मणिश्चन्द्रकान्तमणिः । स द्विविधः औषधिः, प्रस्तरश्च। तत्रैते श्लोकाद्रष्टव्याः—।

अमरलता वितता स्याद् यस्य तरोरुपरि तस्य चाधस्तात् । भूमावन्तर्निहितं तस्या मूलं तु कन्दमन्वेष्यम् ॥ १ ॥ वृक्षाधस्तात् परिस्तृणान्युपस्तीर्य दाहयेच्छिखिना । यत्र तु न दह्यते तत् तत्रैवाधः स्थितं कन्दम् ॥ २ ॥ अति शीतं तत्कन्दं स उच्यते चन्द्रकान्तमणिः । तत्सांनिध्यादग्निः शीतलतामेति नैप दाहयति ॥ ३ ॥ तद्रसलिप्ते हस्ते धारयितुं शक्यते वह्निः । तद्रसलिप्तशरीरः शक्नोत्यग्नौ प्रवेष्टुमक्लेशात् ॥ ४ ॥

एवं प्रस्तरोऽप्य यश्चन्द्रकान्तमणिः । सोऽतिशीतलः प्रस्तरः संनिधानमात्रेणाग्नि शीतलयति ॥ तत्संनिहितोऽग्निः स्पृष्टोऽपि न दाहयति । चन्द्रकान्तसंनिहितोऽप्यग्निः सूर्य्यकान्तमणिसंनिधानात्पुनर्दहति । चन्द्रकान्तोपजनितशीतलतायाः सूर्य्यकान्तेन निरस्तत्वात् ॥

३— अक्षय्यकरणी=सा विद्या यया गृहभाण्डस्थमन्नं पर सहस्रैर्भुज्यमानमपि न क्षीयते । पूर्वं तावत् सूर्यमाराधयतानेन युधिष्ठिरेण सूर्य्यादेकं पिठरमुपलब्धं तत्प्रभावादन्नमक्षय्यमासीदित्युक्तं भारते—

गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत ॥ १ ॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति ॥ २ ॥
संस्कृतं प्रसवं याति स्वल्पमन्नं चतुर्विधम् ।
अक्षय्यं वर्द्धते चान्नं तेन भोजयते द्विजान् ॥ ३ ॥
भुक्तवत्सु च विप्रेषु भोजयित्वाऽनुजानपि ।
शेपं विघससंज्ञं तु पश्चाद् भुङ्क्ते युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरं भोजयित्वा शेषमश्नाति पार्वती ।
द्रौपद्यां भुज्यमानायां तदन्नं क्षयमेति च ॥ ५ ॥

अथ यत्किञ्चिन्मात्रेणैकस्मिन्नप्यात्मनि तर्पिते ततोऽन्येषामात्मना तर्पणमप्यत्रैव संनिविशते । (वन० ३)

ततः कदाचिद्दुर्वासाः सुखासीनाँस्तु पाण्डवान् ।
भुक्त्वा चावस्थितां कृष्णां ज्ञात्वा तस्मिन् वने मुनिः ॥ १ ॥
अभ्यागच्छत् परिवृतः शिष्यैरयुतसंमितैः ।
दृष्ट्वायान्तं तमतिथिं स च राजा युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
विधिवत् पूजयित्वा तमातिथ्येन न्यमन्त्रयत् ।
जगाम च मुनिः सोपि स्नातुं शिष्यैः सहानघः ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रौपदी योषितां वरा ।
चिन्तामवाप परमामन्नहेतो पतिव्रता ॥ ४ ॥
सा चिन्तयन्ती च तदा नान्नहेतुमविन्दत ।
मनसा चिन्तयामास कृष्णं कंसनिषूदनम् ॥ ५ ॥
द्रौपद्याः संकटं ज्ञात्वा द्वारकास्थः स माधवः ।
पार्श्वस्थां शयने त्यक्त्वा रुक्मिणीं केशवः प्रभुः ॥ ६ ॥
तत्राजगाम त्वरितो ह्यचिन्त्यगतिरीश्वरः ।
ततस्तामब्रवीत् कृष्णः क्षुधितोऽस्मि भृशातुरः ॥ ७ ॥
शीघ्रं भोजय मां कृष्णे पश्चात् सर्वं करिष्यसि ।
निशम्य तद्वचः कृष्णा लज्जिता वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
स्थाल्यां भास्करदत्तायामन्नं मद्भोजनावधि ।
भुक्तवत्यस्म्यहं देव तस्मादन्नं न विद्यते ॥ ९ ॥
कृष्णे न नर्मकालोऽयं क्षुच्छ्रमेणातुरे मयि ।
शीघ्रं गच्छ मम स्थालीमानयित्वा प्रदर्शय ॥ १० ॥
स्थाल्याः कण्ठेऽथ संलग्नं शाकान्नं वीक्ष्य केशवः ।
उपयुज्याब्रवीदेनामनेन हरिरीश्वरः ॥ ११ ॥
विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक् ।
आकारय मुनीन् शीघ्रं भोजनायेति चाब्रवीत् ॥ १२ ॥
ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम् ।
दृष्ट्वोद्गारान् सान्नरसान् तृप्त्या परमया युता ॥ १३ ॥

(वन० २६२)

(४) निग्रहणी=यथायमगस्त्यऋषिर्विंध्यपर्वतं निजग्राह । यथा श्रीकृष्णो [illegible]

सूर्य्यं निजग्राह। यथा कपिलमहर्षिः सगरपुत्रान् षष्टिसहस्रमितान् सागरकूले निगृह्य भस्मसाच्चक्रे। यथा नहुषो देवेन्द्रपदं प्राप्तोपि गौतमादिभिर्निगृहीतः सर्पोऽभूत्। नृगश्च राजा महर्षिशप्तः कृकलासोऽभूत्। राजा परीक्षिच्च शमीकपुत्रेण शृङ्गिणा शप्तस्तक्षकसर्प दंशात् प्राणाँस्तत्याज। च्यवनक्रोधाद्राज्ञः शर्य्यातेर्नगरे सर्वेषां मलमूत्रनिरोधोऽभूत्। विश्वामित्रक्रोधाद्धरिश्चन्द्रो राजा पीडितोऽभूत्॥

अनुग्रहणी=यथा गौतमशापात् प्रस्तरभूताया अहल्यायाः शापोद्धारानुग्रहं स्वचरणस्पर्शेन चकार भगवान् रामचन्द्रः। यमलार्जुनवृक्षः कृष्णस्पर्शादनुगृहीतः। समुद्रे निमज्जतो भुज्युराजस्याश्विभ्यामुद्धरणमुक्तं वेदे॥

(५) पुत्रजननीयम्=या एता लोके वन्ध्याः स्त्रियः तासां पुत्रजननप्रतिबन्धका दोषाः शुक्रशोणितपितृनागग्रहादिभेदादष्टौ वैद्यैः स्मर्य्यन्ते। तेषामष्टानामपि दोषाणामेकेन यज्ञेनैव शक्यते निवृत्तिः कर्तुम्। यथा विभाण्डकसुत ऋष्यशृङ्गोऽयोध्यायां पुत्रेष्टियज्ञं संपाद्य चरुप्राशनेन दशरथपत्नीषु रामलक्ष्मणादींश्चतुरः पुत्रान् संभावयामास। ऋचीकमहर्षि कृतचरुभक्षणात् परशुरामविश्वामित्रयोरुत्पत्तिः। द्रुपदस्य राज्ञो यज्ञाद् द्रौपदी जज्ञे धृष्टद्युम्नश्च। श्रद्धादेवस्य मनोर्यज्ञादिलाकन्या जज्ञे।

(६) प्रावृषेण्या=वृष्टिकरणीयं विद्या। अवग्रहकाले कारीरीष्ट्यादिभिर्वृष्टिः शक्यते कर्तुम्। यथा विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गः समागत्यायोध्यायां जलं वर्षयामास।

(७) आपोनप्त्रीयम्=अपां नानारूपाणि यत्र तत्र भिद्यन्ते—अम्भो मरीचिर्मरः श्रद्धारस इत्यादीनि। सूर्य्यादूर्ध्वप्रदेशे प्रत्युत्पन्नं सर्वजगद्व्यापकमुदकमदृश्यरूपमम्भः। सूर्य्यरश्मौ मरीचिः। मृत्तिकात्वेमरः। चन्द्ररश्मौ श्रद्धा। एवं वायौ रसः। तत्र या इमा रसात्मिका आपो वायौ नित्यं तारतम्येनाहिता भवन्ति। त इमे रसा अहरहः पृथिव्यां प्रत्यर्थं मुपसीदन्ति। तेषां संग्रहणविज्ञानाद् यथेच्छं यत्र तत्र निर्जलेऽपि देशे वायुतः प्रतिमूर्च्छनया जलान्युपार्जयितुं शक्यन्ते। तत् प्रकारश्च वेदे आपोनप्त्रीमसूक्ते सुविशदं प्रदर्शितः। पुराणे खलु कवष ऐलूषः प्राचीसरस्वतीकूले सत्रमातिष्ठमानैर्ब्राह्मणैर्निराकृतो मरुधन्वप्रदेशं प्रापितः सन्नेतया विद्यया वायोर्भूयांसि जलान्याविष्कुर्वन् परिसारकनदी जनयामास।

(८) मधुविद्या=मधुमक्षिकायाः मधुकोशमिवैतत् सूर्य्यमण्डलं भावयित्वा तद्रश्मिसूत्रैरधः परिस्रुतानां मधुबिन्दूनां परिग्रहणं मधुविद्या। मधुशब्दोऽयमुपलक्षणं दधिघृतामृतानाम्। येन पृथिव्या शरीरं संगठितं कठिनं वाऽन्यत्। किञ्चिद् भवति। स सूर्य्यरसो दधि

कथ्यते येनान्तरिक्षस्वरूपं संपद्यते तद् घृतम्। येन दिवस्तन्मधु। येन दिव ऊर्ध्वं तद्-भूतम्। चत्वारोऽ येते भावा अहरहः सूर्य्यात् पृथिव्यामस्यां परिवर्षन्ति तेषां परिवर्षण-क्रमविज्ञानाद्बहवोऽर्था यथेच्छं साधयितु शक्यन्ते। दध्न्युपादाने घृतमधुनोः संश्लेषण-योर्योगादनेकभावोत्पत्तिसंभवात्। तामिमां मधुविद्यां दध्यङ्ङाथर्वणो जानातिस्म। ततोऽश्विनौ च।

आगामीयमन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ।

अथ मारणमोहनोच्चाटनवशीकरणविद्वेषणस्तम्भनाकर्षणादयो मन्त्रशास्त्रोक्ताः सिद्धयः पुरश्चरणानुष्ठानपूर्वकप्रयोगसाधिताः शारदातिलकमन्त्रमहोदधितन्त्रसारादिग्रन्थेभ्यो विज्ञेयाः।

महौषधि बलसिद्धयोऽष्टौ।

(१) मृतसंजीवनी=इयं महोषधिरभिमन्त्रिता सती स्वप्रभावेण मृतानामपि प्राणिनां शरीरं पुनः प्राणेन सयोज्य पुनरुज्जीवितं तदुत्थापयति। यथा शुक्रः पुरात्वे देवासुरसंग्रामेऽहर-हर्मृतानामप्यसुराणां मृतसञ्जीवन्योषधिप्रभावेणाहरहर्जीवयति स्म। यथा वा बृहस्प-तिपुत्रः कचः शुक्रशिष्यैरसुरैर्भूयो भूयो व्यापादितोऽपि संजीवन्या विद्यया शुक्रेण पुनरुज्जीवितोऽभूत्॥ १॥ वेनाङ्गुष्ठमथनेन पृथु पुत्रो जनित इति सेयं विद्यापि मृत-संजीवन्यां विद्यायां संनिविशते।

(२) संजीवकरणी=इयमोषधिर्मूर्छया नष्ट संज्ञानां तत्क्षणात् पुनश्चैतन्योत्पादनायोपयुज्यते।

श्रुत्वा तद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत्।
देवासुर महायुद्धमनुभूतं पुरातनम्॥ १॥
तदा स्म दानवा देवान् शरैर्जघ्नुर्मुहुर्मुहु।
तानार्ताांन्नष्टसंज्ञांश्च गतासूंश्च बृहस्पतिः॥ २॥
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति।
तान्यौषधान्यानयितु क्षीरोदं यान्तु सागरम्॥ ३॥
हरयस्तु विजानन्ति पार्वती ते महौषधी।
संजीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम्॥ ४॥
चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी॥ ५॥ (यु० ५०)

समीपस्थमुवाचेदं हनुमन्तं महाकपिम् ।
सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ॥ ६ ॥
दक्षिणे शिखरे जातां महोषधिमिहामय ।
विशल्यककरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ॥ ७ ॥
संजीवकरणीं वीरसंधानी च महौषधिम् ।
संजीवनार्थं वीरस्य लक्ष्मणस्थ स्वमानय ॥ ८ ॥
ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणाय ददो नस्तः सुषेणः परमौषधिम् ॥ ६ ॥
स तस्य गंधमाघ्राय सशल्यो लक्ष्मणस्तदा ।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥ १० ॥

(वा० रामायणे यु० १०२)

(३-४) विशल्यकरणी=इयं महोषधिः सावर्ण्यकरणी च नियुद्धे शस्त्रास्त्रविहतानां तत्क्षणादेकरात्रेण वा नैरुज्योत्पादनेन पुनर्युद्धयोग्यतासंपादनार्थमुपयुज्यते । भीष्मपरशुरामयुद्धे त्रिसप्ताहकालिकेऽहरहर्विक्षतयोर्मूर्छामागतयोरपि तयोः पुनर्द्वितीयेऽहनि पूर्ववद् बलोत्साहौ सज्जता च स्मर्य्यन्ते ॥ १ ॥ छिन्नांगोद्भावनमप्यत्रैव संनिविशते । तच्च विच्छिन्नानामसतामङ्गानां सूर्य्यरश्मिप्रभावेण पुनरुत्पादनम् । यथा सुद्युम्नेन राज्ञा स्तेयदण्डरूपेण लिखितस्य ऋषेर्हस्ते छिन्ने पुनः शंख ऋषिः सैतवाहिन्यां नद्यां संस्नाप्य पूर्ववत् तद्बाहुमुत्पादयामास ।

(५) संधानकरणी=विच्छिन्नाङ्गसंधानायोपयुज्यते । यथा ग्रीवातिरिक्तानामङ्गानां शस्त्रच्छिन्नानां संश्लेषणद्रव्यसंयोगं विनैव देवराज इन्द्रः संधत्ते स्मेति ऋग्वेदसंहितायामाख्यातम् । "य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः । सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विहुतं पुन."—(८ । १ । १२)

मधुविद्यां ब्रुवतः शिरश्छेत्स्यामीति देवराजेनोक्ते तां शिक्षितुमादावेवाश्विनौ दधीचः शिरश्छेदं कृत्वा शिरः संवोल्य हयशिरसो दधीचो मधुविद्यामुपलेभाते । अथ देवेन्द्रेणाश्वशिरसि विच्छेदिते पुनरश्विभ्यां तदीयं पौर्विकं शिरो यथावत् संयोजितमिति प्रसिद्धमितिहासेषु ।

(६) अरिष्ट-भैषज्या नाम योगविद्यानुगृहीता महौषधिः । यथा सौभरिणा राजकन्यानां शतमितानां कुब्जानां स्वहस्तास्फालनेन कुब्जत्वं निरस्तम् ॥ २ ॥ लङ्कायां मेघनादेन युद्धे

शरबन्धविक्षतयो रामलक्ष्मणयोर्गरुडोऽकस्मादाकाशादुपेत्य स्वाङ्गस्पर्शेन सर्वाङ्गव्रण-शोधनं कृत्वा निर्व्रणत्वं नैरुज्यं च संपादयामास ।

"ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च ।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ १ ॥
वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ २ ॥
तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयो" ॥ ३ ॥

इति रामायणे (यु० ५०)

(७) डिम्भप्रसविनी=यथा सगर महाराजस्य षष्टिसहस्राणि पुत्राणां, धृतराष्ट्रस्य च शतं पुत्राणामौषधिप्रभावादुदपद्यन्त । डिम्भमेक खण्डशः कृत्वातान् खण्डान घृतकलशे महौषधिघृताढ्ये निक्षिप्य कंश्चिन्मासैः परिपक्वांस्तान् गर्भान्तत प्रादुर्भावयामासुर्महर्षयः ।

"कनिष्ठा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः ।
तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसंमिताः ॥ १ ॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः ।
ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम् ॥ २ ॥
कुमारास्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्द्धना ।
संवभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथासुखम्" ॥ ३ ॥ (ब्रह्म पु० अ० ६)

(८) बलातिबले—मन्त्रयुक्ते महौषधी एते । यथोक्तं रामायणे वाल्मीकीये—(बाल० २२)

"गृहाण वत्स सलिलं माभूत् कालस्य पर्ययः ।
मन्त्रग्रामं गृहाणत्वं बलामतिबलां तथा ॥ १ ॥
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ।
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत् सदृशस्तव ॥ २ ॥
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ।
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः ॥ ३ ॥
न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ।
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत् सदृशस्तव ॥ ४ ॥

न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये ।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥ ५ ॥
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम ॥ ६ ॥
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद् भुवि ।
पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥ ७ ॥
ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ।
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः" ॥ ८ ॥

यन्त्रबलसिद्धयोऽष्टौ ।

(१) दिव्यविमानम्—ऋभुनिर्मित मुक्तमृग्वेदे चतुर्थमण्डले षट्त्रिंशसूक्ते भगवता वामदेवेन "अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः महत् तद्वो देवस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥" (४ । ३६ । १)

(२) पुष्पकविमानं रामायणे निरूपितम्—(युद्धकां १२३—१२४)
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥ १ ॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥ २ ॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्य्यसंनिभम् ।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥ ३ ॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रमम् ॥ ४ ॥
तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥ ५ ॥
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैदूर्य्यमणिवेदिकम् ।
कूटागारैः परिक्षिप्तं सर्वतो रजतप्रभम् ॥ ६ ॥
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलंकृतम् ।
काञ्चनं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मैर्विभूषितैः ॥ ७ ॥

प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षकम् ।
घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ॥ ८ ॥
तं मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
बृहद्भिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्तारजतशोभितैः ॥ ९ ॥
तलैः स्फटिकचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥ १० ॥
तद्विमानं कामगमं पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥ ११ ॥
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः ।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥ १२ ॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौवेरं परमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥ १३ ॥
खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ १४ ॥
ते सर्वे वानरर्क्षाश्च राक्षसाश्च महाबलाः ।
यथासुखमसंबाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥ १५ ॥

(३) सौभविमानं = मार्तिकावतराजस्य शाल्वस्यासीत् । युद्धविमानमेतद्बहुविस्तृतमासीत् ।
उक्तं च भारते वनपर्वणि कृष्णेन ॥ (२२),
खे विषक्तं हि तत् सौभं क्रोशमात्र इवाभवत् ।
शाल्वराजो युध्यमानो वियदभ्यगमत् पुनः ॥ १ ॥
ततो नादृश्यत तदा सौभं कुरुकुलोद्वह ।
अन्तर्हितं माययाऽभूत् ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥ २ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषं गत्वा पुनरेव व्यदृश्यत ।
सौभं कामगमं वीरो मोहयन्मम चक्षुषी ॥ ३ ॥
आग्नेयमस्त्रमादाय युद्धे मतिमधारयम् ।
वधाय शाल्वराजस्य सौभस्य च निपातने ॥ ४ ॥
रूपं सुदर्शनस्यासीदाकाशे पततस्तदा ।
द्वितीयस्येव सूर्यस्य युगान्ते प्रतपिष्यतः ॥ ५ ॥

तत् समासाद्य नगरं सौभं व्यपगतत्विषम् ।
मध्येन पाटयामास क्रकचो दार्विवोच्छ्रितम् ॥ ६ ॥
द्विधाकृतं ततः सौभं सुदर्शनबलाद्धृतम् ।
तस्मिन्निपतिते सौभे चक्रमागात्करं मम ॥ ७ ॥
तन्मेरुशिखराकारं विध्वस्ताट्टालगोपुरम् ।
दह्यमानमभिप्रेक्ष्य स्त्रियस्ताः संप्रदुद्रुवुः ॥ ८ ॥

(४) अथ सूतविमानं तु त्रिकत्तं पारदाभ्रकैः ।
आस्थानयन्त्रभागाभ्यां द्विविभक्तं मनोजवम् ॥ १ ॥
यन्त्रभागे निम्नकोष्ठे सुदीप्तेनाग्निनाचितम् ।
तदूर्ध्वंपारदेनाढ्यं तदूर्ध्वं चाभ्रका चितम् ॥ २ ॥
तिर्य्यगूर्ध्वाधरान् देशान्नमितुं तद्यथेच्छया ।
आयसीभिर्भूयसीभिर्नलिकाभिः समाचितम् ॥ ३ ॥
गन्धकैरपि तद्युक्तं निपूणैर्निर्म्मितं पुरा ।
गौरीशंकरवीर्य्याभ्यां विमानं कृतमद्भुतम् ॥ ४ ॥

(५) हर्य्यश्वविमानम्=इन्द्राय दारुविनिर्म्मितं संयुक्तं हयद्वयात्मकम् । यथोक्तंवेदेशच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवयानम् ॥
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ४ । ३५ । ५ ॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वाः ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मेधत्त ऋभवः क्षमयन्तो न मित्रम् ॥ ४ । ३३ । १० ॥

(६) प्लवविमानं=समुद्रसंतरणसाधनदारुनिर्मितं पक्षिरूपमश्विकृते सुधन्वराजपुत्रैर्ऋभुभिर्विनिर्म्मितम् । नैतत्समुद्रे निमज्जति स्म । एतदारूढा अनायासेन समुद्रमत्यूर्म्मिमालाकुलमपि संतरन्ति स्म ।

(७) अमृतगवी=रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् । त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ता. ॥ ४ । ३३ । ८ ॥
ऋभुभिर्गौरति भव्या कामगवी निर्म्मिता चित्रा ।
एषा यदेव किञ्चित् प्राप्नोत्यमृतं ततोदुग्धे ॥ १ ॥

(८) शिलासंतरणी="नलेन कपिवीरेण वायुवेशाल्लघूकृतैः शिलाखण्डैः संतरद्भिः सेतुरब्धौ प्रवर्तितः ॥ १ ॥" अद्यत्वे गङ्गायां पञ्चभिरब्दैर्भवेन्न वा सेतुः । पञ्चभिरहोभिरब्धौ

रामः सेतु शिलामयं व्यदधात् ॥ २ ॥ पूर्वयुगे यद्वीर्य्यं यथाद्भुतकर्म्म चक्रिरे वीरा.। अनुकर्तुं तदशक्ता अनृतं मन्यन्त आत्मनस्तुष्ट्यै ॥३॥ अद्यातिहीनवीर्या अल्पारम्भा स्वमानरक्षार्थम्। पूर्वेषामिह कीर्त्तिं न सहन्ते कूपमण्डूकाः ॥ ४ ॥

अथ स्वयंवहादयो यन्त्रविशेषाः ।

१—आभ्य सर्वाभ्यो विद्याभ्योऽप्यधिकचमत्कारवती नितान्तमुपयोगिनी स्वयंवहयन्त्रविद्या भवति। तया दैनिक षष्टिघटिकापलविपलादिज्ञानमतिसूक्ष्ममसंशयितं यथार्थरूपमुपसंपद्यते। तन्निर्माणप्रयोगादिप्रकारा सूर्य्यसिद्धान्ते सिद्धान्तशिरोमणौ च विशिष्योल्लिखिता द्रष्टव्या ।॥

ब्राह्मणानामष्टभ्यो वीर्य्येभ्यः सर्वासां विद्यानां प्रादुर्भावः ।

२—एवं केचिद् विद्या विभजन्ते भारतीयास्ता ।
एता एव स्वपरे ब्रुवते पुनरन्यथा दृष्ट्वा ॥ १ ॥
ब्राह्मणवीर्य्याण्यष्टौ दैवाद् योगेन यज्ञतस्तपसा।
मणिमन्त्रौषधियन्त्रैरेषां भेदाश्च बहवः स्युः ॥ २ ॥
एकैकविद्ययापि च लभतेऽपूर्वं जनस्तु सामर्थ्यम्।
नातः परं तु किञ्चिद्बलमधिकं संभवत्यत्र ॥ ३ ॥

॥अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम्। तुङ्गबीजसमायुक्त गोलयन्त्र प्रसाधयेत् ॥१ ॥ [illegible]साधनार्थाय तथा यन्त्राणि संग्रहेत् एकाकीयोजयेद्बीजयन्त्रे विस्मय कारिणी ॥ २ ॥ (सू० सि० [illegible]दध्याये १७ १६)सिद्धान्तशिरोमणावपि लघुकाष्ठजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम् [illegible] सुषिरस्यार्द्धं पृथक्त्वासाम् ॥१॥ रसपूर्णं तच्चक्रं द्व्याधारावस्थितं स्वयं भ्रमति। [illegible] परितो मदनेन संलग्नम् ॥२॥ तदुपरि तालदलार्धं कृत्वा सुषिरे रस क्षिपेत् तावत् [illegible] जलं नान्यतो याति ॥३॥ पिहितश्छिद्र तदतश्चक्र भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् [illegible] स्वुपूर्णस्य ॥४॥ एवं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमत्र स्वधोमुख च बहि । [illegible] पतति ॥५॥ नेम्या बध्वा घटिकाचक्रं जलयन्त्रवत्तथा धार्य्यम्। [illegible] ॥६॥भ्रमति ततस्ततसतत पूर्णघटीभिः समाकृष्टम्। चक्रच्युत तदुदकं कुण्डे याति [illegible] ॥७॥

दैववली योगवली यज्ञवली वा तपोवली निगमात् ।
मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रैरागमत. स्याद्वली विप्रः ॥ ४ ॥
नास्ति पृथिव्यां सोऽर्थो वीर्य्यात् पूर्णान्न यः सिध्येत् ।
दैवाद् योगाद् यज्ञाततपसो मन्त्रान् महौषधितः ॥ ५ ॥

सर्वविधानां सर्वार्थसिद्धौ हेतुत्वं तुल्यम् ।

३—इत्थं विद्याः कारणकार्य्यविभागेन दर्शिता एताः ।
किन्त्वविशेषात् सर्वाः सिद्धय एभ्योऽष्टवीर्य्येभ्यः ॥ १ ॥
दैवाद् योगाद् यज्ञात् तपसो मणिमन्त्रतन्त्रयन्त्रेभ्यः ।
तुल्यवदेव समग्राः कामा निश्चित्य सिध्यन्ति ॥ २ ॥

नवनिधयः ।

एता हि सिद्धयोऽष्टौ बहुभिर्यत्नैः प्रसाधनात् सिद्धेः ।
अथ नवनिधयस्त्वन्ये गृहे निधानं ह्यपेक्षते तेषाम् ॥ ३ ॥
"महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव" ॥ ४ ॥
एषामेकोऽपि गृहे निहितः परमां श्रियं तनुते ।
सपरिच्छदान्नवस्त्रप्राचुर्य्यं भोगसौभाग्यम् ॥ ५ ॥
नापेक्ष्यतेऽत्र मन्त्रो न यन्त्रतन्त्रे न यज्ञयोगौ वा ।
केवलनिधानमङ्गे गृहेऽपि लक्ष्मीं विवर्द्धयति ॥ ६ ॥

निधिविशेषा अष्टौ मणयः ।

४—औषधयोऽपि च निधयो निधिप्रभावाः प्रसिद्ध्यन्ति ।
कतिचित् तासामष्टौ मणिसंज्ञा अत्र कथ्यन्ते ॥ १ ॥

	१	२	३	४	५	६	७	८
अष्टमणय	इन्द्रमणि	जङ्गिड-मणिः	प्रतिसर-मणिः	वरण-मणिः	दर्भमणिः	औदुम्बर-मणिः	शतवार-मणिः	अस्तृत-मणिः

शक्तिर्गुणाश्च वीर्य्यं रसो विपाकः प्रभावश्च ।
प्रत्योपधि भिद्यन्ते मणित्वमेषां प्रभाववैशेष्यात् ॥ २ ॥
सन्त्योपधयः सर्वा प्रभाववत्योऽथ ताम्वष्टौ ।
मणयः स्युरिन्द्रजंगिडप्रतिसरवरणादय ख्याता ॥ ३ ॥
हस्ते धृतेन्द्रमणिरिह महौषधिः स्वप्रभावेण ।
दिव्यां दृष्टिं दत्ते तथोक्तमाथर्वणे वेदे ॥ १ ॥ (४ । २० । १ । ६)
आपश्यति प्रतिपश्यति परापश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद्देवि पश्यति ॥ २ ॥ (४ । २० । १)
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिश पृथक् ।
त्वयाऽहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योपधे ॥ ३ ॥
ता मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आदधत् ।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः ॥ ४ ॥ (४ । २० । ४)
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्य ।
पिशाचान् सर्वान्दर्शयेति त्वारभ ओपधे ॥ ५ ॥ (४ । २० । ६)
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं त पिशाच प्रदर्शय ॥ ६ ॥ (४ । २० । ६)
अथ जङ्गिडमणिरन्यो धृतः शरीरे प्रवर्द्धयत्यायु ।
कृत्यादोप हरति च तथोक्त माथर्वणे वेदे ॥ १ ॥
दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणा सदैव ।
मणिं विष्कन्ध दूषण जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥ २ ॥ (२ । ४ । १)
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणि सहस्र वीर्य्य परिरिण पातु विश्वत ॥ ३ ॥ (२ । ४ । २)
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्रिण ॥
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिड पात्वंहस ॥ ४ ॥ (२ । ४ । ३)
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयो भुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥ ५ ॥ (२ । ४ । ४)
शरणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभिरक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृत कृष्या अन्यो रसेभ्य ॥ ६ ॥ (२ । ४ । ५)

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्रण आयूँषि तारिषत् ॥ ७ ॥ (२ । ४ । ६)
एकोनविंशकाण्डस्यायं सूक्तेचतुस्त्रिंशे । (१९ । ३४ । ३५)
पञ्चत्रिंशे तद्वन्मणिरुक्तो जङ्गिडो भूयः ॥ १ ॥
एवं प्रतिसरमणिरयमष्टमकाण्डस्य पञ्चमे सूक्ते (८ । ५)
वरणो मणिरधिदशमं तृतीय सूक्ते विशिष्योक्तः ॥ २ ॥ (१० । ३)
एकोनविंशकाण्डस्याष्टाविंशादिषट्सूक्तैः । (१९ । २८ । ३३)
दर्भो मणिरौदुम्बरमणिर्विशेषादिहाख्यातौ ॥ ३ ॥
एतत्काण्डे सूक्ते षट्त्रिंशे त्वस्ति शतवारः । (२६ । ३६)
अस्तृत मणिरिह गदितः षट् चत्वारिंशके सूक्ते ॥ ४ ॥ (१९ । ४६)
इत्थमनेका ओषधिविद्या आर्य्यैः पुरातनैर्दृष्टाः ॥
आथर्वणे तु वेदे प्रदर्शितास्ततो ज्ञेयाः ॥ ५ ॥

विद्याप्रकरणोपसंहारः ।

देवानामिह समये देवैः प्रोत्साहनात् सुयुक्त्वाच्च ।
भारतवर्षीयार्य्यैरेना उद्भाविता विद्याः ॥ १ ॥
एतासां विद्यानां कारव आसन् पृथक् पृथक् कतिचित् ।
तत्प्रतिपत्तिग्रन्थाः कालविलुप्ता न लभ्यन्ते ॥ २ ॥
इतिहासेषु प्रायः प्रसङ्गतश्चर्चिता एताः ।
तेनास्तित्वं ह्यासां पूर्वयुगे भारते विद्धः ॥ ३ ॥

इति ब्राह्मवीर्यप्रसङ्गः ॥ १ ॥

भारतवर्षे युद्धोपयोगिनी चतुःषष्टिर्दिव्यास्त्राणि । (६४)
ब्रह्मशिरो ब्रह्मास्त्रं पाशुपतं वैष्णवं च वरुणास्त्रम् ।
नारायणास्त्रमैन्द्रं प्राजापत्यास्त्रमाग्नेयम् ॥ १ ॥
वायव्यं कौवेरं पार्जन्य—त्वाष्ट्रकालयाम्यानि ।
दानवमथ च स्कान्दं प्रमथं वैनायकं च कूष्माण्डम् ॥ २ ॥
गणगान्धर्वे राक्षस पैशाचे भौत वैताले ।
शारभमाद्यंशावरफैरवमातङ्गनागमकरास्त्रम् ॥ ३ ॥

सौपर्णं भारुण्ड चौलूकं गालणं चेति ।
पाषाणकालकूटे चाक्रे पीके वलातिवले ॥ ४ ॥
औदुंवर च राजस हैमन गुह्यानि शारमुन्माद. ।
स्तम्भनकम्पनजृम्भणजम्भकमूर्च्छानिमीलनोत्पाता. ॥ ५ ॥
प्रस्वापनं च मोहनमचेतनं भ्रामकं ज्वरास्त्र च ।
वैद्युततैमिरतामसभेदादासंश्चतु. पष्टि ॥ ६ ॥
दिव्यास्त्राणि पुरात्वे देवयुगे भारते वर्षे ।
मन्त्रैर्यन्त्रैस्तन्त्रैरद्भुतकर्माणि तान्यासन् ॥ ७ ॥
शरनाराचक्रपाणप्रभृतीन्यष्टादशास्त्राणि ।
लौहानि सर्वदेशे दिव्यास्त्रविधास्तु भारतेऽत्रैव ॥ ८ ॥

दिव्यास्त्रतालिका ।

दैवास्त्राणि १६	यौनास्त्राणि १६	भौतास्त्राणि १६	कर्मास्त्राणि १६
१ ब्रह्मशिरोऽस्त्रम	१७ स्कांदास्त्राणि	३३ मकरास्त्रम	४९ उन्मादास्त्रम्
२ ब्रह्मास्त्रम्	१८ प्रमथास्त्रम्	३४ सौपर्णास्त्रम्	५० स्तम्भनास्त्रम्
३ पाशुपतास्त्रम	१९ वैनायकास्त्रम्	३५ भारुण्डास्त्रम	५१ कम्पनास्त्रम्
४ वैष्णवास्त्रम	२० कूष्माण्डास्त्रम्	३६ उलूकास्त्रम	५२ जृम्भणास्त्रम्
५ वारुणास्त्रम्	२१ गणास्त्रम्	३७ गालणास्त्रम्	५३ जम्भकास्त्रम्
६ नारायणास्त्रम	२२ गान्धर्वास्त्रम	३८ पाषाणास्त्रम	५४ मूर्च्छनास्त्रम्
७ ऐन्द्रास्त्रम	२३ राक्षसास्त्रम्	३९ कालकूटास्त्रम	५५ निमीलनास्त्रम्
८ प्राजापत्यास्त्रम्	२४ पैशाचास्त्रम्	४० चाक्रास्त्रम्	५६ उत्पातास्त्रम्
९ आग्नेयास्त्रम्	२५ भौतास्त्रम्	४१ पैपीकास्त्रम	५७ प्रस्वापनास्त्रम्
१० वायव्यास्त्रम्	२६ वेतालास्त्रम्	४२ वलास्त्रम्	५८ ज्वरास्त्रम्
११ कौवेरास्त्रम्	२७ शरभास्त्रम	४३ अतिवलास्त्रम्	५९ भ्रामकास्त्रम्
१२ पार्जन्यास्त्रम्	२८ तार्क्ष्यास्त्रम्	४४ औदुम्बरास्त्रम	६० वैद्युतास्त्रम्
१३ त्वाष्ट्रास्त्रम	२९ शावरास्त्रम	४५ राजसास्त्रम्	६१ [illegible]
१४ कालास्त्रम	३० फैरवास्त्रम्	४६ हैमनास्त्रम	६२ [illegible]
१५ याम्यास्त्रम	३१ मातङ्गास्त्रम्	४७ गुह्यास्त्रम	६३ तिमिरास्त्रम्
१६ दानवास्त्रम्	३२ नागास्त्रम्	४८ शारास्त्रम	६४ तामसास्त्रम्

रामायणोक्तानि पञ्चाशद् (५०) दिव्यास्त्राणि ।

रामायणे तु विश्वामित्रो रामाय पञ्चाशत् । (५०)
दिव्यास्त्राणि निरूप्य प्रददौ तान्यप्यतो विद्यात् ॥ १ ॥
चक्राणि पञ्च पाशत्रयमशनी द्वे गदे च द्वे ।
शक्ती द्वे च महास्त्रंषोढा पोढैव तीव्रास्त्रम ॥ २ ॥
साधारणास्त्रभेदाः सन्ति चतुर्विंशतिरत्र ।
मन्त्राहितानि सर्वाण्यमोघवीर्य्याणि सिध्यन्ति ॥ ३ ॥

पञ्चाशद्दिव्यास्त्रतालिका ।

१	१ दण्डचक्रम	५	१ कंकाल मुसल-	८	१ विद्याधरास्त्रम	१४ तामसम्
	२ धर्मचक्रम		शक्तिः		नन्दमसिरत्नम	१५ सौमनम्
	३ कालचक्रम		२ कायालकिंकणी-		२ गान्धर्वास्त्रं	१६ संवर्तम्
	४ विष्णुचमक्र		शक्तिः		मोहनम्	१७ मौसलम्
	५ ऐन्द्रचक्रम	६	१ वज्रास्त्रम्		३ प्रस्वापनम्	१८ सत्यास्त्रम
२	१ धर्मपाशः		२ शैवास्त्रम्		४ प्रशमनम्	१९ मायास्त्रम्
	२ कालपाशः		३ शूलवतास्त्रम्		५ सौम्यम	२० सौरास्त्रं,
	३ वारुणपाशः		४ ब्रह्मशिरोस्त्रम		६ वर्पणम	तेज.प्रभं,परते-
३	१ शुष्काअशनिः		५ ऐषीकास्त्रम्		७ शोपणम	जे.पकर्पणम्
	२ आर्द्राअशनिः		६ ब्राह्मास्त्रम्		८ संतापनम्	२१ सौपास्त्रम,
४	१ मोदकीगदा	७	१ पिनाकास्त्रम्		९ विलापनम्	शिशिरम्
	२ शिखरोगरा		२ नारायणास्त्रम		१० मादनम्	२२ त्वाष्ट्रास्त्रम्-
			३ आग्नेयास्त्र-		११ कन्दर्पास्त्रम्	दारुणम्
			शिखरमग्नि-		कन्दर्पदयितम्	मगास्त्रम्,
			दयितम्		१२ गन्धर्वास्त्रम्,	दारुणम्
			४ वायव्यास्त्रम		गन्धर्वदयितम्	शीतेपु-मानदम
			५ हयग्रीवास्त्रम्		मानवम	
			६ क्रौञ्चास्त्रम्		१३ पिशाचास्त्रम्	
					पिशाचदयितम्	
					मोहनम्	

पञ्चाशद् दिव्यास्त्रसंहाराः ॥ (५०)

अथ चैषामस्त्राणां संहारा रामभद्राय।
पञ्चाशदेव कथिता विश्वामित्रेण तान ब्रुम. ॥ ४ ॥

१	सत्यवान	१८	स्वनाभः	३५	पित्र्यः
२	सत्यकीर्तिः	१९	ज्योतिषम्	३६	सौमनस.
३	धृष्ट'	२०	शकुनम्	३७	विधूत
४	रभस.प्रतीहार तरः	२१	नैराश्य	३८	मकर.
५	अपराङ्मुखम्	२२	विमल	३९	परवीर
६	अवाङमुखम्	२३	योगधर.	४०	रति
७	लक्ष्यः	२४	विनिद्र'	४१	धनम्
८	अलक्ष्य	२५	दैत्यः	४२	धान्यम्
९	दृढ़नाभ.	२६	प्रथमत	४३	कामरूप
१०	सुनाभः	२७	शुचिबाहु	४४	कामरुपो.
११	दशाक्षः	२८	महाबाहु	४५	मोह
१२	शतवक्त्रः	२९	निष्कलि	४६	आवरणम्
१३	दशशीर्ष.	३०	विरुचि	४७	जृम्भक
१४	शतोदरः	३१	सार्चिमाली	४८	सर्पनाथ.
१५	पद्मनाभ	३२	धृतिमाली	४९	पन्थान.
१६	महानाभः	३३	वृत्तिमान्	५०	वरुणः
१७	दुंदुनाभः	३४	रुचिर.		

साधारणानि शस्त्राणि अष्टादश यथा—

(१) (२) (३)
सहचर्म्मखड्गभेदा सधनुर्बाणाश्च परिघश्च ॥
(४) (५) (६) (७) (८) (९) (१०) (११)
पट्टिश-तोमर-कुन्ताः खेट-गदा-परशु-चक्र-शूलानि ॥ १ ॥
(१२) (१३) (१४) (१५) (१६) (१७)
शक्ति-मुद्गरपाशौ हलमुसलभिन्दिपालमन्निपुत्री ॥
(१८)
सशतघ्ना च भुशुण्डीत्येते शस्त्रास्त्रभेदा स्युः ॥ २ ॥
एषामेकैकस्य च बहवो भेदा पुरातनै. कल्प्या. ॥
प्राधान्यतस्त्वमन्त्राण्येतान्यष्टादशास्त्राणि ॥ ३ ॥

अष्टादशास्त्रभाषानामतालिका ।

सं०	संस्कृतम्	पर्याया.	हिन्दी	विशेष.
१	खड्गः सचर्मा	कृपाणः ऋष्टिः असिः, करवालः	तरवार-खांडा	
२	धनुःसशरम्	चापः, धन्वः	धनुष-कमान	
३	परिघ.कालदण्डः	परिघातिनः	लाठी	लोह बद्धो हस्तप्रमाणो लगुडः
४	पट्टिशम्	० ० ० ०	शेल	
५	तोमरः	सर्वला	गुरगूज	
६	कुन्तः	प्रासः	भाला, वल्लम	
७	खेटः	ईलो करवालो १	कटारी-गुप्ती	
८	गदा	० ० ० ०	गुर्ज	
९	परशुः	परश्वधः, स्वधितिः, कुठारः	फरसा कुठार, कुल्हाड़ी	
१०	चक्रम्	० ० ० ०	चक्र	
११	शूलम्	० ० ० ०	शूल	
१२	शक्तिः		वर्छी	
१३	मुद्गरः कूटमुद्गरः	कासः घन., द्रुघणः	मुगदर	सैतीति-महाराष्ट्रभाषा
१४	पाशः	० ० ० ०	फांस	
१५	हलमुसलम	० ० ० ०	हल मूसल	
१६	भिन्दिपालः	सृग.	गोफया-ढेलवांस	पत्थर फेंकने का रज्जुमय यन्त्र
१७	छुरिका	शस्त्री, असिपुत्री	छुरी छुरा	
१८	शतघ्नी भुशुण्डी	० ० ० ०	तोप-वन्दूक	

इति क्षात्रवीर्य्याख्यानम् ॥२॥

भारतीयविड्वीर्य्याख्यानम् ।

भारतीयानां भग्नावशिष्टानामपि शिल्पानामतुलनीयत्वम् ।
वाणिज्यं च पुरासीदत्युत्कृष्टं हि भारतीयानाम् ॥
इतरे सर्वे देशा आयान्ति स्मात्र-भूयसा क्रेतुम् ॥ १ ॥

यद्यपि भारतवर्षे शिल्पिकला शिथिलता क्रमादगमत् ॥
किन्तु न तत्रार्य्याणामलसत्वं मूढतापि वा हेतु ॥ २ ॥
राजाख्यभारतीयो न स धर्म्माणामिहत्यशिल्पानाम् ॥
वृद्धि रक्षां वंशं कुरुते तस्मादियं दशाऽवनता ॥ ३ ॥
अद्याप्यवनतिकाले हीनदशानामपि क्वाचार्य्याणाम् ॥
शिल्पं भारतवर्षे प्रदृश्यतेऽन्यैरतुलनीयम् ॥ ४ ॥
कश्मीरे शालपटश्चोर्णावस्त्रं च दिव्यमप्रतिमम् ।
मलमलवस्त्र ढाकानगरे सूक्ष्मातिसूक्ष्मतरम् ॥ ५ ॥
रूप्यकसहस्रसततकमूल्या शाला विनिर्म्मिता हस्तैः ।
सौष्ठवमौष्ण्यं मृदुतां हृद्यत्वं यादृश धत्ते ॥ ६ ॥
ढाकामलमलवस्त्रं सूक्ष्मतमत्वेऽपि यादृशं धत्ते ।
मसृणत्वं च दृढत्वं सौन्दर्यं चौष्ण्यं मनोहरताम् ॥ ७ ॥
न च तत्तुलनां कर्तुं शक्ता अद्यापि यन्त्रयन्त्रोऽपि ।
सन्त्युत्तमयन्त्रकलायुक्ता अपि भिन्नदेशीया ॥ ८ ॥
अंशुकपट्टविशेषा दारुमृदश्मादिरम्यपात्राणि ।
अद्याप्यवनतिसमये भारतवर्षे प्रशंसनीयानि ॥ ९ ॥
अद्याप्यत्र बहूनि श्लाघ्यानि भवन्ति दीनहतकानाम् ।
कारूणामिह शिल्पान्येभिर्भारतशिरोऽन्नुन्नम् ॥ १० ॥

इति भारतवर्षीयविद्याप्रसङ्गे विद्वार्य्यास्थानं तृतीयम् ॥ ३ ॥

इति भारतपरिचयः प्रथमः ।



अथार्यदासीयाख्यो द्वितीयः प्रसङ्ग आरभ्यते

भारतीयार्य्याणां मौलिकभारतीयत्वसिद्धान्ताद् वैदेशिकत्वमतखण्डनम् ।

ओंकार एव येषामविशेषान्मन्त्र आराध्यः ।
येषां भिन्नमतानामप्यत्रास्त्येकबन्धुत्वम् ॥ १ ॥
येषां शास्त्रं वेदश्चातुर्वर्ण्यं विभाजितो धर्म्मः ।
धेनुर्गङ्गाऽऽराध्या तेषां देशोऽस्ति भारतं वर्षम् ॥ २ ॥
आर्य्यास्तेऽमी उदिताश्चातुर्वर्ण्ये विभाजिता लोकाः ।
तेषां स्वोऽय देशो न तु परदेशादिहागता एते ॥ ३ ॥
पूर्वसमुद्रारब्धो देशो य पश्चिमाब्धिपर्य्यन्त ।
पूर्वोऽस्याय्यावर्त्तं पश्चिम आर्य्यायणं भाग ॥ ४ ॥

एशियामध्यदेशादागतानामार्य्यवीराणां भारतवर्षीय नूतनिवासत्वं [illegible]भावकत्व पञ्चभिर्हेतुभिरेके मन्यन्ते ।

आहुः केचिद् भारते पूर्वमासन् यन्या जात्यान्तै[illegible] ।
जित्वा चैतान् भारतेऽस्मिन् न्यवात्सु पामीराद्रेरागता आर्य्यवीराः ॥ १ ॥
योऽद्रिर्विलूरतागो मुस्तागो वा तयोश्च पश्चिमत ।
जम्बूनदीसदेशोऽप्युच्चे न्यूपुर्य आर्य्याः प्राक् ॥ २ ॥
ते खलु भारतवर्षेऽभ्याक्रम्यैतत् प्रदेशसंभूतान् ।
वासान्निहत्य जयिनो भारतवर्षं निवासिनोऽभूवन् ॥ ३ ॥
यद्वत् पूर्व्वान् स्काटलैण्ड प्रभृतान् हत्वा तत्र [illegible] ।
एवं मन्ये भारते भारतीयान् वन्यान् जित्वा [illegible] ॥ ४ ॥
ये हीदानीं भारते भारतीयाः सभ्या एते सन्ति [illegible] ।
पञ्चैतस्मिन् हेतवः सन्ति वादे [illegible] ॥ ५ ॥

(१) आर्य्याः सर्वे रोमका यावना वा पूर्वं पूर्वोदक् प्रदेशादुपेताः ।
देशे देशे तत्र तत्र न्यवात्सुः सेत्थं ख्यातिः श्रूयते पूर्वकालात् ॥ ६ ॥
आदिस्थानं पारसीकोपदेष्ट्राऽवेस्ताग्रन्थे ह्यैर्य्यनम्वीज उक्तम् ।
मन्ये स स्यादेप पामीरदेशस्तत्रैवार्य्याः पूर्वमासन् वसन्तः ॥ ७ ॥
१ । ३० । ६ अनुप्रत्नस्यौकसो हुवे तुवि—
प्रतिंनरम् । यं ते पूर्वं पिताहुवे ॥ ८ ॥
अत्र प्रत्नस्यौकसो वर्णनेन प्राप्ता एते भारतीया विदेशात् ।
प्रत्नं ह्येषां धाम पामीरमासीन्मन्ये नूत्नं भारतं वर्षमेतत् ॥ ६ ॥
ओघोत्थाने पूर्वकाले कदाचिद् यस्मान्नावोदग् गिरेः पारमायन् ।
तस्मान्मन्येऽत्रागता उत्तरात् ते वेदग्रन्थे तच्छ्रुतं पारयानम् ॥ १० ॥
"मनवे हवै प्रातरवनेग्यमुदकमाजह्रुः ।
तस्य मत्स्यः पाणि आपेदे ॥ स औघ
उत्थिते नावमापेदे । तं स मत्स्य उपन्या पुप्लुवे ।
तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रति मुमोच ।
तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव तदप्येतदुत्तरस्य
गिरेर्मनोरवसर्पणम् । ओघो हताः सर्वाः प्रजा
निरुवाह । अथेह मनुरेवैकः परिशिशिपे" ॥
वेदग्रन्थे वर्णितं यन्नियुद्धं तच्चात्रत्यैः प्रागसभ्यैः सहैषाम् ।
सभ्यानां स्यादागतानां विदेशात् जित्वा चैतान् भारते ते न्यवात्सुः ॥

एतन्मतप्रत्याक्षेप. । यदुपोद्वलकहेतूनामप्रामाण्यात् ।

इत्थं केचिद् भारते भारतोयानेतान् सभ्यान् हन्त पामीरदेशात् ।
प्राप्तानाहुः किन्तु मन्ये तदेषां मिथ्या क्लृप्तं भ्रान्तमत्यप्रमाणम् ॥ १ ॥
ख्यातिस्तावन्न प्रमाणं स्वतन्त्रा यावत्तस्मिन्नान्यदस्ति प्रमाणम् ।
ये त्वत्रान्ये हेतवः केचिदुक्ता हेत्वाभासास्तेऽखिला न प्रमाणम् ॥ २ ॥
पारस्यानामैर्य्यनम्वीज उक्तो योऽयं देशः सोन्य आर्य्याणकः स्यात् ।
तत्राप्यासन् प्राक् तुषारप्रपाता येभ्यो लोका भूयसास विपन्नाः ॥ ३ ॥
तुषारवर्षैर्बहुलैस्तमकाण्डनिपातिभिः ।
आर्य्याणकाभिधे देशे विपन्नं केचिदूचिरे ॥ ४ ॥

प्रत्नं त्वोकः स्वं शुनः शेप एतत् प्रीतिप्राप्त्यै स्मारयत्तागताय ।
इन्द्रायेन्द्र. प्रागजीगर्तयज्ञे हूतः प्रीतोऽनेकधाऽवाप हव्यम् ॥ ५ ॥
ओकः प्रत्नं स्वर्गरूपं यदत्र व्याचष्टेऽसौ सायणस्तावतापि ।
इन्द्रस्याजीगर्तयज्ञे गतस्य प्रत्नौकस्तद् भाव्यते न त्वमीषाम् ॥ ६ ॥
शौनः शेपो मन्त्र एष ह्यमीषां सर्वार्य्याणां प्रत्नमोको विशेषात् ।
पामीरं तल्लक्षयत्येवमुक्तिः पाश्चात्यानां साहसाद् भ्रान्तिमूलान् ॥ ७ ॥
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वाना सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समाना. ॥ ८ ॥"
(३।५८।६।)

विश्वामित्रो जाह्नवीप्रान्तकृप्तां राजस्थाने स्वे कृता यज्ञशालाम् ।
त्यक्त्वाऽरण्ये स्वाश्रमं कल्पयित्वा यत्र धत्ते पूर्वसान्द्रेन्द्र रूपम् ॥ ९ ॥
त्यक्त्वा पूर्वं स्थानमन्यत् प्रगृह्णन् कश्चिद् विद्वान् प्रत्नमोकः स्मरेत् स्वम् ।
सर्वेऽप्यार्य्यास्तावता प्रत्नमोकस्त्यक्त्वाऽत्रैता इत्यसाधु. प्रवादः ॥ १० ॥
यद्वै नावोदगमगिरि' पारयानास्तन्मन्ते ते पाश्चात्त्या [illegible] ।
तच्च भ्रान्तं सा हि नावाभिपत्ति' पामीरादप्युत्तरे [illegible] ॥ [illegible] ॥
आमीन्याख्ये म्लेच्छदेशे गिरिर्य्योऽगराद्यो [illegible] ।
दुद्रावाद्रौ तत्र नावा मनु' प्राग् म्लेच्छे देशेऽपि [illegible] ॥ १२ ॥
नायं शैलो नापि देशोऽयमामीन [illegible] ।
तस्मादेषौघश्रुति प्राक्तनानां पूर्वावास[illegible] ॥ १३ ॥
वेदग्रंथे वर्णितं यत्र समीक तद्यानार्थैर्भारते पूर्वजाते ।
वीरार्य्याणां भारतेऽप्यागतानामासीन् [illegible] ॥ [illegible] ॥
इत्थं प्राहु पण्डिता केऽपि तेषामुक्तं मन्ये [illegible] ।
नार्य्या वीरा भारतस्थाननार्य्यान् [illegible] ॥
सर्वाण्येवैतानि युद्धानि [illegible] ।
स्वर्गस्यातावरित तेषां विशेषाद् [illegible] ॥ [illegible] ॥
भारतीयानां विदेशादागतत्वे हेतुत्वेन [illegible] ।

"तत्रादौ पुरायुगीयानां नाराणां संक्षेपतस्त्रैविध्यम् ।"

अखिला नराः पुरात्वे त्रेधा भिन्नाः प्रधानतो ह्यभवन् ।
(१) (२) (३)
देवा अथ च मनुष्या देवविरोधात् त्वदेवाश्च ॥ १ ॥

(१)
अत्युन्नतविज्ञानाः प्रभाववन्तोऽभवन् देवाः ।
(२)
विज्ञानदुर्बला अपि बहुलप्रज्ञा महाबला असुराः ॥ २ ॥
(३)
साधारणी तु जनता मनुष्यनाम्ना प्रतीताऽऽसीत् ।
१ २ ३ ४
तत्रादेवा आसन् दानव दैत्याश्च दस्यवः पणयः ॥ ३ ॥

अफरीकाद्या देशा दैत्यानां दानवानां च ।
फीनीशिया पणीनां दस्यूनां हेमकूटाद्याः ॥ ४ ॥

अथ देवानां यावान् देशः सा द्यौः स हि स्वर्गः ।
यस्त्विह मनुष्यदेशः सा पृथ्वी भारतं वर्षम् ॥ ५ ॥

यद्यप्यासन् स्वर्गे स्वर्णरसंज्ञा अदेवदेवान्ये ।
किंतु न तेषां देशो भारतवर्षं मनोः प्रजा नैताः ॥ ६ ॥

वेदोक्तसंग्रामाणामारम्भकनिमित्तभेदात्—

पाञ्चविध्यम्

वेदग्रन्थे कथिताः समराः सर्वेऽपि पञ्चभेदाः स्युः ।
१ २ ३ ४
देवानां तैः पणिभिर्दानवदैत्यैश्च दस्युभिश्चाय्यः ॥ १ ॥

सूर्य्यश्चन्द्रः पृथिवी गावश्चेति हि चतुष्टयं तेषाम् ।
देवानामसुरैः सह निमित्तमन्योन्यसंमर्दे ॥ २ ॥

देवाः सूर्य्ये दासैः, पणिभिर्गोष्वद्रिसोमके दैत्यैः ।
क्षित्यर्थे दानवकैरार्य्यैर्युयुधुः प्रकीर्णविषयेषु ॥ ३ ॥

आर्याणां सममार्यैः संघर्षो नातिबहुलोऽभूत् ।
पण्यादिभिस्त्वनार्यैश्चिरहानिकरा हि संगरा घोरा. ॥ ४ ॥
तेष्वपि विशेषतो द्वे युद्धे आस्तां महारम्भे ।
भूम्यर्थे संग्रामा. सूर्यार्थे दस्युयुद्धानि ॥ ५ ॥
इत्थं पञ्चविधा ये संग्रामा यत्र तत्रासन् ।
सर्वेषु तेषु देवा एकत आसन्नथान्यतोऽदेवा ॥ ६ ॥

६—विप्रकीर्णाऽर्थे देवानामार्यैः संग्रामः ।

आर्याणां क्वचिदार्यैः संग्रामाः केचिदासन् प्राक् ।
सोमहृता गुरुपत्नी यथेन्द्रवरुणाभिमर्दहेतुरभूत् ॥ १ ॥
गुर्वङ्गिरो द्वेषवशाद् भृगुस्तदा सोमस्य पक्षं जगृहे [illegible]ऽसुरैः ।
भृगोः पितासौ वरुणो भृगुं गतो यान्यो गुरोरिन्द्रः स्वं गुरुं गत ॥ २ ॥
देवेश इन्द्रो वरुणोऽसुरेशस्ततश्च देवासुरयोः समर्दः ।
गन्धर्वराज्याश्रितमन्त्रिसभ्या समेत्य तन्निर्णयमत्र चक्रुः ॥ ३ ॥
"अकूपारः सलिलो मातरिश्वा वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूः ।
तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्म किल्बिषे आपोदेवी प्रथमजा ऋतेन" ॥ ४ ॥ (१०।१०९।१)
"सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमान ।
अन्वर्तिता वरुणोमित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय" ॥ ५ ॥ (१०।१०९।२)
सोमान्तः पुरतोऽग्निर्मनुष्यपो ब्रह्मजायां ताम् ।
तारां करे गृहीत्वा गुरवे प्रत्यर्पयामास ॥ ६ ॥
"हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ७ ॥
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ८ ॥
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ९ ॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वा योरुगायमुपासते ॥ ११ ॥

आथर्वणे च पञ्चमकाण्डे सूक्ते तु सप्तदशे ।
ताराहरणाख्याने मन्त्रा एकादशान्ततोऽधीताः ॥ १२ ॥

तत्राकूपाराद्यैस्तदा व्यवस्थापकैः सभ्यैः ।
ब्रह्मस्त्रीसंबन्धे ध्रुवा व्यवस्थापिता नीतिः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणजायापहृता राष्ट्रे जनयतितरां बहून् दोषान् ।
ब्राह्मणजाया तस्मादृत ऊर्ध्वं नापहरणीया ॥ १४ ॥

"यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया विधुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादिशश उल्कुषीमान् ॥ १५ ॥

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ १६ ॥

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ १७ ॥

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ १८ ॥

नास्य जाया शतवाही कल्याणीतल्पमाशये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥ १९ ॥

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ॥ २० ॥

नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरियुक्तो महीयते ।
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ॥ २१ ॥

नास्मै पृश्निं विदुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजाया चित्या ॥ २२ ॥

नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान् सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ २३ ॥

७—गवार्थे देवानां पणिभिः संग्रामः ॥ २ ॥

गावो बृहस्पतेः प्राग् वलेन पश्चादिमाश्च देवानाम् ।
पणिभिर्मुषितास्ताः पुनरादातुं घोरनिग्रहः समभूत् ॥ १ ॥
"यदा पणीं ररावसो नियाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ (८ । ६४ । २) ॥ २ ॥
अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते ।
तस्ये हि प्रद्रवा पिब ॥ (८ । ६४ । १०) ॥ ३ ॥
अयं ते शर्य्यणावति सुषो मातामधिप्रियः ।
आर्जीकीये मदिन्त मः ॥" (८ । ६४ । ११) ॥ ४ ॥
इत्थं पणिनिग्रहणे विपाड् विनिर्गतगिरौ कृतं सवनम् ।
पणिसरमासंवादो दशमेऽष्टराते ॥ (१० । १०८) मण्डले. सूक्ते ॥ ५ ॥

३—भूम्यर्थं देवानां दैत्यदानवैः संग्रामः ॥ ३ ॥

"तत्र प्राक् प्रक्रान्तयज्ञोपयुक्तभूमेर्द्वन्द्वायतम् ।"
देवा असुराः सर्वे प्राक् सयुजः सह वसन्त एवासन् ।
देवाः शान्ता विबुधा असुरास्त्वासन् महोद्धता बलिनः ॥ १ ॥
सर्वां पृथ्वीं प्रबला आक्राम्यन्तासुरा यहि ।
देवास्तत्र विरोधं चक्रुस्तद्भागलाभाय ॥ २ ॥
असुरा ऊचुर्यावद् भूमियज्ञाय विष्णुरिवृतास्ति ।
देवेभ्यो दास्यामो वेदिमितः तावदेव भूमिमितिनाम् ॥ ३ ॥
नाकविभागे कश्चिद् यज्ञविधानाय विष्णुना निवृत ।
खर्वः प्रदेश आसीत्तावन् प्रतिजतिरेऽसुरास्तेभ्य ॥ ४ ॥
देवास्तदौषधीनां मूलान्युच्छिद्य पूर्वपश्चिमतः ।
महतीं वेदीं कृत्वाऽऽहवनीयं पूर्वतोऽन्यगृह्णन् ॥ ५ ॥
यज्ञोपकरणभागैराच्छन्दितां महावेदीम् ।
देवयजनमयभूमिं लब्ध्वा लोकेषु सिद्धिमीयुः ॥ ६ ॥
एतद्वाजसनेयब्राह्मणके श्रूयते चरितम् ।
काण्डस्य प्रथमस्य प्रपाठके तु द्वितीये हि ॥ ७ ॥ (काण्ड १ । २) ।

९—देवत्रैलोक्यादसुराणां बहिष्कारः ।

अररुरदेवो मानुषभूमोऽन्युषितो निराकृतः सततं ।
ऐच्छद्दिवमुपगन्तं किन्त्वग्नि स्तं न्यषेधयत तस्मात् ॥ १ ॥
तदपाररुमिति मन्त्रव्याख्याने शतपथे कथितम् ।
काण्डस्य प्रथमस्य प्रपाठके तु द्वितीये च ॥ २ ॥ (शत० १ । २)

१०—देवयजनभूमेस्त्रैलोक्यविभक्ताया ऐशया संज्ञा ।

(एशिया)

भारतवर्षं पृथिवी हैमवतं वर्षमन्तरिक्षं स्यात् ।
उत्तरमधि यावत् कुरुवर्षान्तं त्रिविष्टपं तु द्यौः ॥ १ ॥
ब्रह्मण एकं विष्टपमपरं विष्णोस्तृतीयमिन्द्रस्य ।
एभिस्त्रिभिरधिपतिभिः स्वर्गो लोकस्त्रिविष्टपं भवति ॥ २ ॥
अपि मैत्रिसंहितायां विष्णुमुखानामयं स्वर्गः ।
असुरान् प्रणुद्यलब्धः प्रथमचतुर्थे निरुक्तोऽस्ति ॥ ३ ॥ (मैत्रा० सं० १ । ४)
देवेभ्यस्त्रैलोक्यं यावद् व्यभजत् स्वयंभूः सः ।
तदभूत् प्रसिद्धमासुरभाषायामैशिया नाम ॥ ४ ॥
ईशो मनुः स्वयंभूस्त्रैलोक्येऽस्मिन् स्वयं न्यवसत् ।
तस्मादियं त्रिलोकी प्रथिताभूदैशिया नाम्ना ॥ ५ ॥

११—"दहरेशया स्वायंभुवी ।"

(एशियामाइनर)

त्रैलोक्यमैशियाख्यं देवेभ्यो वसतयेऽभवन्नियतम् ।
तस्यान्तरतः क्षुद्रेशियाख्यदेशः स्वयंभुवोस्य मनोः ॥ १ ॥
सोयं प्रथमो देशस्तत्र प्रथमे नरा अभवन् ।
अत्र जलप्लावन नौ स्तब्धाऽद्रौ चाक्षुषेऽन्तरे हि मनोः ॥ २ ॥
सारसशैलात् प्राच्यां योऽयं शैलोस्त्यरारातः ।
मत्स्यस्तत्र हि चाक्षुषमनुनौकां शृङ्गतो दध्रे ॥ ३ ॥

निपधकुलाद्रे. शाखाशैल. पश्चाद्दूरात. ।
तत्पश्चादिह तारस शैलोऽस्ति च रोमके देशे ॥ ४ ॥
सप्तत्रिंशेऽक्षांशेऽथोज्जयनात् तारस स पश्चिमत ।
एकत्रिंशादंशान् षट्चत्वारिंशदंशान्त ॥ ५ ॥
पश्चिमसमुद्रकूलप्रान्ते स हि तारस. शैल ।
निपधकुलाद्रेः पश्चिमसीमा सेयं त्रिलोक्याश्च ॥ ६ ॥
आसीत् तारकनामा पुराऽसुरस्त्रिपुरनिर्म्माता ।
तारकनिवासहेतोस्तारसशैलोऽयमाख्यात ॥ ७ ॥
वज्राङ्गापरनामा तारो नामाऽसुरः पूर्वम ।
आसीत् तस्य च तारकनाम्ना पुत्रोऽभवत् प्रबल ॥ ८ ॥
ब्रह्मकृपावशतः स हि शार्विकतीर्थे महीसमुद्रतटे ।
स्वमुपनिवेश चक्रे तारस्याख्ये महीधरप्रवरे ॥ ९ ॥
तारस्तस्य पितासीत् तस्मात् स्वावासपर्वतस्यास्य ।
तारस्येत्यभिधानं चक्रेऽसौ तारको मन्ये ॥ १० ॥
तारस्य पर्वतोऽय यस्मिन् प्रान्तेऽस्ति त पुरा प्राहु ।
शार्विकतीर्थं नाम्ना स्कान्दस्मार्ते स्मृतं सदा ([illegible]) [illegible] ॥ ११ ॥
तं च प्रान्तं व्यदधान्मेरुसमं मेरुसमनूनम् ।
दैवं स्वर्गमिवासुरमेत स्वर्गं स नामन [illegible] ॥ १२ ॥
पृथ्व्यन्तरिक्षकं द्यौरित्थं देवास्त्रिलोकमानेनु ।
तत् प्रतिकृत्या त्वसुरास्त्रिपुरं व्यदधुर्महीसमुद्रतटे ॥ १३ ॥
त्रिंशे तूरगिरौ भुवि लौही त्रिपुरी तु राजती [illegible] ।
पञ्चत्रिंशे सप्तत्रिंशे दिवि तारसे गिरौ हैमी ॥ १४ ॥
देवस्वर्गं त्वैश्याशब्देनोचु पुराऽसुरा [illegible] ।
३०
ऐश्याशब्देनैव प्रोचुः स्वर्गं तमासुर [illegible] ॥ १५ ॥

१२—आसुरदेशान्तर्गतोरस [illegible] ।

दायविभागे [illegible] देवेभ्यस्त्रीन् [illegible] ।
तद्वत् त्रीनसुरेभ्योऽप्यन्यान् [illegible]

विपुलास्त्रयः प्रदेशा असुरेभ्यो येऽर्पितास्ते तु ।
अमरीकोऽप्यपरीको यवरूपश्चोदिता असुरैः ॥ २ ॥

१३—"देवत्रिलोक्यामसुराक्रमणम् ।"

असुरास्तत्र बलिष्ठाः स्वान् लोकान् सम्यगासाद्य ।
दैव्यामपि त्रिलोक्यामाचक्रमिरे हठादनीतिस्थाः ॥ १ ॥
स्वायंभुवं तु देशं प्रकल्प्य तीर्थं मनुप्रणाममिषात् ।
असुरास्ते मनुसविधे यातायातं प्रचक्रिरे प्रायः ॥ २ ॥
क्रमशो विरोधमाप्ता अफरीकातोऽप्युपागता असुराः ।
स्वायंभुवमनुदेशानैश्यामायिनरसंज्ञकानजयन् ॥ ३ ॥
तस्मिन् देशे योऽभूद्देवासुरविग्रहस्तत्र ।
असुरा व्यजयन्तामी तेन ततः प्रान्त आसुरः सोऽभूत् ॥ ४ ॥
पूर्वे काले केचिदासन्न देवा देवेभ्यो यैस्ते जिताः सर्वदेशाः ।
तेषां वंशे रोमकाद्या अभूवंस्तेऽर्वाक्कालेऽन्यान्यरूपैर्विभेजुः ॥ ५ ॥
असुरो रोमक आसीत् तन्नाम्ना रोमकोऽभवद्देशः ।
तद्वंश्यैरिह पश्चात् प्रान्तविभागोऽसुरैः क्लृप्तः ॥ ६ ॥
आर्मीनिया च कुर्दिस्थानं वा शामदेशश्च ।
अर्वः फीलिस्थानं मेशोपोटेमिया चेति ॥ ७ ॥
आर्मीनियाप्रदेशे योय शैलोऽस्त्यरारातः ।
जूदीपर्वत उक्तो म्लेच्छैः पूर्वं स युद्धहेतुत्वात् ॥ ८ ॥
जूदीशैलप्रभृतिर्देशो भूमध्यसागरान्तो यः ।
देवासुर संग्रामास्तत्रैवासन् सुविस्तृते प्रान्ते ॥ ९ ॥
देवासुरसंग्रामाः कुर्दिस्थाने वभूवुरधिकाः प्राक् ।
कतिधा देवाः कतिधा त्वसुरा देशानिमान् जिग्युः ॥ १० ॥
असुराणां बलमधिकं मेशोपोटेमिया देशे ।
तस्मादसीरियेति प्रख्यातोऽभूदयं देशः ॥ ११ ॥
ये कालकञ्जकालकदौहृदमौर्य्याश्च कालकेयास्ते ।
कालदियाख्ये देशे (केलडिया) न्यूपुर्यमिराक इत्याहुः ॥ १२ ॥

—१४८—

असुरागमनद्वारं यत आसीच्छामदेशोऽयम् ।
तेनारुध्यत स सुरैस्तस्मादुक्तः स सीरिया नाम्ना ॥ १३ ॥

१४—इन्द्रविष्णुभ्यां वराहासुरप्रतीकारः ।

सर्वत्र देवानसुराः पुरस्तान्व्यपीडयन् तत्प्रतिकारहेतो ।
देवा अपीमानसुराञ्जिघ्नु स एष देवासुरसंप्रहार ॥ १ ॥
स्वर्गे सुराणामधिप स इन्द्र सर्वा प्रजाः प्रत्यहभोजनेन ।
तद्रक्षणेनापि सभाजयंस्ता न्ययोजयत् कर्म्मसु नित्यमासाम् ॥ २ ॥
संवत्सरान्त्येऽह्नि सबालवृद्धाः प्रजा अगल्पन्त तदर्थमन्नम् ।
संवत्सरोपक्रमदेयमासीत् तद्वाममारक्षति वामदेव ॥ ३ ॥
धन गृहं मार्गसरो वनादि वा सर्वं पृथक् रुद्रगणैररक्ष्यत ।
रुद्रा अनन्ता अभवन प्रभुत्वभूदीशान एको दिवि देवनंदति ॥ ४ ॥
वामान्नरक्षाऽधिकृतो बभूव य स वामदेव खलु नामनोऽभवत् ।
वामं तदन्नं परिरक्षितं वसोर्धारानगर्य्या ध्रियते स्म [illegible] ॥ ५ ॥
ज्येष्ठः सुतो ब्रह्मण औरसो वसोर्धारानगर्य्या-निनियुक्त [illegible] ।
ओंकार नामैप तदाज्ञया प्रजास्वन्नं वितीर्णं भवति स्म [illegible] ॥ ६ ॥
तदन्नमाहर्तुमनेकधा व्यधादुपद्रवं दानवस्य [illegible] ।
ओंकार एषः प्रतिचक्र आक्रम स वामदेव [illegible] ॥ ७ ॥
एमूपसंज्ञस्त्वसुरो वराहोपाख्यस्तथासीद् [illegible] ।
स्थितः परस्तात् स हि वाममन्न [illegible] जहार [illegible] ॥ ८ ॥
यासीद् वराहस्य पुरी तथा वसोर्धारापुरी या [illegible] ।
पुर्य्योऽन्तमध्यो बभुरेकविंशतिरासं स [illegible] ॥ ९ ॥
यो लोकपालोऽन्नकुलस्य विष्णुस्तथो सुधन्वा [illegible] ।
श्रुत्वाऽसुराक्रान्तिमयं जगामाऽचिरात [illegible] ॥ १० ॥
अन्वेषयन्विष्णुमियाय चेन्द्रस्तथैव [illegible] ।
इन्द्रश्च विष्णुश्च विधाय [illegible]
उरुक्रमो विष्णुरयं पुरस्ताद [illegible]
वराहमातु [illegible] ॥ १२ ॥

महानसे यत् पचतं गृहे वा चावन्नवर्गो निहितोऽस्य मात्रा ।
तत्सर्वमेपोऽपजहार विष्णुः क्षीरौदनं वा महिपान् शतं च ॥ १३ ॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
इति विष्णोः क्रियानीतिः सोन्नमन्नमुपोऽहरत् ॥ १४ ॥

इन्द्रः पुरीस्ता व्यधमद् गिरींस्तान्दुर्गान् परास्थन्निजघान-योद्धृन् ।
अविध्यदेमूपवराहवक्षःस्थलं गतप्राणममुं स चक्रे ॥ १५ ॥

स वाममोपे निहते वराहे पुरीपु तस्याश्ममयीपु गुप्तम् ।
वामं यदन्नं मुपितं तदासीत् तत् सर्वमप्याहरदेप विष्णुः ॥ १६ ॥

ऋक्संहितायां प्रथमे तु मण्डले तदेकपष्टिप्रमितेस्ति सूक्तके ।
सूक्तेऽष्टमस्यास्ति च सप्तसप्ततिप्राये तदाख्यानमिदं प्रदर्शितम् ॥ १७ ॥

"अस्येदु मातुः सवनेपु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुपा यद् विष्णुः पचतं स हीमान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ १८ ॥
विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेपितः ।
शतं महिपन्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुपम्" ॥ १९ ॥ [८ । ७७ । १०]

व्याख्यातमेतद्ध्यपि तैत्तिरीयके पष्टद्वितीयस्य तुरीयभागके । [तै० ६ । २ । ४]
निदर्शनं तावदिदं प्रदर्शितं तथाऽन्ययुद्धान्यपि कानिचिद् विदुः ॥ २० ॥

"विष्णुर्यज्ञो देवेभ्य आत्मानमन्तरधात तमन्यदेवता नाविदन् ।
इन्द्रस्त्ववेत् । विष्णुरिन्द्रमब्रवीन्—को भवानिति । इन्द्रोऽब्रवीत्—
दुर्गाणामसुराणां हन्ताऽहम् । भवान् कः । विष्णुरब्रवीन् ।
अहं दुर्गादाहर्ताऽस्मि । त्वं तु दुर्गहन्ताऽसीत्यतो वराहमसुरं जहि ।
स हि वराहो वाममुष एकविंशत्या पुरां पारेऽश्ममयीनां वसति ।
तस्मिन्नसुराणां वसुवाममस्ति । तत इन्द्रस्ताः पुरो भित्वा वराहस्य हृदयमविध्यत् ।
ततस्तत्र यदासीत्—तद्विष्णुराहरत्" ॥ २१ ॥

यज्ञोऽन्नमन्नस्य पतिः स विष्णुर्देवनिनुक्तवत्र वराहमागात् ।
किं कर्तुकामोऽत्र भवानुपागादित्याह यत् प्राह भवान् क एवम् ॥ २२ ॥
भूयोऽप्येवंदेवतानां त्रिलोक्यामाक्रम्यन्ते ह्युग्रचेष्टा अदेवाः ।
इन्द्रो विष्णुस्तत् प्रतीकारहेतोरास्तां नित्यप्रोद्यतौ-धर्मधीरौ ॥ २३ ॥

इन्द्रस्य कर्तव्यं कर्म्माख्यातं स्कान्दे कौमारखण्डे एकोनत्रिंशाध्याये ।

"इन्द्रो दिशति भूतानां बलं तेजः प्रजा. सुखम् ।
प्रज्ञां प्रयच्छति तथा सर्वान् दायान् सुरेश्वर. ॥ १ ॥
दुर्वृत्तानां स हरति वृत्तस्थानां प्रयच्छति ।
अनुशास्ति च भूतानि कार्य्येषु बलवत्तर ॥ २ ॥
असूर्य्ये च भवेत् सूर्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमा ।
भवत्यग्निश्च वायुश्च पृथिव्यां जीवकारणम् ॥ ३ ॥
एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रो हि विपुल बलम्" ॥ इति ॥

१५—देवासुराणां द्वादश महासंग्रामाः ।

प्रत्यक् कृष्णादस्युये काश्यपीयादार्मीन्यादेरे सीरियाऽसीरियाऽ. ।
स्वर्गे भूम्यां चात्र देवासुराणां सग्रामा [illegible] ॥ १ ॥
(१) (२) (३) (४)
आडीवक. कोलाहल, हालाहल. जल [illegible] ।
(५) (६) (७) (८) (९) (१०)
त्रैपुर, मान्धक, तारक यात्र. ध्वजयुद्ध [illegible] ॥ २ ॥
(११) (१२)
हैरण्याक्ष, नृसिंहावेते द्वय पुरायुगे [illegible] ।
देवासुरसंग्रामा इतरेऽप्यभवन्निन क्षुधा ॥ ३ ॥

यद्यपि वेदग्रन्थे स्पष्टं न इमे न [illegible] ।
किन्त्वनुमिनुमो लुप्तान सन्ति पुराणे [illegible] ॥
आग्नेयस्याध्याये पट्सप्तनियु [illegible] ।
मात्स्यस्य सप्तचत्वारिंशाध्याये च [illegible] ॥ ४ ॥
निजघानान्धकमसुरं भगवान [illegible] ।
त्रैपुरयुद्धेऽप्येव न्यवधीत् त्रिपुरासुर [illegible] ॥ ६ ॥
उत्तरशामप्रान्ते निरपूली नाम [illegible] ।
तन्मन्ये त्रिपुरं स्यान तत्र त्रिपुरा [illegible] ॥

इन्द्रेण हतो वृत्रस्त्वष्टृसुतो वृत्रवधसमरे ।
निहतश्च विप्रचित्तिर्मायाछत्रः सहानुजो ध्वजके ॥ ८ ॥
हालाहले तु घोरा निहता इन्द्रेण दानवा दैत्याः ।
रजिना नहुषभ्रात्रा कोलाहलपर्वते हता दैत्याः ॥ ९ ॥
इन्द्रार्थे तु वराहो जघान विष्णुर्हिरण्याक्षम् ।
नरसिंहोऽपि च विष्णुर्हिरण्यकशिपुं जघान दैत्येशम् ॥ १० ॥
द्वासप्ततिलक्षैरयमशीतिसाहस्रसंयुक्तैः । (७२८००००)
सैन्यैर्हिरण्यकशिपुर्भारतवर्षं पुराक्रामीत् ॥ ११ ॥
इन्द्रस्य सैनिकानां संख्यानं न स्मरन्त्यत्र ।
सैनिकयुद्धे देवा दैत्यादस्मात् पराजिता अभवन् ॥ १२ ॥
भारतवर्षे दैत्यो हिरण्यकशिपुर्बलात्प्रविष्टोऽभूत् ।
मूलस्थानं नगरं निर्माय पोऽकरोद् राज्यम् ॥ १३ ॥
आसुरभाषाशब्दो मूरः सूर्य्यार्थकस्ततो मूराः ।
सूर्य्योपासकदैत्यास्तत् स्थानं सूर्य्यधामाढ्यम् ॥ १४ ॥
मूलस्थानं नगरं हिरण्यकशिपोस्तदद्य मुलतानम् ।
ब्रूते तत्र हि चतुरः पुरुषान् व्याप्यास्थितं राज्यम् ॥ १५ ॥
आदौ हिरण्यकशिपुः प्रह्लादोऽन्यो विरोचनोऽथ बलिः ।
चक्रे राज्यं तदिदं बलिसमये ध्वंसितं तु सुरैः ॥ १६ ॥
प्रह्लादस्तु तदानीमनीतिमालक्ष्य तत्र दैत्यानाम् ।
पितृद्वेषी विष्णोः पक्षं जग्राह शान्तिकामाय ॥ १७ ॥
शान्त्यै युद्धनिवृत्त्यै प्रह्लादाऽनुमतिमाप्य विष्णुरयम् ।
अन्तः प्रविश्य योगात् सिंहाकृतिरिह जघान दैत्येशम् ॥ १८ ॥
षण्णवतिस्तु कलानामसुरैर्यद्वत् प्रकाशिता पूर्वम् ।
तद्वद्देवैराविष्कृतास्तु विद्याश्चतुः षष्टिः ॥ १९ ॥
तत्रैका विद्यासीदाकृति परिवर्तिनी देहे ।
विष्णुर्यया वराहोऽभवद्विचित्रश्च नरसिंहः ॥ २० ॥
अदधाद् रूपं विष्णुर्मोहिन्याश्चारुकामिन्याः ।
सेयमपूर्वा विद्या देवयुगे योगमायोक्ता ॥ २१ ॥

अत्यद्भुतं स्वरूपं स नारसिहं विधाय चरिष्णु ।
स्कन्भादाविरभूत् तद्विज्ञेयं योगमायात ॥ २२ ॥
नारदसुपाञ्चरात्रे पञ्चविधं ज्ञानमाख्यानम् ।
निर्विषय यज्ज्ञानं परतत्त्वं ब्रह्म तच्छुद्धम् ॥ २३ ॥
कर्मजमगुणब्रह्मज्ञानं परमुक्तिदं तद्वन् ।
सगुणब्रह्मोपास्तिजमवरविमुक्तिप्रदं ज्ञानम् ॥ २४ ॥
दिव्यं ज्ञानं योगजनिद्धमयं तत्र षोडशधा ।
अणिमा महिमा गरिमा लघिमेशित्वं वशित्वं च ॥ २५ ॥
व्याप्तिश्च प्राकाम्यं भूतभविष्यत्परोक्षदूरेक्षा ।
दूरश्रवणं कायव्यूहः परकायवेशश्च ॥ २६ ॥
परजीवहरणजीवप्रदानके सर्गकर्तृ वाशिल्पम् ।
संहारकरणमिति तत् षोडशधा योगजं ज्ञानम् ॥ २७ ॥
अथ पञ्चमं तु विषयज्ञान न्यूनाधिकं लोके ।
इन्द्रियसेवाविषयानुराग आत्मोन्नतिश्चेति ॥ २८ ॥
ज्ञाने पञ्चविधेऽस्मिन् विषयज्ञान तु चेतने सहजम् ।
दिव्यज्ञानमृषीणां देवानां योगिनां चासीत् ॥ २९ ॥
नानाविधार्थनिर्मितिरिव निजस्पान्दना शिल्पम् ।
स्यात् सर्गकर्तृतायां तेनाभून्नारसिंहवपु ॥ ३० ॥
वाग्बद्ध एष विष्णुः सौहार्देनानुगृह्य तं तु तदा ।
प्रह्लादं तद् राज्यासने प्रतिष्ठापयामास ॥ ३१ ॥
इन्द्रेण प्रह्लादो विजितोऽमृतमन्थने पश्चात् ।
इन्द्रेण प्राह्लादिर्विरोचनस्तारकामये निहत ॥ ३२ ॥
वैरोचनिर्बलिश्च प्रतरां निगृहीत इन्द्रविष्णुभ्याम् ।
एते बहुभिर्वर्षे पञ्चैकस्मिन् कृतेऽभवन् समरा ॥ ३३ ॥
षष्टिसहस्रोपेते द्वे लक्षे प्रसुते मनुष्याम् । [२६००००]
बलिदैत्यसैनिकानां रणाङ्गणे तत्र वसिष्ठे ॥ ३४ ॥
यावच्छण्डामर्कौ द्वावसुराणां पुरोहितावास्ताम् ।
असुरास्तावद्विजिता नाभवन् उपनाम्नुपम दानि ॥ ३५ ॥

यदवधि भृगुर्बृहस्पतिसदृशप्रतिभः पुरोहितस्तेषाम् ।
अभवत् तत आरभ्य व्यजयन्तेहासुराः प्रायः ॥ ३६ ॥

१६—मध्यतो बहुधा विजयलाभेऽप्यन्ततो देवानां पराजयः ।

स्वार्थैकसिद्धिपरता धर्म्मान्तरबाधने स्वधर्म्मत्वम् ।
एतद् द्वयमसुराणां विद्रोहोत्थापने हेतुः ॥ १ ॥
शान्तिप्रियताऽत्यर्थं धर्म्मे प्रवणत्वमानृशंस्याख्ये ।
एतद्द्वयमार्य्याणां प्रत्यभिमर्द पराभवे हेतुः ॥ २ ॥
बुद्धिश्चाक्रमणं च द्वे अप्येते बले भवतः ।
उभयोर्मिथोऽभियोगे विजयः कुत्रेति दुरभिगमम् ॥ ३ ॥
यच्चिरकारि विवेकापेक्षं तज्जीयते बुद्ध्या ।
आक्रमणं सा बुद्धिर्जयति सदा सावधाना या ॥ ४ ॥
यत् क्षिप्रकारि पूर्णोत्साहं तज्जयति नूनमाक्रमणम् ।
समयापेक्षा बुद्धिस्तत्राक्रमणेन जीयते प्रायः ॥ ५ ॥
कर्त्तुंयोग्यमयोग्यं वेति धिया यावदेव विविनक्ति ।
धृष्टस्तावत् सपसैवाक्रम्यार्थं निजं प्रसाधयति ॥ ६ ॥
सूर्यो लुप्तश्चन्द्रो लुप्तः संप्रति न दृश्यते प्रायः ।
दैवतसंस्थालोपोत्तरमसुरैस्तद् द्वयोच्छेदात् ॥ ७ ॥
यज्ञजसिद्ध्या येषामात्मा दैवोऽपरो मनुष्याणाम् ।
कृत्रिम उत्पन्नः स्यात् तेषु मनुष्येष्वभूत्तु देवत्वम् ॥ ८ ॥
यज्ञक्रियाविलोपादप्रत्युत्पन्नदैवतात्मानः ।
केवलमनुष्यभावा न पुनर्देवा अकथ्यन्त ॥ ९ ॥
स्वर्गः कृत्स्नो मानुषलोकः समभूदशेषदेवाश्च ।
अभवन् मानुषरूपा आसुरधर्म्मे प्रविष्टाश्च ॥ १० ॥
आसुरधर्म्मे गमनादेवैरपि भूरभूदियं हीना ।
लोकत्रयव्यवस्थालोपाद् भूर्नाद्य दैवताधीना ॥ ११ ॥
देवासुरसंग्रामा यत्र यथा यैरभूवन् प्राक् ।
विशदं तद्द्रष्टव्यं मत्कृतदेवासुरख्यातौ ॥ १२ ॥

४—सोमार्थे देवानां दैत्यैः संग्रामः ॥ ४ ॥

१७—सोमोच्छेदकानुरप्रतियोधाय गंधर्वविनियोगः ।

चन्द्रस्तु सोमवल्लीरूपो यो हेमकूटाद्रौ ।
यज्ञैकसाधनं तद्देवानामुदगच्छदङ्कुरः ॥ १ ॥
यज्ञात् सिद्धार्द्धिं देवानामनेका दृष्ट्वा यज्ञ कर्मसु [illegible] देवाः ।
किन्त्वस्मिंस्ते यज्ञविज्ञानशिक्षाशून्या निधि नाप्नुवन् [illegible] ॥ २ ॥
यज्ञज्ञानायोग्यतां स्वस्य दृष्ट्वा ज्ञानापर्णा [illegible] देवान् ।
तेषां सिद्धौ हेतुभूतस्य यज्ञस्योच्छेदं कर्तुं हन्त निर्मूलनाय ॥ ३ ॥
सूर्यं श्रुत्वा यज्ञविज्ञानहेतुं चन्द्रं श्रुत्वा तद्विधाने च हेतुम् ।
आक्रम्यैते सूर्यचक्रे विहन्तुं [illegible] ॥ ४ ॥
एवं कर्तुं हन्त निर्मूलनाय दैत्यव्रात [illegible] ।
भूयो भूयो हेमकूटाद्रिदेशानेत्योद्यच्छन्ते यथाशक्ति [illegible] ॥ ५ ॥
इन्द्रः श्रुत्वा सोमवल्लीविनाशं तद्रक्षार्थं दैत्यमार्गं [illegible] ।
गन्धर्वाख्यान् वासयामास वीरान् सिन्धोः [illegible] ॥ ६ ॥
गन्धर्वास्ते पूर्वमासन् हिमाद्रेर्[illegible] ।
तेषां वृत्तिं तां निवर्त्याथ योद्धुं वृत्तिं तेषां [illegible] ॥ ७ ॥
गन्धर्वास्ते तत्र काले द्विधाऽऽसन् [illegible] ।
दिव्यास्त्रैर्योत्कृष्टकर्माणि प्राप्ता मर्त्यास्ते [illegible] ॥ ८ ॥

१८—सोमसंरक्षणाय दैत्यान् प्रति योद्धुं नियुक्ता [illegible] ।

स्वर्गं क्रीत्वा सोमसंरक्षणं वै वृत्तिर्ह्येषामाहरन्ति स्म तेभ्यः ।
सोमं देवाः दिव्यगन्धर्वभेदानेतानूचे तित्तिरिः षष्ठकाण्डे ॥ ३ ॥
एभ्यो भिन्ना वीरगन्धर्ववर्गा आसन् द्वेधा तत्र मौनेयसंज्ञाः ।
पातालस्थाः कोटिषट्कप्रमाणा नागैर्द्वेषाद् युद्धमासीत्तु तेषाम् ॥ ४ ॥
कलिभीमसेनभीमोग्रसेनपर्जन्यगोपतिप्रयुताः ।
धृतराष्ट्रसूर्य्यवर्चो वरुणसुपर्णार्कपर्णचित्ररथाः ॥ ५ ॥
शालिशिरा अथ नारदवशिनाविति षोडशैतानि ।
गन्धर्वाणामासन् मौनेयानां कुलानीह ॥ ६ ॥
प्राधेयाः पुनरन्ये गान्धर्वाः कोटयः पुरा तिस्रः ।
सिन्धोः पश्चाद्देशे गान्धाराख्ये वसन्ति स्म ॥ ७ ॥

१ २ ३ ४ ५
सिद्धः पूर्णो वर्हो पूर्णायुर्ब्रह्मचारी च ।
६ ७ ८ ९ १०
रतिगुणसुपर्णविश्वावसवो भानुश्च चन्द्रश्च ॥ ८ ॥

एते दश कुलभेदाः प्राधेयानां प्रसिध्यन्ति ।
एषां च राजधानीपुरमासीद् वर्द्धमानपुरम् ॥ ९ ॥
वल्मीकीये सन्ति रामायणे ते प्रोक्ता, भ्राता रामचन्द्रस्य येभ्यः ।
युद्ध्वा जित्वा स्वस्य पुत्रद्वये तद् राज्यं सर्वं संविभक्तं व्यधत्त ॥ १० ॥
ते चैते प्राधेया मूजवदाद्यद्रिजातसोमानाम् ।
सिन्धु सुवास्तु वितस्ता सरस्वती प्रभृति सरिदप्सु ॥ ११ ॥
वहमानानां विर्चिति रक्षां कर्तुं न्ययुज्यन्त ।
इत्थं वदन्ति कौषीतकिनः स्वब्राह्मणे मुनयः ॥ १२ ॥

क्षुद्रगन्धर्वाः ८	प्राधेयगन्धर्वाः १०	मौनेयगन्धर्वाः १६	[illegible]गन्धर्वा ११
	३००००००००	६०००००००	
१ हाहाः	१ सिद्ध.	१ भीमः	१ [illegible]
२ हूहूः	२ पूर्ण.	२ भीमसेन	२ [illegible]
३ हंसः	३ वर्ही	३ उग्रसेनः	३ [illegible]
४ गोमायुः	४ पूर्णायु.	४ कलि	४ मूर्धन्वान
५ नन्दी	५ ब्रह्मचारी	५ पर्जन्य.	५ [illegible]
६ तुम्बुरुः	६ रतिगुण.	६ गोपति	६ [illegible]
७ चित्रसेन.	७ सुपर्णः	७ अयुत	७ [illegible]
८ विश्वावसुः	८ भानु.	८ धृतराष्ट्र	८ [illegible]
	९ चन्द्र.	९ सूर्यवर्चा.	९ सु[illegible]
	१० विश्वावसु.	१० वरुण	१० [illegible]
		११ सुपर्ण	११ [illegible]
		१२ अर्कपर्ण	
		१३ वशी	
		१४ शार्लिशिरा	
		१५ नारद	
		१६ चित्ररथ	

"गन्धर्वा ह वा इन्द्रस्य सोममप्सु प्रत्यायिता [illegible] ।
त उह [illegible] । ते हा—[illegible]" ॥ [illegible] ॥ ([illegible])

१९—विश्वावसुप्रधानानां गन्धर्वाणामाधिपत्ये [illegible] ।

एषां राजाऽभूच्च विश्वावसुः प्राग् [illegible] ।
भूयो भूयो [illegible] कृतेऽपि [illegible] ॥
दैत्यक्रान्तेः सोमरत्नं विधात [illegible] ।
गन्धर्वाणां शासकं कञ्चिदन्यं [illegible] ।

ब्रह्मा दृष्ट्वा कञ्चिदत्रेस्तु पुत्रं योग्यं युक्तं ब्राह्मवीर्येण तावत् ।
क्षात्रं वीर्यं धातुमत्राभिषिच्य प्रागास्येनाभ्रामयत् कृत्स्नपृथ्व्याम् ॥ ३ ॥
गन्धर्वाणामौषधीनां च सोमादीनां चक्रे तत्र राजानमेतम् ।
❀ गन्धर्वेऽस्मिंस्तं प्रतिष्ठाप्य देशे सोमस्थानं रक्षितुं तं न्ययुङ्क्त ॥ ४ ॥
चन्द्रांशुभ्यो जातमूलं तु सोमं ज्योतिष्मन्तं रक्षितुं यन्नियुक्तः ।
तस्मात् स्वर्गे लोकपालः स भूत्वा चन्द्रः सोमो नामतः ख्यातिमागात् ॥ ५ ॥
पुत्रस्तस्यासीद् बुधो राजपुत्रो नाम्ना ख्यातो हस्तिविद्याप्रवीणः ।
यस्तत्पुत्रोऽभूदिलागर्भजन्मा तस्मादासीच्चन्द्रवंशप्रवृत्तिः ॥ ६ ॥
चन्द्रस्येत्थं चान्तरिक्षावकाशे गन्धर्वाणामाधिपत्ये नियोगम् ।
पूर्णोद्योगं दैवतानां च दृष्ट्वा कञ्चित्कालं स्तम्भितास्ते बभूवुः ॥ ७ ॥

२०—दैत्यैः कृतः सोमवल्लीविध्वंसः ।

एवं सोमध्वंसने चान्तरायं दृष्ट्वा दूरादागमे चान्तरायम् ।
योद्धुं दैत्या यत्नमातस्थिरे ते प्रान्तेऽत्रैव स्वं निवासं विधाय ॥ १ ॥
सैन्यग्रामं ते महान्तं सम्भारञ्च प्राप्य सोत्साहयत्नम् ।
आक्रम्यास्मिन् भारते सिन्धुदेशान् मूलस्थाने स्थापयन्ति स्म राज्यम् ॥ २ ॥
प्रह्लादोऽस्मिंस्तत्पिता तस्य पुत्रस्तत्पौत्रो वा दैत्यराजः प्रसह्य ।
दैतेयान् स्वान् सैन्यचारादिभृत्यान् सोमस्थाने चारणायादिदेश ॥ ३ ॥
तस्मिन्काले दैवयोगेन रुष्टां याच्यं मत्वा चन्द्रसद्माभ्युपेताम् ।
तारां देवाचार्य्यपत्नीं स चन्द्रो हृत्वा देवैर्भर्त्सितश्चिन्तितोऽभूत् ॥ ४ ॥
गन्धर्वाणामेष राजा तदासीत् तेषां नीतो स्त्रीषु वैवाहिकोऽयम् ।
नासीद्बन्धः प्रीतिदायेन पुंसां स्वीया स्त्री स्यादेष जह्रे ततस्ताम् ॥ ५ ॥
आक्रुष्टोऽभूद्दैवतैस्तत्र चन्द्रस्तस्मिन्काले लब्धवेला अदेवाः ।
चन्द्रस्यार्थं साधयन्तः स्वसैन्यैः स्वीये पक्षे चन्द्रमेतं व्यनैषुः ॥ ६ ॥

❀ "सोमो वै राजा अमुष्मिन् लोके आसीद्"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य त्रयोदशाध्याये सोमस्य द्युलोकस्थताख्याता । "द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत् सोमो राजा"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थाध्याये सोमस्यान्तरिक्षस्थताख्याता । "सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वासीद्"—इत्यैतरेयब्राह्मणस्य पञ्चमाध्याये सोमस्य गन्धर्वलोकस्थताख्याता ॥

पक्षग्राहक्रीत एष श्लथोऽभूत् त्वे कर्त्तव्ये सोमसञ्चरोऽर्थे ।
इत्थं दैत्याः सोमवल्लीवितानध्वसे जाताऽन्यदेशान् समर्था ॥ ७ ॥

काले काले सोमवल्लीविनाशे कुर्वन्ति स्तैर्यन्ननन्यत्र युद्धान् ।
दुष्टैर्नीचैर्त्रोह्वीर्याः प्रशस्ता सौम्या वल्ल्यो नाशिता [illegible] ॥ ८ ॥

अद्यत्वे यत्रत्ये सिन्धुपारे बोलनघाटी (Bolan pass) पर्वत प्रान्तभागे ।
माजन्दारान् नामत. ख्यातशैले सोऽय सोमो लभ्यतेऽद्यापि भूयान् ॥ ९ ॥

किन्तु ब्रूमो नैव सोमोऽस्ति मुख्यो यो ब्रह्मण्य सोम आसीत् न नष्ट ।
यद्वद् ब्राह्मीं नाम मण्डूकपर्णीमाहु. केचित् तद्वदन्य स सोम ॥ १० ॥

२१—सोमप्राप्तिनिश्चयेन सुरोत्पादनम् ।

अप्राप्य सोममसुरा. सोमविध मादक विधापयितुम् ।
असुराधीशं वरुणं राजानं प्रार्थयामासु ॥ १ ॥

वरुणस्तत प्रयत्नाद् विनिर्म्ममे वारुणीं मदिराम् ।
पास्यामस्त्वसुरानीति सुरामिमां नामतश्चक्रु ॥ २ ॥

एकादशप्रकारा सुरास्ततस्त्वासवा. पृथक् दृष्ट. ।
भिन्नास्ततश्च शीधव इत्यपरे मादका सोमात् ॥ ३ ॥

सोमो धृतिविज्ञाने वर्द्धयते संस्करोति नितराम् ।
माल्य, सुरा तु हरते तद् विज्ञान. शिरोऽपि दूषयति ॥ ४ ॥

२२—सोमरसगुणप्रकाशका वेदमन्त्राः ।

बुद्धिः शौर्य्यसमृद्धी बलमारोग्य महत्त्वमभयत्वम् ।
रिपुदमनक्षमता सुखदीर्घायुष्ट्वे जयत्र सोमेन ॥ १ ॥

अन्नी हैमे त्वोषधीनामधीशो योऽयं सोम [illegible] ।
यो यस्तस्यासीद् गुणस्तं प्रगाध [illegible] ॥ २ ॥

स्वादोरभक्षि वयस. सुमेधा स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥ [illegible] ॥

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ ३ ॥

अपाम सोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतमर्त्यस्य ॥ ३ ॥
शं नो भव हृद आपीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ४ ॥
इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ५ ॥
अग्निं न मा मथितं संदिदीपः प्रचक्षय कृणु हि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आसोममन्ये रेवां इव प्रचरा पुष्टिमच्छ ॥ ६ ॥
इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोमराजन्प्रण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥
सोमराजन्मृडयानः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या ३ स्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मानो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥
त्वं हि नस्तन्वः सोमगोपा गात्रे गात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि सनो मृड सुषखा देववस्यः ॥ ९ ॥
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा नरिष्येद्धर्य्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ १० ॥
अपत्या अस्थुरनिरा अमी वा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोम अस्माँ अरुह द्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥
यो न इन्दुः पितरो हृत्सुपीतोऽमर्त्यो मर्त्यां आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृलीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ १२ ॥
त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनुद्यावा पृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३ ॥
त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोतजल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १४ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं नः इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चात्तादुत वा पुरस्तात् ॥" १५ ॥ (८।४८।१-१५)
एवं कृत्तुर्भार्गवः सोममस्तौदूनाशीत्या वाष्टषष्ट्यामिते वा ॥ (७६) (६८) ॥
सूक्ते सम्यङ् मण्डलस्याष्टमस्य प्रायः प्रोचुर्मण्डले वोत्तरेऽन्ये ॥ १६ ॥

२३—इन्द्रभवने प्रत्यहं त्रिंशतः सोमसरसामुपयोगः ।

सोमलतारसपूर्णान्यासन् प्रातिस्विकानि शक्रस्य ।
गन्धर्वरक्षितानि त्रिंशत् स्वर्गे सरांसि क्लृप्तानि ॥ १ ॥
ऐन्द्रे भुक्तिप्रमहे सहभुग् जनता वहुत्वतस्त्रिंशत् ।
सोमसरांसि निपीतान्येकोपक्रमतया भवन्ति स्म ॥ २ ॥

"एकया प्रतिधाऽपिवत् साकं सरांसि त्रिंशतम् ।
इन्द्रः सोमस्य काणुका" ॥१६॥ [८।७७।४]

सोमवल्लीस्वरूपम् ।

सुश्रुतचिकित्सितेऽपि च स चतुर्विंशतिविधो विनिर्दिष्ट । (चिकित्सास्थाने २६ अ०)
❀ वल्ली—प्रतानरूपा क्षुपरूपा वा भवेच्च सोमविधा ॥ १ ॥
पाङ्क्तत्रैष्टुभजागतगायत्राः सांकराश्च काश्मीरे ।
क्षुद्रकसरसि प्राप्या गिरिषु यितस्तोत्तरेषु चन्द्राख्यः ॥ २ ॥
अपि मुञ्जवान् स शैले मुञ्जवतीहांशुमानयं गिरिषु ।
अपि शर्य्यणावदादिषु गरुडः श्वेताक्ष इत्याद्याः ॥ ३ ॥
अलवर्ज नामतो यं पर्वतमाचक्षते म्लेच्छाः ।
सोमस्तत्र च लभ्यत इत्येवं प्रायशः ख्यातिः ॥ ४ ॥
सोमे श्वेत-क्षीरं प्रवर्तते मूलगः कन्दः ।
रस एतस्यावादुः श्वेतः पीतोऽथ चित्रपृश्निश्च ॥ ५ ॥
सोमलताया दण्डे पञ्चदशैवच्छदा भवन्ति स्म ।
पञ्चदशाहं स्थित्वा ध्रुवं व्यशीर्यन्त षोडशेऽहनि ते ॥ ६ ॥
दर्शे पर्णाभावः प्रतिपदि पर्णोद्गमोऽन्वधः पर्वे ।
प्रतितिथि पर्णोद्गमनात् पूर्णायां पञ्चदश तानि ॥ ७ ॥
प्रतिपद्यधरे पर्वणि पर्णनिपातः क्रमादुपर्य्येवम् ।
दर्शे पर्णाभावो जोतिष्मन्त्यस्य पर्णानि ॥ ८ ॥

❀ गुडूच्याद्याकारावल्ली[1] । उर्वारुकाद्याकारः प्रतानः[2] । कण्टकारिकाद्याकार-क्षुपः[3] ।

सोमरसोऽयं पीतो दिव्यां दृष्टिं मनोगतां कुरुते ।
भूतं भव्यं चार्थं दूरपरोक्षं च दर्शयति ॥ ९ ॥
सर्वे नूनं मादकाः शीर्ष्णि दोषानुत्पाद्यालं घ्नन्ति बुद्धेः प्रभावम् ।
सोकस्त्वेको मादकः पीयमानः शीर्ष्णः सर्वान्नाशयत्याशु दोषान् ॥ १० ॥
मस्तिष्काङ्गं पोषयन्नेष सोमो ब्राह्मं वीर्यं क्षात्रवीर्य्योपपन्नम् ।
सृष्ट्वा सूते शिल्पविज्ञानविद्याः सोमस्तस्मादोषधीनामधीशः ॥ ११ ॥

२४—ब्रह्मवीर्य्यम् ।

ब्राह्मे वीर्य्ये योगजाः सिद्धयः स्युः सूक्ष्मेऽप्यर्थे भाति विज्ञानमग्र्यम् ।
धृत्युत्कर्षः स्यात् स्थितप्रज्ञता वा शान्तिर्दैवी संपदत्राऽनृशंस्यम् ॥ १ ॥

२५—सोमध्वंसाद् ब्रह्मवीर्यापध्वंसः ।

ब्राह्मं वीर्य्यं भाति विज्ञानहेतोः सूर्य्योपास्तेः सोमपेयाच्च यज्ञात् ।
ब्राह्माद् वीर्य्यात् त्वेषु सक्तिः प्रवृत्तिः ब्राह्मं वीर्य्यं सर्वसिद्धेरुपायः ॥ १ ॥
यद्वद्दासैर्नाशितं सूर्य्यचक्रं तद्वद्दैत्यैर्नाशिता सोमवल्ली ।
भूमिः कृत्स्ना दानवैस्तैर्जितेयं हन्तेदानीं ब्रह्मवीर्य्यं निरस्तम् ॥ २ ॥
विड्वीर्य्यात्तु क्षात्रवीर्य्यं वरेण्यं क्षात्राद्वीर्य्याद् ब्राह्मवीर्य्यं वरेण्यम् ।
ब्राह्मं शास्तृ क्षात्रविड्वीर्य्ययोः स्याद् विड्वीर्य्यस्य क्षात्रवीर्य्यं प्रशास्तृ ॥ ३ ॥
विड्वीर्य्यं तु प्रायशोऽस्त्यत्र लभ्यं भूयांसो वै सन्ति लोके विशस्ताः ।
तासां शास्तृ क्षत्रमत्यल्पमाप्यं राजा ह्येको भूयसीनां प्रशास्ता ॥ ४ ॥
यावत्क्षत्रं किञ्चिदस्तीह लोके तस्मादेतद् ब्राह्मवीर्य्यं कनीयः ।
नाना क्षत्रं शास्ति हि ब्राह्मणोऽसावेकः कश्चिद् यो गुरुः क्षत्रियाणाम् ॥ ५ ॥
किन्तु ब्रूमो भूयसाऽल्पं विनष्टं कर्त्तुं शक्यं वस्तुधर्म्मस्तथाऽस्ति ।
साध्यं श्रेयो दूरमस्तीति मन्दं सिद्धात् पापद्धन्यते वा सदेशात् ॥ ६ ॥
क्षुद्रश्चन्द्रः सूर्य्यमेतं महान्तं खग्रासे हि च्छादयन् संतनोति ।
ध्वान्तं सूर्य्यज्योतिषः स्यान्निरोधस्तद्वद् ब्राह्मं क्षात्रतोऽभूद्विनष्टम् ॥ ७ ॥
अग्नेर्जातो वर्द्धितो रक्षितोऽस्माद् अग्नी रक्षत्येष वंशप्रकाण्डः ।
तत्रैवान्यो घर्षजन्माऽग्निरुग्रं शान्तं चाग्निं वंशमप्याशु हन्ति ॥ ८ ॥

(४)—सूर्य्यार्थे देवानां दस्युभिः संग्रामः ।

२६—तत्र विज्ञानौपयिके सूर्य्येऽसुरप्रेरितानां दासानामाक्रमणम् ।

देवानामिह सूर्य्यादुदगाद् वैज्ञानिक प्रभाव म ।
सौमिकयज्ञवशात् ते प्रापुर्लोकातिगां भूतिम् ॥ १ ॥
वलिनोऽसुरास्त एते कहाविभूति महाप्रभावं च ।
देवानामिह दृष्ट्वा यज्ञं कर्तुं यतन्ते स्म ॥ २ ॥
विज्ञानदुर्वलत्वादप्रारयन्तस्तु ते यज्ञे ।
विज्ञानोदयनार्थं सूर्य्येऽस्मिन्नाक्रमन्ते स्म ॥ ३ ॥
सूर्य्यः पृथ्व्यां चक्रद्वयरूपः कश्चिदासीत प्राक् ।
देवैर्विनिमितस्तं हर्तुं दासान् न्ययोजयन्नसुरा ॥ ४ ॥
यद्देवदासीयनियोधनं तद् यैर्यत्र येषामभवद् यदर्थम् ।
तज्ज्ञायते वेदवचोऽवधानात् तत्किंचिदत्रापि निदर्शयामः ॥ ५ ॥
प्राक् स्वर्णरं सप्तगुमभ्यवोचद् वैकुण्ठ इन्द्र. प्रमहेऽमराणाम् ।
एवं कार्त्स्न्यतो जीवनकर्म्म तस्मिन् अवर्णयद्दासकुलै. स्वयुद्धम् ॥ ६ ॥

२७—मनुष्यामनुष्यभेदात् दासानां त्रैविध्यम् ।

स एप दासस्तु न देव आसीन्न दानवो नापि मनुष्य आसीत् ।
आर्य्यैर्द्विपन् कश्चिदनार्य्यवर्ग्य' पृथगवदेवैष विभाग आसीत् ॥ १॥
वर्वरभिन्नाः सभ्या आर्य्या दासा इति द्विविधाः ।
आर्य्या वहुधा भिन्ना देवपितृप्रभृतयः कथिताः ॥ २ ॥
सभ्येष्वेकेऽनार्य्या जात्या दासा हि दस्यवो वृत्त्या ।
चौर्य्याद्भयाच्च दैन्यात् पलाय्य दासा उपद्रयिणः ॥ ३ ॥
अमनुष्याश्च मनुष्या इत्थं दासा अमी द्विविधाः ।
भारतवर्षाभिजना वन्यनिपादा मनुष्यदासाः स्युः ॥ ४ ॥
तेषामार्य्यैः साकं क्वापि कदापि श्रुतं न युद्धमिदम् ।
नैते जिता न चैते भारतवर्षान्निराकृता न हता. ॥ ५ ॥
दस्युनियुद्धादस्मात् प्रागेवैवां वहो·कालात् ।
सहवासोऽनार्य्याणामार्य्याणां भारतीयानाम् ॥ ६ ॥

मनुना स्मृतौ त एते म्मर्य्यन्तेऽद्यापि दृश्यन्ते ।
भारतवर्षवहि:स्थास्त्वमनुष्या गिरिचरा दासा. ॥ ७ ॥
तेषां प्रभवं प्रकृतिं भेदान् वसतीश्च युद्धसंस्थानम् ।
तदभिज्ञानविशेषानत ऊर्ध्वं दर्शयिष्यामः ॥ ८ ॥

२८—अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

ये देवयोनयस्ते दशधा भिन्ना अमीषु भूतगणाः ।
आसन्ने के तेऽपि द्विविधाः सभ्या असभ्याश्च ॥ १ ॥
सभ्यनिकाये मुक्ता आर्यनिदेशानुकारिणः सभ्याः ।
ये विपरीता एभ्योऽसभ्यास्ते दस्यवोऽपगणा. ॥ २ ॥
❀ प्रमथप्रमुखा बहवो गणाः सुराणां तु सैनिका आसन् ।
उत्सवसंकेताद्याः केऽपि गणाः भारते कथिताः ॥ ३ ॥ सभा—२७

❀ सभापर्वः अ॰ २७ पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः ।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पांडवः ॥ १ ॥
ततः काश्मारकान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
व्यजयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभिः सह ॥ २ ॥
ततः परमविक्रान्तो बाह्लीकान् पाकशासनिः ।
महता परिमर्द्देन वशे चक्र दुरासदान् ॥ ३ ॥
दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः ॥ ४ ॥
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यव. ॥
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
लोहान् परमकाम्बोजान् ऋषिकानुत्तरानपि ।
ऋषिकेष्वपि सग्रामो बभूवातिभयकरः ॥ ६ ॥
स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्य्यवान् ।
त जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम् ॥ ७ ॥
सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः ।
गन्धर्वरक्षितं देशमजयत् पाण्डवस्ततः ॥ ८ ॥

एभ्यो ये विपरीता लुठचरास्तेऽपरीतय. प्रोक्ता ।
मन्ये त एव सांप्रतमफरीदीत्याख्ययारयाता' ॥ ४ ॥
हरोदोतस एवान्-अपरीतईत्येवमाचष्ट । (Aparytaı)
तस्मात् पूर्वयुगेऽमी अपरीतय एव चाख्याता. ॥ ५ ॥
युद्धस्थलान्न येषां परिच्युनिस्तेऽपरीतयः सुदृढा ।
परिगलितं यन्न स्यादपरीतत्व श्रुतं तस्य ॥ ६ ॥
विश्वमना वैयश्वोऽप्रतिरुद्धं वक्तुमिन्द्रवलम् ।
अपि गौतम क्रतून् प्रतिरुद्धान् वक्तुमाह शब्दं तम् ॥ ७ ॥
इन्द्र यथा ह्यस्तितेऽपरीत नृतो शव ।
अमृतारातिः पुरुहूत दाशुपे । (८ । २४ । ६) । ८ ।
आनो भद्रा. क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीता—
स उद्भिद. ॥ देवानो यथा सदमिद् वृधे—
असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ ९ ॥ (ऋ० सं० १ । ६ । १)
(शु०यजु०स०२५ । १४)

अथवा ये प्रतिरुद्धा' परिच्युता आपरीतयस्ते स्यु ।
एपां वेश्म समन्तात् प्रतिरुद्धं चापरीतिनस्ते वा ॥ १० ॥
दैवतरीत्यपकर्षादेपामपरीतिता गणानां स्यात् ।
अपकृष्टत्वादेपामपगणशब्देन विश्रुतिश्चासीत् ॥ ११ ॥
त इमेऽफगानननाम्ना अफगन् नाम्ना च सांप्रतं प्रथिताः ।
एपामेव तु वैदिकसमये दासत्वमुपमन्नम् ॥ १२ ॥

२९—अमनुष्यदासप्रकृतिः ।

उग्रप्रकृतय आसन् एते हत्यापरायणा. क्रूरा ।
चौरा द्रहश्च योद्धुं संनद्धा स्वैरचर्य्याश्च ॥ १ ॥

३०—अमनुष्यदासप्रभेदाः ।

एषां वहवो भेदा अद्यत्वे चाभवन्नन्ये ।
आसन् पुरापि वहव. सांकर्य्येण गण-नाग-दैत्यानाम् ॥ १ ॥

३१—अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिश्यन्ते ।

वहवः श्रेण्य एपामेकैकश्रेणिनायको भिन्नः ।
प्रमुखा अराजकानां दासानां मन्त्रविश्रुताः केचित् ॥ १ ॥
शंवरः कुयव-शुपण-पिप्रवाःपड्गृभिः स्मदिभ-रोहिणाऽह्य ।
व्यंस-चेश-मृगया-इलीलिविशः-शृङ्गवांश्चमुरि-तुग्रकौ धुनिः ॥ २ ॥
पर्वतनिवासिशंवर एवा मर्मोच्यते तुजिवर्ची ।
दस्यव एते दासा असुरा वृत्राश्च सर्वं उच्यन्ते ॥ ३ ॥

३२—अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः ।

हिमवति च हेमकूटे यावन्तः पादपवजास्तेपु ।
सिन्धुनदोत्तरभागे द्रोण्यां निवसन्ति दासगणाः ॥ १ ॥
गान्धारोत्तरसीम्नि च निपधात् प्राच्यां य उज्जिहानदेशोऽस्ति ।
अद्यत्वे तं देशं म्लेच्छा आहुस्तु काफिरस्थानम् ॥ २ ॥
जाह्नवहाटकदेशौ संप्रति चित्राललदाखौ ।
कथितौ तत्र प्रान्ते दस्यव एते वसन्तिस्म ॥ ३ ॥
दुर्गमगिरिगहनेऽस्मिन् श्वेतगिरेः प्रगुपत्यकाप्रान्ते ।
विपमेऽङ्गणे निगूढे निवसन्ति स्मापरीतिनोऽपगणाः ॥ ४ ॥
गान्धराद्या देशा आर्य्याणामथ च हेमकूटाद्याः ।
दासानामुभये ते विभिन्नसप्तनदवास्तव्याः ॥ ५ ॥

३३—"सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम्" ।

सिन्धौ तावत् सप्त सप्त स्रवन्त्यः संगच्छन्ते वामतो दक्षतश्च ।
सिन्धोः प्रच्यामन्यदन्यत् प्रतीच्यां तस्योदीच्यां सङ्गमस्थानमन्यत् ॥ १ ॥
प्रसप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामतिसिन्धुरोजसा ।
त्रिः सप्त सस्रा नद्यः ॥ २ ॥
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वता अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ३ ॥
(१० । ६४ । ८)

अभित्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित् सिचौ यदासामग्रं प्रवता मिनक्षसि ॥ ४ ॥
(१० । ७५ । ४)

३४—१—पूर्वसप्तनदः ।

इम मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ १ ॥(१० । ७५ । ५)
इत्थं शतद्रूश्च इरावती च या चन्द्रभागा च विपाड् वितस्ता ।
आभि' कृत पञ्चनदप्रदेश. प्रच्यां स्थित. सप्तनदः स एव ॥ २ ॥

३५—२—पश्चिमसप्तनदः ।

यद्वत्सिन्धो. प्राच्यां सप्तनदान्तर्गतोऽभ पञ्चनद ।
तद्वत् सत प्रतीच्या सप्तनदे पञ्चगौरदेशोऽस्ति ॥ १ ॥
तृष्टा मया प्रथमं यातवे सजू. सु सर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ॥
त्वं सिन्धो कुभया गोमती क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥ २ ॥
(१० । ७५ । ६)

कुरम क्रमुर्गोमल गोमतीसिंदुम् श्वेती कुभा काबुल उच्यतेऽधुना ।
रसा वुरिन्दू च सुवान् सुसर्त्तुस्तृष्टां सिकोध्वं गिलघिट सरिन्मता ॥ ३ ॥
मेहत्नू. स्याद् वनग्रे वर्णु मन्योयत्संवन्धाद् वर्णुदेशः प्रसिद्धः ।
वर्णुदेशो दक्षिणे स्यात् कुभायास्तस्यास्तूत्क् पञ्चगौरप्रदेशः ॥ ४ ॥
संगच्छते सुवास्तुर्य्यस्यां सा वास्तुरेकधा भूत्वा ।
संगच्छते कुभायां कुभा तु सिन्धौ समन्वे त ॥ ५ ॥
वास्तोः पश्चात् कुभया चित्राख्याऽन्वेति सा गौरी ।
जह्नावी सा गङ्गा चित्रालो जाह्नवो देशः ॥ ६ ॥
गाओरीति म्लेच्छा गौरी तामाहुरितरत्र ।
देशं च पञ्चगौरं वदन्ति ते पञ्चकोरेति ॥ ७ ॥
सिन्धोरस्ति स पश्चात् हिर्म्मण्डाख्यां (हेलमण्ड) हिरण्वतीं यावन ।
या अस्य पञ्चनद्यरता उक्ता भारते भैष्मे ॥ ८ ॥

वास्तुं सुवास्तुं गौरी च कम्पनां च हिरण्यावतीम् ।
वरां वीरंकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ॥ ६ ॥ भा. भी. ६ । २५ । ४)
सश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्यमयी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्यु ताधिवस्ते सुभगामधु वृधम् ॥ १० ॥ (१०।१५।८)

३६—३—उत्तर सप्तनदः ।

तत्पञ्चगौरदेशादुत्तरतोऽन्योऽस्ति सप्त नददेशः ।
कुलिशी च वीर पत्नी शिफाञ्जसीत्यादिभिः क्लृप्तः ॥ १ ॥

३७—परस्परतो युध्यमानानामार्य्यदासानां पश्चिमोत्तरविभिन्नसप्तनदवासित्वम् ।

इत्थं सप्तनदेषु त्रिषु सिन्धोरुत्तरं तु सप्तनदम् ।
तद्दासानां स्थानं भारतवर्षाद्बहिश्चैतत् ॥ १ ॥
सप्तनदे पुनरन्ये सिन्धोः पौरस्त्यपाश्चात्ये ।
ते द्वे भारतवर्षान्तर्भुक्ते वसतिरार्य्याणाम् ॥ २ ॥

३८—पूर्वसप्तनदे दासकुलाभिजनासत्वात् तत्र युद्धाभावः ।

तेषु च सप्तनदेषु त्रिषु पूर्वस्मिन्नभूदिदं युद्धम् ।
इति पाश्चात्या आहुः प्रत्यगुदक्प्रान्तयोस्तु तद्ब्रूमः ॥ १ ॥
चित्रालदेशतो यः पूर्वोत्तरदेशगोऽस्ति सप्तनदः ।
तत्रत्यदस्युभिः सह पश्चिमसप्तनदवासिनां युद्धम् ॥ २ ॥
द्विविधं युद्धमितिहासीत् प्रथमं युद्धं तु दासकृतम् ।
उत्तरमिन्द्रकृतं तत् तदुभयमन्यान्यदेशेऽभूत् ॥ ३ ॥
यत् प्राथमिक युद्धं तदभूद्गान्धारदेशेऽस्मिन् ।
स्वस्थानस्थानार्य्यान् दस्यव एत्याभ्यमर्दयंस्तत्र ॥ ४ ॥
यत्तु श्वेतगिरेः प्राग् मूजवतः पर्वतादपि प्रत्यक् ।
अभवद् द्वितीययुद्धं तत्राक्रम्यावधीद्धरिर्दस्यून् ॥ ५ ॥
पश्चिमसप्तनदस्था आर्य्यास्ते स्थायिनो युद्धे ।
उत्तर सप्तनदस्था दस्यव इह यायिनः प्रथमे ॥ ६ ॥

पश्चात्तु दस्यवस्ते प्राप्तजया स्थायिनोऽभूवन् ।
इन्द्रो दीनसहायो यायी जयमाप्य कुत्ससातत्रे ॥ ७ ॥
पूर्वस्मिंस्तु न कश्चित् सभ्योऽनार्य्योपि वात्र सप्तनदे ।
स्थायी यायी वाऽऽसीत् तस्माद् युद्ध न तत्राभूत् ॥ ८ ॥

३९—उत्तरसप्तनदवासिनां दासानां भारतवर्षीयत्वाभावः ।

उत्तरसप्तनदं यद्दासानां स्थानमेतच्च ।
भारतवर्षाद्बहिरिति दासा न हि भारतीया स्यु. ॥ १ ॥

४०—भारतवर्षसीमाचतुष्टयी ।

एतद्भारतवर्षं रक्तसमुद्रान्तमस्ति पश्चिमत ।
पीतसमुद्राश्लिष्ट प्रशान्तसागरपरं प्राच्याम् ॥ १ ॥
याम्ये समुद्रमध्यगविषुवान्त तत् तथोदीच्याम् ।
हिमवत्पर्वतपरमं प्रवदन्तीत्थं चतु.सीमम् ॥ २ ॥
त्रैलोक्यस्य विभागे त्वेदद्वर्षं हि मानुषो लोक ।
स इरावतीविनिर्गमदेशादर्वाग् निरूपित. पूर्व ॥ ३ ॥
पश्चादष्टमतोऽशात् पूर्व्यं यावत्तु सप्तदशमंशम् ।
भारतवर्षं ब्रुवते सा सीमा राजशासनस्याद्य ॥ ४ ॥
"पूर्वे किराता यवनाश्च पश्चिमे याम्ये समुद्रो हिमशैल उत्तरे" ।
पौराणिका इत्थमनेकधाऽब्रुवन् तद्भारतं सीमाचतुष्टयं कृतम् ॥ ५ ॥
पूर्वसमुद्रारब्धो रक्तसमुद्रान्तविस्तृतो देश ।
भारतवर्षं ज्ञेयं पूर्वापरतो नवत्यशैः ॥ ६ ॥
प्राग् मेरुकर्णिकस्य हि भूपद्मस्यास्य सन्ति पत्राणि ।
चत्वारि दिक्षु चतसृषु क्लृप्तानि समं नवत्यशैः ॥ ७ ॥
नववर्षाणि यदानीं कल्प्यन्ते भूतलस्यास्य ।
तर्ह्यपि भारतवर्षं दक्षिणतः स्यान्नवत्यंशम् ॥ ८ ॥
क्लृप्ता तु मध्यरेखा मेरुस्पृग् भारतवर्षे ।
तस्या. प्रागपि पश्चाच्चत्वारिंशच्च पञ्च चाशा. स्युः ॥ ९ ॥

४१—भारतवर्षस्यैन्द्रवरुणाभ्यां पूर्वपश्चिमाभ्यां विभागः ।

तत्सिन्धुना द्विभक्तं तत्रैन्द्रं भारतं पूर्वम् ।
तत्पश्चिमं तु भारतमस्तीदं वारुणं विद्यात् ॥ १ ॥

भूमध्यसागरात् प्राक् सिन्धोः प्रत्यक् समुद्रतस्तूदक् ।
आरालकाश्यपीयनजलधिभ्यां दक्षिणो यावान् ॥ ८ ॥

एतं देशं ब्रुवते म्लेच्छजना ओरियंस शब्देन ।
तदिदं भारतवर्षं वारुणमासीत् पुरायुगे मन्ये ॥ ३ ॥

वारुणभारतभागे न्यवसन् प्रायेयगन्धर्वाः ।
गन्धर्वदेश एव प्रथते गान्धारनाम्ना स. ॥ ४ ॥

वर्णुश्च पञ्चगौरो जाहव एवोज्जिहानश्च ।
हाटक एवं वहवो गान्धारे पूर्वतो देशाः ॥ ५ ॥

मद्रा उत्तरमद्रो गान्धारेभ्यः स्युरुत्तरे पश्चात् ।
उत्तरमद्रादेशा मिदिया मादेति वोदिता म्लेच्छैः ॥ ६ ॥
अप्येत आरियाना दक्षिणमद्रास्तु पारसेत्युक्ताः ।
उभयविधा अपि मद्रा भारतवर्षस्य पश्चिमा देशाः ॥ ७ ॥
गान्धार मद्रदेशे सिन्धुनदात् पश्चिमे भागे ।
यवन-म्लेच्छाक्रमणादार्य्यास्तत्राल्पशोऽद्य निवसन्ति ॥ ८ ॥

४२—पश्चिमभारते गान्धारदेशे दासकृतं प्रथमं युद्धम् ।

दस्युनियुद्धात् प्राक् त्विह सिन्धोः प्राच्यां प्रतीच्यां च ।
भारतवर्षीयार्य्या न्यूषुयुद्धप्रतीच्येषु ॥ १ ॥
गान्धारे तु वसन्तोऽनार्य्या वार्य्याः पुरा वृचीवन्त. ।
आर्य्यस्य चायमानस्यासन् विद्वेषिणस्तत्र ॥ २ ॥
हरियूपीया नद्याः कूले यव्यावती नगरी ॥ (ऋ०६।२७।भरद्वाजः)
तस्यां वरशिख आसीद् वृचीवतः कस्यचित् कुलजः ॥ ३ ॥
त्रिंशं शतं त आसन् वीराः प्रथिता वृचीवन्तः ।
अभ्यावर्त्यभिवर्याभिघातिनश्चायमानस्य ॥ ४ ॥

अन्ये तु हेमकूटद्रोण्यावासा लुठचरा दासाः ।
गन्धारमद्रदेशे न्यपीडयन्निवसतो हि गन्धर्वान् ॥ ५ ॥

भारतवर्षबहिःस्था दासा आक्रम्य पीडयन्तिस्म ।
चिरकालादिह भारतवर्षे वसतो नृपानार्य्यान् ॥ ६ ॥

गन्धारेऽस्मिन्देशे सिन्धुप्रान्तस्थकुत्सनृपराष्ट्रे ।
अपगणदस्युभिरासीदार्य्याणां मन्त्रविश्रुतं युद्धम् ॥ ७ ॥

सिन्धोः पश्चिमदेशे पुरायुगादद्यपर्यन्तम् ।
या गान्धारपुरीयं तदुपह्वरतोऽर्जुनी तु नदी ॥ ८ ॥

अर्जुन्याः सरितोऽस्या अर्गन्दारेति नाम च ब्रवते ।
अद्यत्वे म्लेच्छाद्याः सैव स्यादर्जुनीधारा ॥ ९ ॥

कूलेऽर्जुन्या नद्या या नगरी चेतसूत्तया क्लृप्त. ।
कश्चिज्जनपद आसीत् तत्र नृपोऽभूत् कथरुरुर्नाम ॥ १० ॥

पुत्रोऽस्य कुत्स आसीद् गन्धर्वः शिक्षित. स विद्यायाम् ।
सिन्धुप्रान्तनिवासिभिरभूद् वसिष्ठश्रुतर्य्याद्यैः ॥ ११ ॥

दभीतितुर्वीतिमुखा. परेऽपि स्युस्तस्य सामन्तनृपा अधीना ।
यतोऽर्जुनी संनिहितोऽस्य वासस्ततः स कुत्सो मत आर्जुनेयः ॥ १२ ॥

"याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विनागतम् ॥ १३ ॥ (१।११२।२३)

यत्त्वार्जुनेयस्य पदस्य सायणो ब्रूतेऽर्थमिन्द्रस्य हि पुत्रमित्यपि ।
न साधु मन्ये तदमुष्य सख्यता त्विन्द्रेण कुत्सस्य न पुत्रता श्रुता ॥ १४ ॥

"मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे" इत्येवन्त कुत्स ऊचे सखायम् ।
सखायं कृत्वा कुत्समिन्द्रः प्रतस्थे हन्तुं कुत्सद्वेषिणो दस्युसंघान् ॥ १५ ॥

यद्वाऽर्जुन्या स्याज्जनन्याऽऽर्जुनेयो यद्वाऽर्जुन्या स्याद्वसत्यार्जुनेय. ।
अश्विस्तुत्यामिन्द्रसंबन्धिताया आख्यानं स्यादिन्द्रदत्तावमत्यं ॥ १६ ॥

ध्वसन्ति तुर्वीतिदभीति भूपतीन् कुत्सानुगान् प्राक् पुरुषन्तिनाऽन्वितान् ।
न्यपीडयन्दस्युगणाः पुरायुगे ररक्षतुः शक्रनियोगतोऽश्विनौ ॥ १७ ॥

४३—परमतनिरासेन सिद्धान्तस्थापनम् ।

अद्याप्येते दस्यवः सिन्धुपारे चित्राप्रान्ते गूहितान्तर्निकेताः ।
दृश्यन्ते ये पश्चिमोदक्प्रदेशे सभ्यान् लोकान् पीडयन्ति प्रसह्य ॥ १ ॥
एतानेव प्रोद्धतान् वृद्धिमाप्तान् भीष्मान् दस्यून् दण्डयामास धृष्टान् ।
एत्य स्वर्गात् सोऽमरावत्यधीशः प्रत्यावृत्त स्वर्गमेवाभ्यगात् सः ॥ २ ॥
कुत्सादीनां सिन्धुपारे स्थितानां रक्षार्थं तद्दस्युभिर्लुण्ठितानाम् ।
इन्द्रः कुत्साभ्यर्थितस्तद्धिमाद्रिद्रोण्यावासान्नाशयामास दस्यून् ॥ ३ ॥
वध्यान् दासान् भारतस्यादिवासान् भ्रान्त्या कश्चित्साहसं कल्पते तत् ।
वध्या दासा भारताद् वाह्यसीमाप्रान्तेष्वासन् भारतं नाध्यवात्सुः ॥ ४ ॥
तस्माद् ब्रूमो भारतवर्षे वसतो नृपानार्य्यान् ।
भारतवहिः प्रदेशादेत्याक्रामन्निमे दासाः ॥ ५ ॥
भारतवर्षे वसतो दासानार्यानिहाक्रम्य ।
देशान्तरादुपेता आर्य्या युयुधिर इति भ्रान्तम् ॥ ६ ॥
मेरुभ्रष्टा आर्य्या विदेशिन पौर्विकान् दासान् ।
हत्वा भारतवर्षे न्यवसन्निति हन्त निःसारम् ॥ ७ ॥

६—(४४)—दस्युयुद्धाद् वहुपूर्वमार्य्याणां भारतवर्षनिवासित्वे पूर्वमनुष्याणाम् ऋभूणां भारतीयत्वं हेतुः ।

अप्यस्ति हेतुरन्यो यत एवोऽर्थोऽवधार्य्यते नितराम् ।
दस्युपराजयमूलो नार्य्याणां भारते वासः ॥ १ ॥
पूर्वं हि दस्युयुद्धादार्य्याणां भारतीयत्वम् ।
विज्ञायते यतः प्राक् पूर्वमनुष्या इहर्भवो न्यूषुः ॥ २ ॥

४५—ऋभुपरिचयः ।

दस्युनियुद्धादस्माद् वहुपूर्वं भारते वर्षे ।
आसीन्नृपः सुधन्वा पुत्रास्तस्य त्रयस्त्वासन् ॥ २ ॥
ऋभुरथ विभ्वावाजस्त्वष्टुः शिष्यास्त्रयाप्यभूवंस्ते ।
त्वष्टा त्वाष्ट्रे कर्म्मणि तान् सम्यक् शिक्षयामास ॥ ३ ॥

त इमे कलाविभागे निजनैपुण्याभिमानतो जातु ।
देवचमसनिर्म्माणात् प्रथितं त्वष्टुर्यशः पराक्षिप्यन् ॥ १ ॥
त्वष्टृविनिर्म्मितचमसे निर्म्मातुः कौशलं न पश्यामः ।
यत्रोत्पन्नश्चमसो माहात्म्य तस्य दारुणो भवति ॥ २ ॥
त्वष्टृविनिर्म्मितचमसाद् देवानां सोमपानार्थात् ।
अत्युत्कृष्टं चमसं निर्म्मातुं नः प्रतिज्ञाऽस्ति ॥ ३ ॥
एकं चमसं सद्यश्चतुर्विधं शक्नुमः कर्तुम् ।
इत्थमृभूणां वचनं त्वष्ट्रेऽचकथत् दिवं गतस्त्वग्निः ॥ ४ ॥
निन्दिष्यन्ति तु चमसं देवानां सोमपानं ये ।
तान् ध्रुवमत्र हनिष्याम्येवं क्रुध्यन्नवोचत त्वष्टा ॥ ५ ॥
प्रत्यावृत्य स्वर्गाच्छ्रावयितं त्वष्टृ रोषवचः ।
एष ऋभूणां सदनं मनुष्यलोकेश आजगामाग्निः ॥ ६ ॥
आगच्छन्त दृष्ट्वा तमग्निमृभवो व्यतकयन् स्वगतम् ।
किमयकमस्मादग्निर्देवो नः सदनमभ्येति ॥ ७ ॥
किमय श्रेष्ठोऽस्त्यस्माननुग्रहीतुं समायाति ।
अस्ति यविष्ठो वाऽयं किञ्चिन्नोर्थयितुमभ्येति ॥ ८ ॥
अथवा त्वष्टृविषये पूर्वं यत् कुत्सितं न्यवोचाम ।
तत्रेति दूत्यमेतत् किञ्चिद् वृत्तं निवेदयिष्यति नः ॥ ९ ॥
इत्थं वितर्क्य पक्षे त्रयस्तृतीयो प्रतीतिमास्थाय ।
दैवी गर्हाऽनुचिता मर्त्यैरिति दोषमक्षिपन् स्वीयम् ॥ १० ॥
ऋभव प्राहुर्न वयं निन्दामस्त्वष्टृ निर्म्मितं चमसम् ।
ब्रूमस्तु दारुणस्तं प्रभावमत्रास्ति यश्चयमत्कार ॥ ११ ॥

४६—ऋभुभ्यः स्वकौशलं दर्शयितुं देवानामादेशः ॥

ऊचे भगवानग्निर्निभृतं प्रोत्साहयन्नृभूनेतान् ।
आदिदिशुर्वो देवाश्चमसं चैकं चतुर्विधं कर्तुम् ॥ १ ॥
खेचरमश्वमनश्वं रथमथ गां चर्म्मणोनिःसृताम् ।
वृद्धस्य च तारुण्यं वक्तु मिमामागतोऽस्मि देवानाम ॥ २ ॥

देवादिष्टानर्थान् प्रणीय गच्छत दिवं स्वयं यूयम् ।
यद्येव प्रकरिष्यथ तर्हि भविष्यथ नु यज्ञिया देवाः ॥ ३ ॥
चमसचतुष्टयमेतद् दृष्ट्वा त्वष्टा भविष्यति क्षीणः ।
इत्याकर्ण्य वचोऽग्नेर्ऋभवः पुनरब्रुवन् प्रतिज्ञाय ॥ ४ ॥
अग्निकथितमादेशं देवानां दृढमिमं प्रतिश्रुत्य ।
निर्म्माय वाहनानी च देवेभ्यः स्वर्गमागमिष्यामः ॥ ५ ॥
अग्निर्ऋभून् पुनरुचे स्वर्गे चामन्त्र्य मां तु युष्माभिः ।
देयानि मत्समक्षं देवेभ्यः शिल्पजातानि ॥ ६ ॥
एवं कृते वयं च सख्यं देवेषु भावयिष्यामः ।
देवेन्द्रेण च सन्धि सवने क्वापि प्रवर्तयिष्यामः ॥ ७ ॥
प्रातरपां यदि पानं मध्यदिने भुञ्जने जनं वा चेत् ।
अनुरुचितं वो न स्यात् सायं सन्धिस्तदा ध्रुवं वः स्यात् ॥ ८ ॥
इत्यादिष्टाऋभवश्चमसविधाने त्रयोऽपि सह्युक्ताः ।
अभवन् विप्रवदन्तः स्वस्वाकूत्याऽनु संवदन्तश्च ॥ ९ ॥
आपो भूयिष्ठास्तत् प्रातरपां सन्धिरुत्कृष्टा ।
भूयिष्ठोऽग्निरतोऽह्नो मध्ये सन्धिः प्रकर्षाय ॥ १० ॥
सायं वहवः साकं वहुविधभोज्यानि चात्र भुञ्जन्ति ।
तस्मात् सायं सन्धिः श्रेष्ठेति च ते मिथो मता न्यूचुः ॥ ११ ॥
शक्नोमि चमसमेकं कर्तुं द्वेधेत्यवोचत ज्येष्ठः ।
त्रेधेति मध्यमोऽसौ किन्तु चतुर्धा व्यधुः कनिष्ठगिरा ॥ १२ ॥

४७—पञ्चदशादिष्टान्यनादिष्टानि च बहूनि शिल्पानि । प्रदर्शयितुमृभूणां स्वर्गे गमनम् ॥

अथ कुशला ऋभवस्ते त्रेया शिल्पानी कल्पयामासुः ।
पञ्च परोक्षार्थेऽपि च दश सख्यार्थे वहूनि कीर्त्यर्थे ॥ १ ॥
आदिष्ट कौशलानि तु पञ्चादिष्टोपि योजनानि दश ।
उपबृंहणानि चानादिष्टानि तु विदधिरे कतिचित् ॥ २ ॥

एकं चमसं चतुरश्चमसान् श्लिष्टान् विवहयति ।
पुनरेकं च चतुर्णां संपादयतीति कौशले परमम् ॥ ३ ॥
आश्वादश्वमतद्वद् द्वौ चाश्वावेक एवाश्वः ।
अपि वह्वोऽश्वा. सहिता दिवि ते प्रचरन्ति भूमौ च ॥ ४ ॥
उक्थ्यो रथऽप्यनश्वोऽनभीपुरेतैर्विनिर्म्मितो विपुल ।
परिवर्तते स चक्रैस्त्रिभिः समं दिवि भुवि प्रचरन् ॥ ५ ॥
"अनश्वो जातो अनभीषु रुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचनं द्यामृभव पृथिवीं यच्च पुष्यथ" ॥ ६ ॥ वामदेव.-
(४।३६।१)
द्विविधा तु निर्म्मिता गौरग्नेर्वचनाद् वृहस्पतेर्वचनात् ।
आदिष्टकौशलेऽन्या आदिष्टे तूपयोजने साऽन्या ॥ ७ ॥
गौःश्वेतरी तु पूर्वा वृहस्पतेर्विश्वरूपाख्या ।
गौः श्वैतरीयमेकाऽनेकतनुः स्यान्निकृत्तचर्म्मवशात् ॥ ८ ॥ (१।१६१।७)
अन्या गौरतिभव्या कामगवी निर्म्मिता चित्रा ।
एषा यदेवा किञ्चित् प्राश्नात्यमृतं ततो दुग्धे ॥ ९ ॥
मातापितरौ यौ यौ जरसा भूमौ शयानौ स्तः ।
यन्त्रप्रभाव तत्तौ पुनर्युवानौ प्रचक्रिरे सद्य ॥ १० ॥
इत्थं चमसानश्वं रथमथ धेनु युवानौ च ।
निर्म्माय ऋभु पश्चाद् व्यधुरादिष्टोयोजनानि दश ॥ ११ ॥
इन्द्रस्य हरी हरित सूर्य्यस्याग्नेस्तु रोहितो नाम ।
श्यावाः सांवतु. पूष्णस्त्वजाश्च मरुतां पृपन्नाम ॥ १२ ॥
नियुतो वायोरुषसोऽरुण्यो गावोथ विश्वरूपा गौ ।
विहिता वृहस्पतेरथ रासभयुग्मं तथाश्विनोःक्लृप्तम् ॥ १३ ॥
दश चैतान्यादिष्टोपयोजनानि प्रसिद्धयन्ति ।
एतान्यारुह्यैते यान्ति स्माकाशमार्गेण ॥ १४ ॥
इन्द्राय चक्रुर्हरिसंज्ञकौ हयौ श्लिष्टौ पृथिव्या दिवि च प्रचारिणौ ।
यथेच्छमाभ्यां भुवि खे च संचरन् हर्य्यश्व उक्तो हरिवाहनोऽपि सः ॥ १५ ॥

हरिप्रभावाद्धरिवान् पराक्रमं स मानुषः सन्नतिमानुपं व्यधात् ।
ताभ्यां स सानोः परसानुमारुहन्नस्पृष्टकत्वँ वहुदस्युहत्यके ॥ १६ ॥
प्राथमिकपष्ठतुर्य्ये तित्तिरयः संहितायां तु ।
सूर्य्यस्यैतशमाहुः सोपि स्याद्धरित एवाश्वः ॥ १७ ॥
"त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् । भरच्चक्रमेतशो वायमिन्द्रः ।" (१ ।१२३ ।३)
अस्मिन्मन्त्रे ह्येतशो नानियुक्तो नॄणां हरितां स्थान इन्द्रेण पूर्वम् ॥ १८ ॥
अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।
हरितो नरास्तउक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्ति रथम् ॥ १६ ॥
हरितो हरन्ति शिरसा पृष्ठेन च किमपि संभारम् ।
हरितां तु नायको यो वहनेऽधिकृतः स वह्निराख्यातः ॥ २० ॥
अपि यो मनुष्यलोकेश्वरोऽग्निरस्थात्तु भारते वर्षे ।
वह्निः स उक्त एप हि देवैर्देयं दिवे वहति ॥ २१ ॥
इत्यधिभूतं विद्याद्धधिदैवं तूदिता दिशो हरितः ।
ता इह विद्याच्छन्दांस्येवाहोरात्रवृत्तानि ॥ २२ ॥
नरदेवानामेषां यानि तु यानाभिधानानि ।
प्रायेण तानि क्लृप्तान्यधिदैवतयानसामान्यात् ॥ २३ ॥
ऋक्सामे हरिसंज्ञे अधिदैवतमिन्द्रयाने स्तः ।
यजुरिन्द्रं हरतस्ते अधिभूताश्वो हरिस्तदिन्द्रस्य ॥ २४ ॥
इत्थं पञ्चदशार्थानादिष्टानग्नये निवेद्यैतान् ।
दर्शयितुं स्व कौशलमृभवः स्वर्गं विमानतो जग्मुः ॥ २५ ॥

४८—ऋभुकौशलविमुग्धैर्देवैर्ऋभुभ्यो देवत्वेन्द्रसग्धित्वादिपारितोषिकप्रदानम् ।

अग्निसमक्षं भगवानिन्द्रः शिल्पानि तानि चालोच्य ।
देवसभायां प्रमहे देवेभ्यो वाहनानि ददौ ॥ १ ॥
अस्थिभिरस्य दधीचो तो वज्रं प्रागजीजनत ।
सोमग्रहणं चमसं योऽपूर्वं दारुणोऽकुरुत ॥ २ ॥
तस्मादप्याचार्य्यात् त्वष्टुर्देवान्मनुष्याणाम् ।
ऋभ्वादीनामेशामप्रथत यशोऽधिकं स्वर्गे ॥ ३ ॥

यशांसि भूयांसि सुपर्वणां कुले प्रगीयमानानि निशम्य वासव.।
तुतोष मेने मनुजेषु सत्क्रियामग्नेर्मनुष्याधिपतेर्विचारतः ॥ ४ ॥
स्वाराट् स दृष्ट्वा हरिसत्तिनिर्म्मितौ लोकातिगं कौशलमस्य शिल्पिनः।
सम्मानहेतो सह पारितोषिकैः सन्धिं तृतीये सवनेऽन्वकल्पयत् ॥ ५ ॥
महती हि सा प्रतिष्ठा स्वर्गे लोके यदिन्द्रतः सन्धिः।
तेनोत्साहितचित्ता. शिल्पान्यन्यानि भूरिशश्चक्रुः ॥ ६ ॥
परनिष्ठितकर्म्माणो विश्वैर्देवैस्त आहूता.।
यानानि ते च तेषां व्यदधुर्विविधानि शस्त्राणि ॥ ७ ॥
अत्यद्भुतं स पक्षिणमेकं व्यधात् प्लव नाम।
इन्द्राज्ञया जगृहतुस्तमश्विनौ देवनकर्म्मार्थम् ॥ ८ ॥
यावन्मितमिह वेगं निवेश्य नोदेन गमयेत तम्।
तावन्मिते प्रदेशे गत्वा परिवर्त्य चायाति ॥ ९ ॥
पृष्ठारूढं स वहन्नारूढ वा विनैव नोदनया।
विचरन् विहायसाऽयं याति मनोनीतमास्पदं तरसा ॥ १० ॥
एष समुद्रे स्रवते बलाज्जलाधो निधीयमानोऽपि।
तत्पृष्ठस्था बहवो मनुजाः प्रतरन्ति सागरेऽप्यभयम् ॥ ११ ॥
अथ यांस्ते देवेभ्यो रथाननश्वान् विहङ्गमान् व्यदधु.।
तानि विमानान्याहुस्तानि च नानाविधान्यासन् ॥ १२ ॥
प्रथमं बृहस्पतिकृते प्रणयन्ति स्म त्रिवन्धुर सुरथम्।
अश्विभ्यामपि रासभरथं प्रचक्रुस्त्रिवन्धुरंसुदृढम् ॥ १३ ॥ (८ । ८५ । ७)
क्रमतोऽत्र सिद्धहस्ता ऋभव इमे शिल्पिमूर्द्धन्याः।
आविश्चक्रुर्नानाविधानि तेभ्यो विमानानि ॥ १४ ॥
एतद्विमान कौशलदर्शनतो हृष्ट एष देवेन्द्रः।
बहुभि. सुपुरस्कारै सत्कृत्य ऋभून् सभाजयामास ॥ १५ ॥
इन्द्रस्तैर्ऋभुभिः सममारुह्यैत विमानरथम्।
व्यचरद्दिवि देवानिव तान् यज्ञे सोमपायिनो व्यदधात् ॥ १६ ॥
एषां च मानुषाणां सम्मानायाददात् स देवत्वम्।
महती कीर्तिरमीषामभूत् ततो यज्ञभागभुजाम् ॥ १७ ॥

इन्द्रस्यासन् बहवो मनोनपात् संज्ञयाऽमात्याः ।
एषामपि स ऋभूणां मनोनपात्त्वं ददाविन्द्रः ॥ १८ ॥
अग्निर्भूम्या,वातोऽन्तरिक्षतो,दिव इमे मरुतः ।
❀ शवसोनपात इच्छन्त्यृभून् समुद्रस्य वरुणश्च ॥ १९ ॥ (१ । १६१ । १४)
अपि वाददेव ऊचे रत्नानां दुर्लभाद्भुतानां ते ।
शवसोनपात ऋभवोऽभवंश्च देवेन्द्रसाम्राज्ये ॥ २० ॥ (४ । ३५ । १ । ८)

७—ऋभूणां यशः स्थैर्य्याय देवेन्द्रनिदेशाद् वसभाविद्भिः कीर्तिसूक्तनिर्म्माणम् ।

४९—दीर्घतमसा कृतमृभूणां कीर्तिसूक्तम् ।

दीर्घतमा औचथ्यो ममतापुत्रोन्यदर्शयत्प्रायः ।
चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयशः ॥ १ ॥ (१ । १६१)
"किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ्कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवाकरिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२ ॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टाग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या ३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीता धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन ॥ ७ ॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।

❀ सिकत्तर, नायब ।

वर्धयन्ती बहुभ्यः प्रैको अब्रवीद्दता वदत्तश्चमसाँ अपिशत ॥ ६ ॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्य. पितरा उपावतुः ॥ १० ॥
उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तद्द्येदमृभवो नानुगच्छथ ॥ ११ ॥
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क स्वित्तात्या पितरा व आसतुः
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्यक इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसोनपात" ॥ १४ ॥

५०—वामदेवः ।

अपि वामदेव ऊचे विस्तरतस्तन्महर्षिराङ्गिरसः ।
चरितमृभूणामेषामप्रथत यथा तु शिल्पिनां सुयश. ॥ १ ॥

४।३३ "प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीधेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परिद्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥ १ ॥
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुपसख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वां ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान् त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो व. ॥ ५ ॥
सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनुस्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसां अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥

द्वादश द्यू न्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोपधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनु विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्यऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
इन्द्राह्णः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते आन्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्सवने दधात् ॥ ११ ॥

४।३४ "ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयो पयात ।
इदा हि वो धिपणा देव्यह्नामधात्पीतिं संमदा अग्मतावः ॥ १ ॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥ २ ॥
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिव दधिध्वे ।
प्रवोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥ ३ ॥
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिवत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीयतोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इवग्मन् ॥ ५ ॥
आ नपातः शवसो यातनोपेम यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥
सजोषा इन्द्रवरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥
सजोष स आदित्यैर्मादयध्वं सजोषसः ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥ ८ ॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिंधत्थ वसुमन्तं पुरुक्षम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मंदसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ १० ॥
नापाभूत नवोऽतीतृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः" ॥ ११ ॥

४।३५ इहोपयात शवसोनपातः सौधन्वना ऋभवो मापभूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकंविचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे विशिक्षेत्यब्रवीत् ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
किं मयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथासुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥
यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमातक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीं यॉ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसोनपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्संमदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम्" ॥ ९ ॥

४।३६ "अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो ३ रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊन्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना च रथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

एकं विचक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥
स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हिष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वानर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नोरयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः" ॥ ९ ॥

४।३७ "उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा ३ सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजोगुः ।
प्रप्रः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसोनपातोऽनुवश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्तमघत्तये" ॥ ८ ॥

एषां कतिपयमन्त्रा अधिदैवतपक्ष उपनेयाः ।
शेषाः सर्वे मन्त्रा अधिभूतं तूपनीयन्ते ॥ ६ ॥

५१—युद्धात्प्राक्तनानामृभूणां भारतीयमनुष्यतया दस्युयुद्धात् प्रागेवार्य्याणां भारतीयत्वसिद्धान्तः ।

इत्थमृभूणामेषां शिल्पं शृणुमः पुरा मनुष्याणाम् ।
भारतवर्षाभिजना ध्रुवमासंस्ते मनुष्यत्वात् ॥ १ ॥
एभिश्च निर्मितौ तावश्वौ हरिसंज्ञकौ समारुह्य ।
इन्द्रो दस्यूनवधीत् तस्मादृभवः पुरैवासन् ॥ २ ॥
एष सुधन्वा राजा जनक ऋभूणां च मानुषे लोके ।
आसीद् भारतवर्षे तस्मादार्याः पुराप्यासन् ॥ ३ ॥

दस्युयुद्धाद् बहुपूर्वं सभ्यानामार्य्याणां भारतनिवासित्वसिद्धान्तः ।

यस्मिन्काले स्वर्गं इन्द्रोऽप्ययमासीत् पामीरे वा ब्रह्मणो वास आसीत् ।
पामीरोऽयं देवपूर्णो यदासीत् तर्ह्येवासन् भारतेऽप्यार्यसभ्या. ॥ ४ ॥
नैषां वासः स्वर्गलोके कदाचित् पामीराद्वा नागता भारतेऽस्मिन् ।
नो वाऽनार्य्याधिष्ठितं देशमेतं जित्वा तत्र स्वान्निवासाकार्पुः ॥ ५ ॥
युद्धेऽप्यायुः श्रूयतेऽस्मिन् सहायः सोयं राजैलेयपुत्रः श्रुतोऽस्ति ।
ऐलेयश्चेक्ष्वाकुणा तुल्यकालोऽयोध्यायां चेक्ष्वाकुरार्य्येश आसीत् ॥ ६ ॥
तस्मान्मन्ये भारतीयार्यसंघा दस्योर्युद्धात्पूर्वमेवात्र देशे ।
अस्थुस्तेषामेष देशः स्वकीयो न त्वेवास्मिन् सन्ति वैदेशिकास्ते ॥ ७ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्र-
सम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि
भारतवर्षीयार्य्योपाख्याने आर्यदासीयाख्यो
द्वितीयः प्रक्रमः सम्पूर्णः ॥ २ ॥



* अथ विज्ञानभवनं तृतीयः प्रसङ्गः *

पुरायुगे दिव्यप्राणपरीक्षणार्थं विज्ञानशालानिर्म्माणम् ।

आर्य्यानार्य्यविद्रोहनिमित्तभूतं सिन्धुसरस्वतीसंभेदे सूर्य्याधिष्ठानम् ॥

आर्य्याणां दस्यूनां सूर्य्योऽभ्यामर्द्दने निमित्तमभूत् ।
तद्दर्शयामि तावद् यत्र स सूर्य्यो यथा चासीत् ॥ १ ॥
वेत्तं वसिष्ठमुख्याः सूर्य्यस्य गवां तथोषसो विद्याम् ।
चक्रे सूर्य्य नामाधिष्ठानं प्राक् सरस्वनीकूले ॥ २ ॥
अस्ति विदस्तासिन्ध्वोरन्तरतः सा सरस्वती धारा ।
सरयूसहिता काचित् सान्या प्राचीसरस्वत्याः ॥ ३ ॥

"सरस्वती सरयूः सिन्धुरूर्म्मिभिर्म्महो महीरवसा यन्तुवक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्यो घृतवत्ययो मधुमन्तो अर्चता ॥
इयं शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानुगिरीणां तविषेभिरूर्म्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि. सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥" (१० । ६)

सा पारसीकवेदे[1] हरखूवतीत्याख्यया पठिता ।[2]
सर्पसरोवरतोऽस्या निर्गमनं दर्शितं मात्स्ये ॥ ४ ॥

"हेमकूटस्य पृष्ठेतु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ।
सरस्वती प्रभवति तस्माज्जोतिष्मती तु या ॥" (मात्स्ये १६१ । ६४)

मन्ये सर्पसरस्तत् पञ्चाशत् क्रोशदीर्घं यत् ।
सार्द्धक्रोशप्रततं भाषायामद्य 'पानकाङ्ग'ख्यम् ॥ ५ ॥

"काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च ।
वितस्ताख्यमिति ख्यात सर्वपापप्रमोचनम् ॥" (पाद्म खं० २५ अ०)

इत्थं पाद्मे स्वर्गखण्डे (२५ अ०) वितस्ता नामाख्याता तक्षकाणां पुरी या ।
आसन्नेऽस्यास्तष्सरस्तक्षकाणां तीर्थं तस्मात्सा सरस्वत्युपेता ॥ ६ ॥
काश्मीरादुत्तरतो विन्दुसरस्तत्सरीकुलेत्युक्तम् ।

१—अवस्ताख्ये । २—हरकुअती ।

'सरपस' नाम च तस्मात्सरस्वतीत्याहुरन्ये तु ॥ ७ ॥
सिन्धोः सङ्गमदेशो तस्य वामे च दक्षिणे च तटे ।
यासीत्सरस्वती पूस्तस्यां सूर्य्यप्रतिष्ठाऽऽसीत् ॥ ८ ॥
ऊचे वसिष्ठ एतां सरस्वतीं पुरि सरस्वत्याम् ।
प्रवहन्तीं रथ्यामिव तत्र वसिष्ठः स वसति स्म ॥ ९ ॥
स्थानं यदुन्नतं स्यान्निसर्गजं कृत्रिमेण वा विधिना ।
तत्रास्ति धरुणशब्दः सरस्वती पूरियं धरुणम् ॥ १० ॥

"प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र वा बधाना रथ्येव याति विश्वा आपो महिना सिन्धुरन्याः ॥
एकाऽचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाया ॥
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रतिस्तोमं सरस्वती जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ (७।९५।५)
अयमु ते सरस्वती वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्धशुभ्रे स्तुवतेरासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥"

भरद्वाजो बार्हस्पत्य इमां सरस्वतीं स्तौति ।

पुत्रो बृहस्पतेः प्रागत्रैवासीत् पुरा भरद्वाजः ।
सहकारी स वसिष्ठस्यासीत् स च तां सरस्वतीं स्तौति ॥ १ ॥

(६।६१) "इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्म्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥
सरस्वतीदेवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उतक्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥
प्राणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनी ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥
उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि. ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः ।
अमश्चरति रोरुवत् ॥ ८ ॥
सा नो विश्वा अतिद्विष. स्वसॄरन्या ऋतावरी ।
अतन्नहेव सूर्य्यः ॥ ९ ॥
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्याभूत् ॥ १० ॥
आपप्रुषी पार्थिवान् पुरुरजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती ।
वाजे वाजे हव्याभूत ॥ १२ ॥
प्राया महिम्नासु महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आधक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥"

सूर्य्यसंस्थापनस्वरूपम् ।

अस्याः सिन्धुप्रान्ते प्रवहन्त्या अनुतटं सरस्वत्या. ।
नगरी सरस्वती या तस्यां सौरं बृहत् सदनम् ॥ १ ॥
तत्र वसिष्ठप्रमुखा द्विचक्रयन्त्रेण सूर्य्यसंज्ञेन ।
उषसं सूर्य्यज्योतिश्चन्द्राद्यंशून् परीक्षयामासुः ॥ २ ॥
वैज्ञानिकैर्म्महर्षिभिरासीद् रचितं पुरा परीक्षार्थम् ।
यत्सूर्य्यमन्दिरं तत् स्तूपाकारं शिलानद्धं वृत्तम् ॥ ३ ॥
स्तूपादस्माद् बाह्यभागे समन्तान्नानाशालाश्रेणिभिर्म्मनूनि ।
प्रासादोऽभूदम्बरोल्लेखिशृङ्गो नानाकक्षोऽप्य शानन्दरम्य ॥ ४ ॥

प्रासादेऽस्मिन् मुख्यवेश्माध्यवात्सीत् सूर्य्यः पश्चादेतच्चोपसद्म ।
वार्हस्पत्योऽन्ये वसिष्ठादयो वा सर्वेप्यासन् मन्दिरेऽस्मिन्नियुक्ताः ॥ ५ ॥
प्रासादानां मध्यभूमौ तदासीत् स्तूपाकारं सद्म वैवस्वतं तत् ।
द्विप्राकारं छन्नसोपानगम्यातिध्वान्तान्तर्वेश्मनिम्नावकाशम् ॥ ६ ॥
सूर्य्यस्थानं निस्तलं वर्तुलं तद् ब्रह्माण्डाभं श्लक्ष्णवाह्यान्तरङ्गम् ।
अन्तर्भूम्या अर्द्धमूर्ध्वं वहिर्धा तत्रागारं निम्नभूमीतलेन्तः ॥ ७ ॥
रन्ध्रैरच्छाश्मावरुद्धैः कृतोर्ध्वं भाभैः सूक्ष्मैर्नीलदेशोपपन्नैः ।
तत्सोपानं द्वारयोः क्लृप्तमन्तर्द्वारं द्वाराधः स्थितं भिन्नभित्तौ ॥ ८ ॥
द्वारेकस्मिन् (१) वाह्यभित्तौ ततोऽन्तः प्रादक्षिण्यात् सम्मुखी द्वारधस्तात् ।
अन्तर्भित्तौ या तयाऽन्तः प्रविष्टः सूर्य्यं साक्षाच्चक्रगं पश्यति स्म ॥ ९ ॥
सूर्य्ये गृहस्यैतस्यच्छदिपटलेऽकृत सा रन्ध्राणि ।
दुर्लक्ष्याणि यथैभ्यो रश्मिश्चक्रे समं न्यपतत् ॥ १० ॥
अष्टाचत्वारिंशद्रेखाः पूर्वापराः पटले ।
प्रतिरेखं रन्ध्राणमभवदशीतं शतं (१८०) न्यस्तम् ॥ ११ ॥
संत्वसरेण सूर्य्यो व्योम्नि चरन् यत्र यत्र देशे स्यात् ।
तत्तत्सम्मुखखरन्ध्रादंशुमिपातोत्र चक्रे स्यात् ॥ १२ ॥
यर्हि वायं प्रागुदेतिस्म सूर्य्यस्तर्ह्येवास्मिन्नश्मके विम्वितः स्यात् ।
खे संचारेऽप्यत्र चक्रे स्थिरोऽर्कोऽथास्तंभावे नक्षमत्राप्यदृश्यः ॥ १३ ॥
तत्राश्चर्यं संवृतेऽस्मिन्नगारे ध्वान्ते गाढे सूर्य्य एकत्र तस्थौ ।
नाभौ चक्रस्याश्मके विम्वितोऽभात् प्रातःकालात् सायमन्तं स सूर्य्यः ॥ १४ ॥

सूर्य्यचक्रस्वरूपम् ।

तत्रागारेन्तः स्थले चक्रयुग्मं हैमं सांशुश्लिष्टमासीत् स सूर्य्यः ।
नाभिस्थोऽयं नास्य तत्रावलम्वोऽत्रात्याश्चर्य्यं खे निराधार एव ॥ १ ॥
सूर्य्ये द्विचक्ररूपे एकं चक्रं वृहत् तदन्तरतः ।
क्षुद्रं चक्रं निहितं तत्र प्रतिविम्वं एति वृहतोऽस्य ॥ २ ॥
वृहदपि चक्रं द्विकृतं परिवर्तते क्रमेण ते चक्रे ।
संवत्सरेण सौरेणैते परिवृत्तिमायातः ॥ ३ ॥

चक्रद्वितये चैकं भवति निगूढं सदैकवद् ददृशे ।
षण्मासैः पर्य्यायाद् दृष्टमदृष्टं बभूव तच्चित्रम् ॥ ४ ॥
"द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणां ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥" (१० । ८५ । १६)
एतच्चक्राधस्ताद् भूमौ चक्रं समाहितं धरुणे ।
ऊर्ध्वस्थ सूर्य्यरश्मिग्राहि परीक्षास्ति तत्रैव ॥ ५ ॥

सूर्य्यविज्ञानादाधिदैविकसिद्धिः ।

गौर्ज्योतिरायुरेते सूर्ये सन्ति त्रयो भावाः ।
भूतग्रामो देवग्रामात्मग्रामकौ च तेभ्यः स्युः ॥ १ ॥
सर्वं व्योम व्याप्नुवन् सोते एतत् सूर्य्यप्राणे द्वादशात्मन्यपीतः ।
ज्योतिर्भावं भावयत्यत्र देवाः सेन्द्रा इन्द्रः शुक्लकृष्णादिरूपम् ॥ २ ॥

सूर्य्यविज्ञानादाधिभौतिकसिद्धिः ।

तस्मिश्चक्रे शङ्कवोऽन्ते सहस्रं तीव्रज्योतिर्भासते चक्रमध्ये ।
ज्योतिष्यस्मिन् ये सहस्रं विभागास्तेषामेकः सत्यकृत् कामधुक् च ॥ १ ॥
शेषा गावस्तास्त्रिधा स्युर्विभक्ता आदित्यानां रुद्रकाणां वसूनाम् ।
चक्रेऽन्यस्मिन् द्वादशैकादशाष्टौ द्वौ चेति स्युस्त्रिंशदंशास्त्रयश्च ॥ २ ॥
शङ्कुग्रामे शक्तिवैचित्र्यहेतोर्गोभ्यो वर्णाः सप्त पार्थक्यत स्युः ।
अन्योन्यस्मिन् घातविक्षेपकर्म्मद्वारा नानाशक्तय. प्रादुरासन् ॥ ३ ॥
इति चक्रद्वययोगात् प्रतिफलिता अंशवो विभक्ताः स्युः ।
विशकलितास्ता गावो भवन्ति ते सप्तसप्तका मरुतः ॥ ४ ॥
गन्धादींस्तु विशेषान् जनयन्तीमानिमे मरुतः ।
तत एव भूतभेदा भवन्ति नानाविधा लोके ॥ ५ ॥
मरुतां पुनर्विभागादेकादशजातयो हि ते रुद्राः ।
रुद्राणां च विभागादादित्या द्वादशापि स्यु ॥ ६ ॥
इन्द्रस्तेषामेकोऽस्त्योकःसारीश्वरो महावीर्य्यः ।
आदित्यरुद्रमरुतोऽवलम्बिताः सन्ति तत्रेन्द्रे ॥ ७ ॥

"यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी ॥" (यजुः०)
इत्थं वदन्त ऋषय. सूर्य्येऽपश्यन् विशिष्यैतम् ॥ ८ ॥
आयुः स एष इन्द्रः स हि सर्वेषां भवत्यात्मा ।
प्रत्यर्थमेष तिष्ठन् देवान् भूतानि वा जनयेत् ॥ ९ ॥
देहे देहे बृहतीसहस्रभेदास्त्रिधा प्रवर्तन्ते ।
प्राणमनोवाग्भेदादायुस्तन् तत्र सम्यगीक्षन्त ॥ १० ॥
आयुस्त्वभृतः प्राणस्तत आदित्या भवन्ति तैरात्मा ।
प्रत्यात्मतस्तु गावः सहस्रमभितः प्रवर्तन्ते ॥ ११ ॥
योगाद् गवां तु रुद्रा एकादशजातिका विजायन्ते ।
रुद्रे तु रुद्रयोगान्मरुतः स्युः सप्तसप्तकास्तत्र ॥ १२ ॥
एषामेव तु मरुतां योगविभेदाद् भवन्ति वसवोष्टौ ।
गन्धो रसश्च रूपं स्पर्शो वाग् धृतिमती ध्रुवत्वं च ॥ १३ ॥
मात्राभिराभिरेव प्रज्ञानप्राणभूतानि ।
प्रभवन्त्येषां ग्रामा धातूद्भिच्चेतनैस्त्रिविधाः ॥ १४ ॥
यत्किञ्चिदत्र वीक्ष्ये तत् खनिजोद्भिज्जचेतनतः ।
त्रेधा विभक्तमेतत् सर्वं सवितुः प्रसूतमंशुभ्यः ॥ १५ ॥
"नूनं जनाः सूर्य्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृण्वन्नपांसि ।
इत्थं वसिष्ठ ऊचे सर्वेषां सूर्य्यजनितत्वम् ॥ १६ ॥
जगति हि सृष्टिविधाने यद्वैचित्र्यं प्रदृश्यते क्वापि ।
तस्यैव एव सूर्य्यः कारणमस्तीति सिद्धान्तः ॥ १७ ॥
सूर्य्ये द्युस्थे के के सन्ति पदार्थाः कथं च तैर्विश्वम् ।
उत्पद्यते कुतो वा नानाभेदा इहोत्पन्नाः ॥ १८ ॥
कथमिह वायुः पवते निर्वातं वा कुतो भवति ।
कथमिह मेघा वृष्ट्यै कदाचिदुद्भूय शाम्यन्ति ॥ १९ ॥
एतत् सर्वं ज्ञातुं भूमौ सूर्य्यं प्रतिष्ठाप्य ।
चक्रद्वयप्रभावान् सर्वानर्थान् परीक्षयामासुः ॥ २० ॥
चक्रद्वयेऽत्र सौरान् रश्मीन् संश्लेष्य विश्लेष्य ।
नाना भावा जनिताः सर्वं विज्ञानमुपलब्धम् ॥ २१ ॥

सूर्य्यविज्ञानादाध्यात्मिकसिद्धिः ।

संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरर्था बहिः क्रियन्ते स्म ।
देवानामिदमेव तु विज्ञानं यज्ञयोनिरभूत् ॥ १ ॥
संकलितैर्व्यवकलितैरंशुभिरात्मनि बलं हितं यज्ञात् ।
आत्मा परोक्षदर्शी परोक्षकारी च यज्ञतो भवति ॥ २ ॥
अपि मृतमुज्जीवयते यज्ञात् सिद्ध्यन्ति मुक्तयः सर्वाः ।
या चाष्टयोगसिद्धिः सा यज्ञादात्मनि प्रभवेत् ॥ ३ ॥
"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः" ॥
एतद्यज्ञविधाने यजमाननियुक्त ऋत्विगाख्यातः ।
ऋत्विज ऋषयो ह्युषिता वैज्ञानिकता हि सूर्य्यविज्ञानात् ॥ ४ ॥

विज्ञानशालीयसूर्य्यप्रतिमायाः प्रतिमाराधनप्रचारमूलबीजत्वम् ।

अत एव सूर्य्यसदनाद् देवप्रतिमाप्रकल्पनारम्भः ।
वेदेऽन्योपि च देवप्रतिमार्चायाः प्रचार आम्नातः ॥ १ ॥
ऋग्वेद संहितायां चतुर्थमण्डलचतुर्विंशे ।
सूक्ते दशमर्च्यैन्द्र्या मूर्तेः क्रयमाह वामदेव ऋषिः ॥ २ ॥
उत्कृष्ट बहुमूल्यं विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन ।
पूजाफलोपलब्धौ समय प्रत्यर्पणाय चक्रे सः ॥ ३ ॥
"भूयसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम्" । (४।२४।६)
"क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनद् अथैनं मे पुनर्ददत्" । (४।२४।१०)
इन्द्रप्रतिमापूजाप्रकारमप्ययमुपादिशत् ।
देहोपचारभोगाहवनमनःप्रेमभावनास्तुतिभिः ॥ ४ ॥
"आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ।" (४।२४।५)

"कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्था इन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाऽविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु ।" (४ । २४ । ६)
"य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रतिमनायो रुचथानि हर्य्यन् तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ।" (४ । २४ । ७)
सर्वप्रथमं मन्ये देवयुगे वामदेव एवायम् ।
देवप्रतिमापूजां मानुषलोके प्रचारयामास ॥ ५ ॥
यद्यपि ततोपि पूर्वं सारस्वतसूर्य्यसदनेभूत् ।
अपि सूर्य्यचक्रमूर्तेरुपासनारम्भ इत्युक्तम् ॥ ६ ॥
किन्त्वासीदिह सेयं विज्ञानार्थैव सूर्य्यचक्रस्य ।
अंशुपरीक्षोपासा दैवप्रतिमार्चना नैवम् ॥ ७ ॥
योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन ।
भक्तेस्ते चत्वारो हठलयवन्मन्त्रराजयोगाख्याः ॥ ८ ॥
देवप्रतिमायामियमुपासनामन्त्रयोगोऽस्ति ।
योगान्नियमाचरिताद् दैवीं रक्षामपेक्षितां लभते ॥ ९ ॥
"को देवानामवो अद्यावृणीते क आदित्यां अदितिं ज्योतिरीहे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाऽविवेनम् ।
देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये ।" (८ । ८३ । १) (८ । ७२ । १)
इत्थं महर्षयः प्राग् दैवीं रक्षां परामुपादिक्षन् ।
मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नो भवन्नवति ॥ १० ॥
यत्र न विज्ञानार्थो न मन्त्रयोगाय वा मनोयोगः ।
सविकल्पकः समाधिर्न यत्र सार्चा वृथा क्रियते ॥ ११ ॥

विज्ञानशालाकर्म्माधिकारितया नियुक्तानां सूर्य्यैतशोपसामितिवृत्तम् ॥

सूर्य्योपसोः प्रथमतः सूर्य्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ॥

सौरं धामैतद्ध्यधीष्टे दिविष्टो वागध्यक्षो देवतानां पुरोधाः ।
भूमिष्ठोऽयं तद्वसिष्ठोऽध्यतिष्ठद् वार्हस्पत्यस्तस्य चासीत् सहायः ॥ १ ॥

भरद्वाजश्च शंयुश्च बार्हस्पत्यौ प्रसिद्ध्यतः ।
उभावपि तु पर्य्यायादत्रास्तां सूर्य्यमन्दिरे ॥ २ ॥
यद्यप्यत्रासन् बृहस्पत्यधीना द्रष्टारोऽन्येऽन्ये वसिष्ठादयश्च ।
किन्तु स्थाने नित्यरक्षास्वभूवन् सूर्य्याधीना बह्व्य एवोषसः प्राक् ॥ ३ ॥
स्वश्वो नाम बभूव क्षितिपतिरेतस्य पुत्रस्तु ।
सूर्य्य इति स्वं विरुदं सूर्य्योपासकतया जगृहे ॥ ४ ॥
स च सौवश्वः सूर्य्यो गन्धर्वः ख्यायते जात्या ।
घोरः प्रगाथ ऊचेऽष्टमादिमैकादशे हि तथा ॥ ५ ॥
सूर्य्यायतनाध्यक्षः स हि सूर्य्योऽभूत् सहोषसा पूर्वम् ।
सूर्य्यं च दिवस्पुत्रं विदुरुषसं तां दिवस्पुत्रीम् ॥ ६ ॥
वरुणस्य कापि जामिर्भगस्वसाऽसीदुषा इति प्रथिता ।
सूर्य्यायतने सासीदुषसां प्रवरा तु बह्वीनाम् ॥ ७ ॥
रक्षति सूर्य्यं सूर्य्यः सोषा आप्तान् जनान् सभाजयति ।
सूर्य्यः सूर्य्यपरीक्षामुषःपरीक्षामुषा जनयेत् ॥ ८ ॥

इन्द्रक्रोधात् सूर्य्ये निराकृते पश्चादेतशोषसोः सूर्य्यायतनप्रबन्धकर्तृत्वम् ।

सूर्य्येण सख्यमभवद्यस्योः कृष्णस्य लम्पटस्येति ।
सूर्य्यायेन्द्रोऽक्रुद्ध्यत्कृष्णासुरसौहृदाद्धेतोः ॥ १ ॥
अत एवैतशनामा तैर्य्यग्योनोऽश्वजातिकः सुप्त्विः ।
आचक्रमे ग्रहीतुं सूर्य्यं सूर्य्याय दुद्रोह ॥ २ ॥
तत्र च सूर्य्ये तशयोस्तयोः प्रवृत्तेऽत्यभीमर्दे ।
आस्कन्दयत् स सूर्य्यस्तमेतशं कृष्णसहयोगात् ॥ ३ ॥
तत्र स इन्द्रोऽश्वाभ्यां वातजवाभ्यां समानयत्कुत्सम् ।
अभ्रच्छन्नं सूर्य्यं गन्धर्वं छद्मनाऽऽक्राम्यत् ॥ ४ ॥
एतशमेतमरक्षत् समरे सूर्य्यं पराभाव्य ।
इन्द्रोऽनुगृह्य तस्मिन् सूर्य्यायतने न्ययुङ्क्तापि ॥ ५ ॥
"अस्मा इदुत्यदनुदाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्य्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥" (१।६१।१५ नोधागौ०)

"यत् तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥"

इन्द्रकृतैतशरक्षा चक्रापहृतिश्च सूर्य्यस्य ।
तुर्य्ये सप्तदशस्य त्वृच्याम्नाते चतुर्दश्याम् ॥ ६ ॥

"अयं चक्रमिषणात् सूर्य्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम्
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्त्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥" (४।१७।१४)

नोधा गौतम इव तत् प्रोवाचावस्युरात्रेयः ।
पञ्चम एकत्रिंशस्यैकादश्यामृचि द्वितयम् ॥ ७ ॥

"सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जुजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः संरिणाति पुरो दधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥" (५।३१।११)

पञ्चम ऊनत्रिंशे शाक्त्यो यद् गौरवीतिरिन्द्रमिमम् ।
महयति यस्मिन्नेतशसंरक्षणमुपदिशत्येषः ॥ ८ ॥

"अधक्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनुविश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्य्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥" (५ । २९ । ५)

एतशस्य मानुषस्याप्याधिदैविकवद् वृत्तिः ।

संवत्सरे तु कतिधा रथमारूढं स एतशः सूर्य्यम् ।
स्वयमुपबृंहन्नुदग् दिशि सीमाप्रान्ते दिवो नयति ॥ १ ॥

"उदुत्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदी माशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥" (७।६६।१४)

अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ।
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्त्यर्थान् ॥ २ ॥

इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् यत्र हरितो नॄन् ।
व्यरमयतेन्द्रो ना त्वयमेतश एकोऽहरच्चक्रम् ॥ ३ ॥

"त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्यपारं नवतिं नाव्यनामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥" (१ । १२१ । १३)

एतशाश्वकृतपरीक्षा ।

सूर्य्यस्थाननियुक्तः स एतशः सूर्य्यमन्वीक्ष्य ।
आयुर्ददर्श सम्यक् सूर्य्याद्ध्यात्मसमुपसृप्तम् ॥ १ ॥
* वरुणस्य राजधान्यां वाह्लीके भृगुमहर्षिरभूत् ।
भृगुवंश्य एतशोऽय कौषीतकिनोदितस्त्रिंशे ॥ २ ॥
अपि चैतरेय ऊचे त्रिंशाध्याये त्रयस्त्रिंशे । + (२ । ३३)
एतश आयुरपश्यच्छन्दांस्यप्येतशप्रलाप इति ॥ ३ ॥

अहोरात्रवृत्तानां छन्दःसंज्ञानामेतशनाम्ना विविक्तानां सूर्य्याश्वत्वम् । तत्परीक्षकत्वात् सुषिराजस्य मनुष्यस्याप्येतशत्वम् ।

प्रजापतेः सूर्य्यसतोऽक्षि पृथ्व्यां यदश्वयत् सोऽश्व इति प्रसिद्ध ।
स सप्तसंस्थो विषुवाध उर्ध्वप्रदेशभेदादिह सूर्य्यहृष्टे ॥ १ ॥
विषुवन्मण्डलतोऽर्वाक् त्रीणि त्रीण्येव तूर्ध्वं च ।
सन्ति समानान्तरवत् कृतान्यहोरात्रवृत्तानि ॥ २ ॥
सप्तानामपि तेषां गायत्र्युष्णिक् तथाऽनुष्टुप् ।
बृहती पंक्तिस्त्रिष्टुप् जगतीति च सन्ति नामानि ॥ ३ ॥
गायत्र्यामुदगयनं दक्षिणमयन जगत्यां स्यात् ।
रात्र्यहनी तु समाने भवत. सूर्यो बृहत्यां चेत् ॥ ४ ॥

---

* 'एतशो ह वै मुनिर्यज्ञस्यायुर्ददर्श । स ह पुत्रानुवाच । पुत्रका यज्ञस्यायुरदर्शम् । [illegible] मा मा दृप्तं ते ह तथेत्यूचु. तद्धाभिललाप । तस्य ह ज्येष्ठ पुत्रोऽभिसृप्य [illegible] पितेति । तं होवाच—अयनश्याधिकत्वां जाल्मादतु । पापिष्ठा ते प्रजा करोमि । [illegible] ग्रहीष्य: । शतायुषं गामकरिष्यं सहस्रायुषं पुरुषमिति । [illegible] पापिष्ठाः । पित्रा हि शप्ता. स्वया देवतया, स्वेन प्राजापतिना' (इति कौ० ब्रा० ३० । ५)

+ (१) "एतशो ह वै मुनिरग्नेरायुर्ददर्श । [illegible] आप्लवन्ते प्रतीपं प्रतिसत्वनमिति ॥" (ऐ० ब्रा० ३० । ३३)

(२) "सर्वाणि छन्दांस्यैतशप्रलाप. । [illegible] प्रलापः ।" (ऐ० ब्रा० ३० । ३२)

यावान् सप्तच्छन्दोभिरवच्छिन्नो दिवः प्रदेशोऽयम् ।
सूर्य्यरथं तं ब्रूमः सप्ताश्वं चैकचक्रं च ॥ ५ ॥
यद् भास्वद्गतिवर्त्म प्रसिद्ध्यति क्रान्तिवृत्ताख्यम् ।
रथचक्रं तद् ब्रूमस्तत्सयुजः सन्ति सप्ताश्वाः ॥ ६ ॥
एषा वै परिभाषा पशवश्छन्दांसि देवानाम् ।
शतपथचतुर्थकाण्डे तार्तीयकपञ्चमेऽधीता ॥ ७ ॥ (४ । ३ । ५ । १)
सप्तच्छन्दांस्यश्वाः सप्तमुखो वा स एक एवाश्वः ।
एतशमेतं ब्रुवते एतश एतं ददर्श सम्यगृषिः ॥ ८ ॥
तिर्य्यग्योनावश्वयोनिर्य आसीत् कश्चिद्वर्गस्तस्य राजैष सुष्विः ।
सूर्य्यरथाश्वं यद्ददर्शैतशाख्यं तस्मादेषोऽप्येतशोऽभूत् प्रसिद्धः ॥ ९ ॥

उषसः सूर्य्यायतनस्थाया बहवः प्रभेदाः ।

आसन्नुषसी बह्व्यः पर्य्यायेणात्र कर्मकारिण्यः ।
तासामेका सूर्य्यायतनस्था सूनरी नाम ॥ १ ॥
प्रागुदयादिह चक्रे केतो चित्रा प्रभोदेति ।
तां सूनरी ह्युपास्ते नाखिलभास्ते तु साऽभाति ॥ २ ॥
योषा सूर्य्यसदेशो नक्तं शेते विभावरी सोक्ता ।
सैव पुनः स्यादहना प्रातर्यात्रां प्रकुर्वाणा ॥ ३ ॥
अहना चरति गवाश्वोपेतं वाजं प्रयच्छन्ती ।
दिवि तु भुवनस्य पत्नी याति मनुष्येषु मानुषीनाम्ना ॥ ४ ॥
पञ्चक्षितिषु सरन्ती यतस्ततः पुंश्चली भवत्येषा ।
तेन भुवनस्य पत्नीत्यहना सा या दिवि क्रमते ॥ ५ ॥
अपि सा सर्वाध्यक्षा तेन च भुवनस्य पत्नी सा ।
यो विश्वकर्म्मजनको भुवनः सा तस्य पत्नी वा ॥ ६ ॥
सूर्य्यस्यैका योषा तामाहुर्वाजिनीवतीं नाम्ना ।
स हि गन्धर्वः सूर्यः सूर्य्यायतनेऽधिकारवानासीत् ॥ ७ ॥
स्वर्ग्यधनाढ्यैर्वसुभिः काले काले प्रदीयमानस्य ।
कोशं धनस्य रक्षति या सा चित्रा मघा नाम ॥ ८ ॥

ते वह्न्यो वहन्ति तु ये संभारान् कुतश्चिदन्यत्र ।
वह्नी नामाभ्यक्ता काचिदुषा सा मघोन्याख्या ॥ ९ ॥
ऋषयस्तु सूर्य्यरश्मीन् परीक्षितुं येऽत्र समवयन्त्यसकृत् ।
तेषां परिचर्य्यायां जरयन्ती नाम काचिदुषा ॥ १० ॥
विश्वपिशेति तृतीया कृतं पदं सायणः प्राह ।
अथवा विश्वपिशा सा या बहुरूपा रथेनैति ॥ ११ ॥
मधुधा च रोचनान्या ऋतावरी रेवती चान्या ।
इत्थं बहवो भेदा आसन्नुषसो दिवस्पुत्र्याः ॥ १२ ॥
एताः कर्मनियुक्ता उषसः कर्म्माख्यया ख्याता. ।
इतरा विभाम्यन्तः सर्वा भद्राभिधाना. स्यु ॥ १३ ॥
उषसः सर्वा आसन् प्रसन्नहृदयाः सदा हसद्वदनाः ।
मधुभाषिण्यः प्रेम्णा कर्षन्त्यश्चारुसर्वाङ्गयः ॥ १४ ॥

उषसो मानुष्या अप्याधिदैविकवद् वृत्तिः ।

सूर्य्योदयादेव रथं हिरण्मयं सारुह्य दूरानभियाति मानुपान् ।
अध्यासितं तत्सहचारि दैवतैः शतं रथानामनुयापि पृष्ठतः ॥ १ ॥
वाजैश्च पूर्णं वसुभिश्च भूरिभिर्नयन्त्यनोऽश्वानपि गाश्च भूयसी. ।
सूर्य्यप्रसोदोपहृतान् विभाजयत्यर्थानिमान् प्राणिजने दिने दिने ॥ २ ॥
गृहे गृहे संप्रचरन्त्यनातुरा समीक्ष्य सा दीनजनान नवान्नपान ।
तेभ्यः प्रयच्छत्यहना यथोचितं धनानि वाजानपि गाश्च वाजिन ॥ ३ ॥
या द्वेषिणोऽन्योन्यविरोधिनो जनान् प्रवृज्य धत्ते सुभगाऽतिसौभगम् ।
तां भासमानामभिलापपूर्णां विश्वं जगद् द्रष्टुमिमां ननाम ॥ ४ ॥
चित्रं तु वाजं प्रविभज्य मानुषे जनेन्तरिक्षं च करोत्युपेत्य सा ।
विश्वांश्च देवानिह सोमपीतये संतर्पणायाह्वयति स्म दक्षिणा ॥ ५ ॥
संयाति सूर्य्यायतनाद्दितस्ततस्त्रिंशत्समन्तादिह योजनानि सा ।
पुंसां समक्षं चरतीयमत्र या निवर्तते नित्यमुपाकराद् दिव ॥ ६ ॥
या चाद्य विश्राणयते धनान्नं रथेन गत्वोषसि मानुषेभ्य ।
निवृत्य विश्राम्यति सा परेद्यु. पराऽह्ना याति रथेन मानुष ॥ ७ ॥

उषसो या मे दानं विशेषपुण्यातिशयकृत् स्यात् ।
इत्येव घोषयन्ती ददात्युषा उपसि कण्व इत्याह ॥ ८ ॥

१—विश्वामित्रो महर्षिरुपसं स्तौति । ३ । ६१ । १–७

पञ्चनदाख्ये देशे विश्वामित्रो महर्षिरासीत् प्राक् ।
एप सुदासो राज्ञः पुरोहितः स्तौति तामुपसम् ॥ १ ॥

३।६१ "उषो वाजेन वाजेनि प्रचेताः स्तोमं जुपस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥
उषो देव्यमर्त्या विभा हि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥
अवस्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥
अच्छा वो देवीमुपसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्ररोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥ ५ ॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उपसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
ऋतस्य बुध्न उपसामिषण्यन्वृपा मही रोदसी आविवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥"

२—वसिष्ठो महर्षिरुपसं स्तौति ।

यस्तु वसिष्ठो राज्ञो वरुणस्यासीत् पुरोहितः पूर्वम् ।
पश्चात्सूर्य्यायतने नियुक्त आसीत् स चोपसं स्तौति ॥ १ ॥

७।७५ "व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमापथ्या अजीगः ॥ १ ॥
महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्रयन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रा मघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि ददुदुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
नूनो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
७।७६ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥
तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥
त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥
समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥
प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥
एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥
७।७७ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चराय ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

विश्वं प्रतीची स प्रथा उदस्थाद्रुसद्वासो विभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशी कसन्दृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनुप्रभूता ॥ ३ ॥
अन्ति वामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावयद् द्वेष आभरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्विभाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युप. सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासुधा रयिमृष्वं बृहन्तं यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

७।७८ "प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो विश्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वामस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥
प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताय देवी ॥ २ ॥
एता उत्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानं मायमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥
प्रतित्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न." ॥ ५ ॥

७।७८ "व्युषा आ वः पथ्याजनानां पञ्चक्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आवर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवा देवो दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्यारवेण विदलहस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥

देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
एषास्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्य्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्रा ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः" ॥ ३ ॥

७।८१ "प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपोमहि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥
उदुस्रियाः सृजते सूर्य्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्य्यस्य च सम्भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरुस्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥
तच्चित्रं राध आभरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्य गोमतः ।
चोदयित्रि मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदपस्रिधः" ॥ ६ ॥

३—प्रस्कण्वः काण्व उपसं स्तौति ।

प्रस्कण्वोपि च काण्वो महर्षिरुषसं परिष्टौति ।
काण्वाः सूर्य्यायतने परोक्षयन्ति स्म सूर्य्यविज्ञानम् ॥ १ ॥

१।४८ "सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरिराया देवि दास्वती ॥ १ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्व सुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥
उषो ये ते प्रयामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥
वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥
एषा युक्त: परावतः सूर्य्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वियात्यभिमानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अपद्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदपस्रिधः ॥ ८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरी ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥
विश्वान्देवाँ आवह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वा वदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सो नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥
य चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमो अभिगृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥
उषो यदद्य भानुना विद्वारा वृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छ तादवृकं पृथुच्छर्दिः प्रदेवि गोमती रिषः ॥ १५ ॥
सं नो राया बृहती विश्वेश सामिमिक्ष्वा समिलाभिरा ।
संद्युम्नेन विश्वतुरोषो महि संवाजै वाजिनीवती ॥ १६ ॥

(२) "उषो भद्रेभिरागहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वह त्वरुणप्सव उप त्वां सोमिनो गृहम्" ॥ १ ॥
सुपेशसं सुखं रथ यमध्यस्था उपस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँ रनुदिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वा मुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

४—कक्षीवान् दैर्घतमस उषसं स्तौति ।

दीर्घतमा औतथ्यो बृहस्पतेर्भ्रातृपुत्रो य ।
सूर्य्यायतने पश्यति कर्म भरद्वाजवत् सोपि ॥ १ ॥
१।१२३॥ (१) "पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थु ।
कृष्णा दुदस्था दर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयान्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चाव्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषोदेवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्य्याय ॥ ३ ॥
गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवे दिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा सदध्यायो अघस्य धाता जयेम त दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥
उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थु ।
स्पार्हा वसूनि तमसाप गूढाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सञ्चरेते ।
परीक्षितोस्तमो अन्या गुहाकर द्यौ दुषा शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियान्ति सद्यः ॥ ८ ॥

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णा दजनिष्टश्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥
कन्येव तन्वा शाशदानां एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥
सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषा विस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।
भद्रा त्वमुषो पितरं व्युच्छनतरो अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥
अश्वावतीर्गोमती विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनराच यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः" ॥ १२ ॥
(१ । १२४ । ३ । ६ । ७ । ८ । ९)

"एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्था मन्वति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ १ ॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं ना जामिं न परिवृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ २ ॥
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ॥ ३ ॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्या ञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ४ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरापूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः" ॥ ५ ॥

५—अष्टाद्रंष्ट्रो वैरूप इन्द्रं स्तुवन्नुषसं स्तौति ।

१—"सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धा नु वेद" ॥ १ ॥
एषां कतिपयमन्त्रा अधिदैवतपक्षे उपनेयाः ।
सर्वे त्वपरे मन्त्रा अधिभूतं समनुगच्छन्ति ॥ १ ॥

आप्त्योऽधिदैवतमुषसं स्तौति । ८ । ४७ । (१४ । १८)

केचिन्मत्रा उपसस्त्वधिदैवतमेव पर्याप्ताः ।
आप्त्यस्त्रितो यथोचे संवे सूक्तेऽन्ततोऽष्टमगे ॥ १ ॥

यच्च गोषुदुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परावहानेहसो व ऊतय. सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४७।१
"निष्कं वा घा कृण्वते स्रजं वा दुहितर्दिवः।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिदद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतय" ॥ ८ ॥ ४७।१५"
"तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतय सुऊतयो व ऊतय." ॥८॥ ४७।१६
"यथा कलां यथाशफं यथ ऋणं सन्नयामसि।
एवादुःष्वप्न्य सर्वमाप्त्ये सं नयामय नेहसो व ऊतय' सुऊतयो व ऊतयः" ॥ ८ ॥ ४७
"अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्।
उषो व यस्माद्दुःष्वप्न्यादभैष्मायतदुच्छत्वनेहसो व ऊतय' सुऊतयो व ऊतय." ॥८।४७।१८

(३)–विज्ञानशालास्थितात् सूर्य्यचक्रद्वयादेकस्य देवेन्द्रेणपरीहरणम्। उषःकारणात् सूर्य्याधिष्ठाने दस्यूनासाक्रमणमिन्द्रकुत्साभ्यां तन्निवर्हणं च।

उषा विलज्जा चरतीति शुष्णो ववन्ध तां प्रेम्णि कदाप्यभीक्ष्य।
तत्प्रेमपाशानुविकर्षितः सन्नुषः समीपं स उपैत्यभीक्ष्णम् ॥ १ ॥
सूर्य्यनिवृत्या कृष्णो विरतोऽभूत् किन्तु तत्पश्चात।
सूर्य्यायतने शुष्णो यातायातं व्यधादुषोर्हेतोः ॥ २ ॥
शुष्णो दस्युः सूर्य्यं बहुधागत्य व्यमर्दयद् धृष्ट।
अकुतोभयः स सूर्य्यद्वारं पिदधे निजुह्न वे सूर्य्यम ॥ ३ ॥
इन्द्र· शुष्णाक्रमणं सूर्य्यापह्नुतिमुपद्रवातिशयम्।
वार्हस्पत्यस्य गिरा श्रुत्वा सद्य समाययौ सूर्य्यम ॥ ४ ॥
दासाक्रमणनिरोधोपायानृपि सदसि चिन्तयंस्तत्र।
सूर्य्यसदनरक्षार्थ कमपिनृपं मागयामास ॥ ५ ॥
तत्रावोचदगस्त्य. सौराचक्रद्वयादेकम्।
दिवि नीत्वा परचक्रं स्थापयितुं कुत्सरक्षणे युक्तम् ॥ ६ ॥
"वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यु मन्यू ऋजा वातस्याश्वा।
प्रसूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभिस्पृधो यासिषद् वज्रबाहु" ॥ (१।१७४।१२)

रपक्कविरिद्राके सातीचां दासायोपवर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रानिदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् ॥ ८ ॥
मुपाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ९ ॥ (१ । १७५ । ४)
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठाश्वसातमः ॥ १०" ॥ (१ । १७५ । ५)
इत्यगस्त्य परामर्शं युयुत्सुरनुमोदयन् ।
हृत्वैकं चक्रमन्यस्य रक्षार्यैकुत्समाह्वयत् ॥ ७ ॥
गत्वोशनसा साकं कुत्सगृहं तं न्ययोजयत् त्रातुम् ।
वातजवाश्वैः सूर्य्यस्थानेऽत्रानाय्य चादिशत् कुत्सम् ॥ ८ ॥
गान्धारमद्रभूपान् न्ययुङ्क्त कांश्चिच्च कुत्ससहकर्तॄन् ।
वार्षागिरान् दभीति ध्वसन्ति पुरुषन्ति पूर्वाश्च ॥ ९ ॥
इन्द्रस्तत्र तदानीं दासाक्रान्ति निरोधयितुम् ।
सहदेवैः कुत्सेन च सूर्य्यस्थानादताडयच्छुष्णम् ॥ १० ॥
स यथाऽयमिन्द्र एतं सह कुत्सेन न्यवर्हयच्छुष्णम् ।
शाकल्यो हि गौरिवीतिः स्मारयतीन्द्राय तन् स्तोतुम् ॥ ११ ॥
"उशना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्रजूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्हशुष्णम्" (५ । २९ । ९)

(गौरवीति शाकल्य)

षष्टिः षष्टिश्चेत्थं मरुतां सेनासु कल्पिता व्यूहाः ।
त्रिःषष्टिर्मरुतोऽत्राभिक्रमणे प्रस्तुता आसन् ॥ १२ ॥

सूर्य्यसंस्थासंरक्षणार्थो देवेन्द्रकृतः स्थानिकः प्रबन्धः ।

ये द्वेचक्रे सूर्य्यस्तत्रैकं दिवि समाधातुम् ।
दस्योः शङ्कित इन्द्रो हत्वाऽन्यन् कुत्सरक्षणे न्यदधात् ॥ १ ॥
प्रथमस्य मथकसूक्ते चतुर्थमन्त्रे तदेतदाम्नातम् ।
पञ्चममण्डलधारासूक्तस्य च दशममन्त्रेऽपि ॥ २ ॥

सूर्य्यस्यास्य विधाने नियुक्त आसीत् तदेतश सुप्वि ।
सूनर्य्युषोऽभिधाना पुत्री दिव उषस उपचारे ॥ ३ ॥
चक्रं हृत्वापीन्द्रः कृपयाऽरक्षत् नमेतशं मर्त्यम् ।
उषसं त्ववधीदुषसः शकटं भंक्त्वा विपाशि निक्षिप्य ॥ ४ ॥
उषसो दिवः सुतायाः प्रेमवशादेव गतागतं चक्रे ।
शुष्णः सूर्य्यस्थाने दासाक्रमणे निमित्तमेषोषाः ॥ ५ ॥
अतएवेन्द्रः क्रुद्धस्तदुषोऽधिकृतं तदेकरविचक्रम् ।
स्वर्गे निनाय शकट वाजावहमक्षिपद् विपाशायाम् ॥ ६ ॥
उषसः संबन्धादिह सर्वविधानं व्यवर्जयत् किन्तु ।
एतशहयानुवाहितचक्रमरक्षत् तदैतशाधिकृतम् ॥ ७ ॥
एतच्च वामदेवस्त्रिंशे सूक्ते चतुर्थमण्डलगे ॥ ४ । ३० ॥
उषसो निवर्हणं तद् व्याचष्टे शकटभङ्गं च ॥ ८ ॥
"यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते ।
मुषाय इन्द्रसूर्य्यम् ॥ (४ । ३० । ४)
यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्य्यम् ।
आवः शचीभिरेतशम् ॥ (४ । ३० । ६)
एतद्धे दुतवीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणा युवं वधीदुहितरं दिवः ॥ (४ । ३० । ८)
दिवश्चिद् घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र संपिणक ॥ (४ । ३० । ९)
अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह बिभ्युषी ।
नियत्सीं शिश्नथद्वृपा ॥ (४ । ३० । १०)
एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या ।
ससारसीं परावतः ॥" (४ । ३० । ११)
सूर्य्यस्य दस्युगणतो रक्षार्थं चे न्ययुज्यन्त ।
ते खलु कुत्साधीना राजानः सूर्य्यमासेदुः ॥ ९ ॥
अधितिष्ठति तं सूर्य्यम् कुत्सदधीति न्यवसन्नि तुर्वीति ।
सह राजचक्रमेवं आर्पागिर पञ्चराज इन्द्रम् ॥ १० ॥

—२०७—

इत्थं सूर्य्यस्थाने विधाय शान्तिं कृतेऽखिले सुस्थे ।
सबृहस्पतिरयमिन्द्रः समरुत्सेनोऽभ्यगात्स्वर्गम् ॥ ११ ॥

पृथिव्यां प्रतिष्ठापितसूर्य्यद्वयादेकस्य सूर्य्यस्य दिव्यारोपणम् ।

एकं चक्रं कुत्साभिरक्षणे तत्र संस्थाप्य ।
अपरं चक्रं हृत्वा तं दिवमारोहयत् सूर्य्यम् ॥ १ ॥
"प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्य्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूं रमृणो वधेन निदुर्य्योण आवृणङ् मृध्रवाचः" ॥ २ ॥ (५।२९।१०)

अग्निपुरस्कृतानां देवानां स्वर्गे सहगमनम् ।

तत्सूर्यचक्रं तु मनुष्यलोकाद्दिवि प्रणेतुं विहिते विमर्शे ।
अग्न्यादयस्तत्र सहोपगन्तुं चक्रुः समारम्भमनेकदेवाः ॥ १ ॥
(१०।६५।१) "अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमावायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वानातन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्यापप्रुरोजसा सोमोघृतश्रीमहिमानमीरयन्" ॥
दिवस्पतिर्यः पृथिवीपतिर्यः प्रधानतो दासवधोद्यतौ तौ ।
सोमोऽन्तरिक्षस्य पतिर्घृतश्रीर्ययोन्तरिक्षं विपुलं तदाहुः ॥ २ ॥
"ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतॉ अपः ।
सूर्य्यं दिवि रोहयन्तः सुदानवः आर्याव्रता विसृजन्तो अधिक्षमिः ॥५॥
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमीं पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः" ॥ ६ ॥
दिव्यन्तरिक्षे भुवि च प्रचक्रुर्ज्योतींषि भूमिं च सुसज्जितां ते ।
ये स्वर्णरास्तान् व्यदधुः सुदीप्तान् कृतोत्सवान् राजनिदेशयोगात् ॥ ३ ॥
विश्वेपि देवा दिवि सम्प्रयातुं प्रतिष्ठमानाहि मनुष्यलोकात् ।
नृभ्यो वसूनि व्यतरन् प्रहर्षात् तेभ्यः स्तवन्ते स्म च मानुषेभ्यः ॥ ४ ॥
दिवोऽधिकारो मरुतां यथासीद् यथान्तरिक्षेऽधिकृतश्च वातः ।
यथाप्सु चाब्धौ वरुणस्तथाग्निर्भूम्याः पतिर्दीर्घतमा जगाद ॥ ५ ॥

यद्यप्यमरावत्यां देवसभायां सुधर्मायाम् ।
धिष्ण्यानधितिष्ठन्ति हि दिक्पाला लोकपालाश्च ॥ ६ ॥
सन्ति तथापि ततोऽन्ये चत्वारो लोकपतयोऽमी ।
स्वे स्वे लोके प्रत्यासन्नाः शवसोनपात् संज्ञाः ॥ ७ ॥
शवसोनपात् स शास्ता यः स्थानीयः प्रबन्धकर्ता स्यात् ।
राजप्रतिनिधिभूतः प्रान्ताध्यक्षः पुराकाले ॥ ८ ॥
योऽग्निः स देवोऽधिकृतः पृथिव्यां मनुष्यलोकेऽधिपतिर्नियुक्तः ।
वह्निः स देवेभ्य इतः प्रदानं प्रगृह्य दिव्यर्पयति प्रणीय ॥ ९ ॥
"त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ॥
देवेभिर्मानुषे जने ॥
यो अग्निः सप्त मानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ॥
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्यु हन्त ममग्नि यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
नभन्ता मन्यके समे"— ॥
इत्थं ब्रूते काण्वो नाभाकस्त्रिषु समुद्रकूलेषु ॥
भवनानि त्रीण्यग्नेर्मन्त्रकृतः सप्तमानुषान् सभ्यान् ॥ १० ॥
मनुष्यलोकाधिपतित्वहेतोरग्निः प्रधानः स इतः पृथिव्या ॥
चक्रप्रणीतौ दिवि तेन केतुः सूर्य्यप्रणेतृत्वमनुष्य वक्ति ॥ ११ ॥
"अग्ने नक्षत्रमजरमासूर्य्यं रोहयो दिवि ॥
दधज्ज्योतिजनेभ्यः"—(१० । १५६ । ४ ।)
तान् प्रस्थितान् दिव्यमरान्मनुष्यास्ते स्वस्तिवाकैर्बहुधाऽभ्यनन्दन् ॥
यूयं समं धीभिरितः प्रयान्त स्वः प्राप्य तत् स्वस्तिगिरो जुषध्वम् ॥ १२ ॥
"विश्वेदेवाः सह धीभिः पुरन्ध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ॥
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्मसूक्तं जुषेरत" ॥
स्वं स्वं दिविस्थानमभिप्रयातान् ववन्दिरे भक्तिवशान्मनुष्या ॥
वसिष्ठपूर्वा भुवि सूर्य्यसंस्था-प्रतिष्ठिताः स्वं च यशोऽर्थयन्तः ॥ १३ ॥
"देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाऽभिप्रतस्थुः ॥
तेनो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २२ ॥"
(१० । ६५ । १५)

एतशेन सूर्य्यरथवहनम् ।

अर्थाहरणे कर्म्मणि ये नियता व्यापृता नरा भृतकाः ॥
हरितो नरास्त उक्ताः शिरसा रश्मिभिरिमे हरन्त्यर्थान् ॥ १ ॥

इन्द्रश्चक्रं स यदा दिवमनयत् तत्र हरितो न्नून् ॥
व्यरमयतेन्द्रो ना स्वयमेतश एकोऽहरच्चक्रम् ॥

"त्वं सूरो हरितो रामयोन्द्रन् भरचक्रमेतशो नायमिन्द्र ॥
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून्" ॥ (१।१२१।१३)

यद्यपि नद्योवह् व्यस्तथापि या नौकया तार्य्याः ॥
मध्ये मार्गं नवतिस्तत्पारे चक्रमेतशो निन्ये ॥ ४ ॥

दिवि सूर्य्यारोपणस्थानम् ।

स्वर्गस्त्रिविष्टपाख्यो विष्टपमेतस्य मण्डलं खण्डम् ॥
ऐशान्यामपराजितदिशि चन्द्रं विष्टपं त्वासीत् ॥ १ ॥

प्राग्मेरुलक्षितं तु ब्राह्मं विष्टपमवाग् दिशि प्रथितम् ॥
तत उत्तरदिक्प्रथितं नाकाख्यं तु विष्टपं विष्णोः ॥ २ ॥

ब्रह्मा विष्णुरथेन्द्रस्त्रयोऽक्षरा मुख्यतोऽधिदैवमिमे ॥
अग्निः सोम इतिमावनुगौ पञ्चाक्षरं विश्वम् ॥ ३ ॥

लोकत्रयमधिभूतं तद्वदिदं पञ्चमण्डलं क्लृप्तम् ॥
एकं मनुष्यलोकोऽन्तरिक्षमेकं त्रिविष्टपं तु द्यौ ॥ ४ ॥

ब्राह्मस्य वैष्णवस्यान्तरे स्थितं विष्टपस्यास्य ॥
ब्रध्नस्य विष्टपं तत् प्रकल्पितं यज्ञसूर्य्याभ्याम् ॥ ५ ॥

आसीद्दिवस्तु मध्ये लोको ब्रध्नस्य विष्टपस्तत्र ॥
संप्रत्युत्तरतः प्राग् मेरोरंशे तु सप्तदशे ॥ (१७) ॥ ६ ॥

मध्ये चतुष्पथं यः स्कम्भोधरुणाख्य उन्नतः क्लृप्तः ॥
तदुपरि चाश्मा पृश्निर्नामहितं सूर्य्यचक्रं तत् ॥ ७ ॥

"इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आसूर्य्यं रोहयद्दिवि ॥
विगोभिरद्रिमैरयत्" । (ऋ० सं० १ । ७ । ३) (मधुच्छन्दाः) ॥
'इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वावेदसवना हन्ति शुष्णम् ॥
महींचिद्द्यामातनोत् सूर्य्येण चास्कम्भचित्कम्भनेन स्कम्भीयान्" ॥
(१० । १११ । ५)

अद्रिः सोऽश्मा पृश्निः समन्ततो गोभिराकीर्णः ॥
अहनि च दिवा च दीर्घत्विपेऽत्रसूर्य्यं तमाधत्त ॥ ८ ॥
स्कम्भस्यास्य चतुर्षु च पार्श्वेष्वासीच्चतुर्भद्रम् ॥
वृषभो ह्रदश्च चन्द्राश्वः पक्षी ते शिलाकायाः ॥ ११ ॥
"दिवो यः स्कम्भी धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशु पर्य्येति विश्वतः ॥
सेमे मही रोदसी यक्षदावृतासमीचीने दाधार समिषः कविः ॥
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वी स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमाविवेश ॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ॥
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्यात्यन्तौ" ॥ (५।४७।२)

स्कम्भोऽधिदैवतमयं व्याख्यातोऽथर्वसंहितायां यः ।
दशमे काण्डे सप्तमसूक्ते सोपीन्द्रतः क्लृप्तः ॥ १२ ॥

"स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽधृत्यमाहितम् ।
स्कम्भ त्वां वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽधृत्यमाहितम् ।
इन्द्रं त्वां वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

यत्परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्न प्राविशत्कियत् तद् बभूव ॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन् अध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्य्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवाः अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचस्साम यजुर्मही।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥
अस्त्यधिदैवं स्कम्भो नाकद्वितयान्तरा ततो विपुलः।
सूर्य्येण क्लृप्तगर्भस्तत्प्रतिमो भौमदिवि स कृतः ॥ १३ ॥
अस्ति सुषुम्णा वृषभो वरुणः समुद्रः खगश्चन्द्रः।
स्कम्भं परितस्तस्माद् भौमस्कम्भानुगा अपि ते ॥ १४ ॥
अस्ति च वेदो वृषभोऽस्त्यपां समुद्रः क्षितिश्चन्द्रः।
स्कम्भं परितस्माद् भौमे स्कम्भे परितस्ते ॥ १५ ॥

अश्मा पृश्निः।

देवयुगे प्रागभवद् विश्वविदितमद्भुतत्रितयम्।
एकं मानुषलोके सूर्य्यायतन सरस्वत्याम् ॥ १ ॥
अन्यत् स्वर्गे प्रेङ्खं वरुणावीनं हिरण्मयं विपुलम्।
तत्रैवान्यद्वरुणं यत्राश्मा पृश्निराहितो रेजे ॥ २ ॥
विशदं स्वरूपमेषामन्यत्र स्वर्गवर्णने कथितम्।
स्वर्गे सोऽश्मा पृश्निः सुप्रथितोऽत्यद्भुतश्चासीत् ॥ ३ ॥
तत उत्तरतः पन्था विष्णोश्चन्द्रस्य लोकस्य।
पितृलोकस्य प्राच्यां दक्षिणतो ब्रह्मलोकस्य ॥ ४ ॥
तत्र चतुष्पथमध्ये स्कम्भस्योपरि विहायसि क्रान्तः।
सप्तशिरा हैमाश्वोऽश्मनि पृश्नौ चक्रमदधात् तत् ॥ ५ ॥
नक्तं दिवा च तुल्यं सूर्य्यमयूखप्रसारतो ज्योतिः।
सर्वासु दिक्षु पथिषु प्रयतामयनान्यदर्शयत्साधु ॥ ६ ॥
इत्थं भगवानिन्द्रः स्वर्गेप्येकं स सूर्य्यमारोप्य।
कीर्तिं स्वामप्रथयद् भूमौ शान्तिं च संस्थाप्य ॥ ७ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञानशास्त्रसम्बन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्य्योपाख्याने विज्ञानभवनाख्यस्तृतीयः प्रसङ्गः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

अथ दस्युनिग्रहश्चतुर्थः प्रक्रमः ॥

भारतीयार्य्यराष्ट्रे वैदेशिकानार्यदासानामाक्रमणम् ।

दस्यूनामुपद्रावकाणां पुनराक्रमणम् ।

गतवति कतिपयकाले पुनरपि शान्तिर्व्यलुप्यत प्रायः ॥
अत्युद्धतस्वभावैराक्रम्यन्तार्य्यराष्ट्राणि ॥ १ ॥

एतेऽपगणप्रमुखा आर्य्यान् गन्धर्वदेशवास्तव्यान् ॥
शश्वत् प्रपीडयन्तो व्याकुलयाञ्चक्रुरत्युग्राः ॥ २ ॥

आर्य्यौ दशद्युरन्यः श्वैत्रेयोन्यो मुहुर्नियुध्यापि ॥
बलवद्दस्युभिरेतैर्द्दंतश्रियौ जग्मतुः परां विपदम् ॥ ३ ॥

सव्यं पड्गृभि-शुष्णौ वेशस्त्वायुं पुरूरवःपुत्रम् ॥
वैदथिनमृजिश्वानं पिप्रुर्मृगयश्च शूशुवान् व्यरुजन् ॥ ४ ॥

वयं चतूर्वयाणं सुश्रवसं चातिथिग्वमार्यं नृपम् ॥
वङ्गृद-करञ्ज-पर्णयमुख्या बहुधा निपीडयामासुः ॥ ५ ॥

चुमुरिधुनिर्दभीति-ध्वसन्ति-पुरुषन्ति-तुर्वीतीन् ॥
वार्षागिरांश्च पञ्चभ्रातॄन् भूपान् प्रपीडयतः ॥ ६ ॥

राज्ञो यदा पिठीनस आसीद् रज्या विवाह आदिष्टः ॥
चुमुरिधुनिर्बलादिव तां रजिमपजहतुस्तर्हि ॥ ७ ॥

राजादभीतिरेतौ परिभावयितुं यदा प्रवृत्तोऽभूत् ॥
प्रबलौ तदा दभीतिं चुमुरिधुनी तौ तमर्दयतः ॥ ८ ॥

देवेन्द्रः श्रुतवृत्तः समादिशन्ति ग्रहीतुं तौ ॥
इन्द्रकृपातो राज्ञा पिठीनसा सा रजिर्लब्धा ॥ ९ ॥

षष्टिसहस्राण्यस्मिन्नभिमर्दे निहता सुभटाः ॥
दासानामित्यूचे बार्हस्पत्यो भरद्वाज. ॥ १० ॥

कुयवकृतः कुत्सपराभवः ।

कुयवः शुष्णः पिप्रुस्तुग्रः स्मदिभश्च दस्यवोऽत्युग्राः ॥
आक्रम्य सूर्य्यसंस्थामशान्तिमातेनिरे भूयः ॥ १ ॥
वेतसुनगराधीशे कुत्से तत्सूर्य्यसंस्थायाः ॥
त्राणार्थमागते सति वभूव दासैरमुष्य संमर्दः ॥ २ ॥
प्रवलः कुयवस्तमिमं कुत्सं छलतः पराभाव्य ।
वेतसुजनपदसीम्नः सहसा निष्क्रासयामास ॥ ३ ॥
अपहृत्यैतत् क्षेत्रं तुग्रस्मदिभौ तु शासकत्वेन ।
कुयवस्तत्र तदानीं वेतसुराष्ट्रे नियोजयामास ॥ ४ ॥
सिन्ध्वादिस्रोतोभ्योऽपां ग्रहणं वर्जितं चक्रे ।
जलनिग्रहाय शुष्णं पिप्रुं चापि प्रयोजयामास ॥ ५ ॥
प्रस्तरखण्डप्रचयाज्जलप्रवाहो न्यरोधि सिन्धूनाम् ।
हिमवद्द्रोण्यामजिरे कृतोऽर्णवः कृत्रिमोऽवरुद्धाद्भिः ॥ ६ ॥
कृष्णास्तदधिष्ठाता मध्येऽर्णवमुन्नते गिरौ न्युषितः ।
अहिशम्बरौ च नौभ्यो यातायातं गृहेषु चक्रुरिमे ॥ ७ ॥

(२)—दस्युनिग्रहणार्थं भारतीयार्य्याणां देवेन्द्रसाहाय्यलाभाय प्रयत्नः ।
कुत्सादीनामार्य्यनृपाणां परित्राणोपायचिन्तासमितिः ॥
कुत्सादयोऽतिखिन्नाः किं करवामेति चिन्तयामासुः ।
घौरः प्रगाथ एतानूचे समयोचितं तत्र ॥ १ ॥

(१)—८ । १ "मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं च चासुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणी सहम् ।
विद्वेषणं संवननो भयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
य श्चते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः" ॥ ३ ॥

(२)—८ ।६२ "प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः।
पूर्वीरिति प्रवावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ २॥

(३)—८।६२ "सपूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे॥ १॥
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोम पृष्ठासो अद्रयः।
उक्थ्या ब्रह्म च शंस्या॥ २॥
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम्॥ ३॥
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रागन्त्ववसे॥ ४॥
आदू नु ते अनुक्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्रगोत्रस्य दावने॥ ५॥
इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च।
यमर्का अध्वरं विदुः॥ ६॥
यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद्बर्हणा विपो३ऽर्यो मानस्य स क्षयः॥ ७॥
अस्य वृष्णो व्योदन उरुक्रमिष्ट जीवसे।
यवं न पश्व आददे॥ ८॥
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः।
स्याम मरुत्वतो वृधे॥ ९॥"

(४)—"प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः।
याभिः काण्वस्योपबर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः"॥ (८।१।८)

अन्यत् मा प्रयतध्वं मा क्लिश्यध्वं तमेनमेवेन्द्रम्।
शरणं यात स एवाऽखिलकृच्छ्रात् तारयिष्यति नः॥ २॥
ग्रीवाच्छेदात्पूर्वं संधानद्व्यमन्तरेणैव।
स च्छिन्नमङ्गमखिलं सद्यः संधातुमर्हति॥ ३॥
दासानां प्रबलानामिन्द्रोऽस्त्येको निवर्हको [illegible]।
तस्मादिन्द्रं यातेत्यादिश्योचे स [illegible]॥ ४॥

कुत्सं त्वामिह सूर्य्यायतनेऽस्मिन् स न्ययुङ्क्तेन्द्रः ।
प्राक् स यदा गन्धर्वं सूर्य्यं हत्वैतशं तत्र ॥ ५ ॥
तस्मादत्र विपन्नः शरणं याहीन्द्रमेव तं तूर्णम् ।
अहमपि तमाह्वयामि तु कामगवीमिव समस्तकामदुहम् ॥ ६ ॥
गायत्रमिन्द्रसविधे नयतेत्युक्त्वा प्रगाथ एतददात् ।
वाग् ब्रह्म भद्रसूक्तं गायत्रं नाम कुत्साय ॥ ७ ॥
देवानामाह्वानं त्वाहव इत्युच्यते तत्र ।
आश्रावणं तदुक्तं यच्चाश्रावयति देवेभ्यः ॥ ८ ॥
अभ्यर्थनां तु देवा अभ्युपगच्छन्ति तच्छ्रौषट् ।
अभ्यर्थनामयं यद्विनयवचस्तद्धि गायत्रम् ॥ ९ ॥
काण्वो हीन्द्रप्रणयी काण्वकृताभ्यर्थनास्तोत्रम् ।
नीत्वा यातेत्यददात् कुत्सकरे विनयपत्रं सः ॥ १० ॥
तत्र प्रथमं काण्वः प्रगाथ एवार्थनांचक्रे ।
दस्युवधार्थं कुत्सत्राणार्थं त्वरितमायातुम् ॥ ११ ॥
मेधातिथि-मेध्यातिथि-नीपातिथयस्तदेन्द्राय ।
काण्वा एत्य त्रातुं चक्रुरिहाभ्यर्थनासूक्तम् ॥ १२ ॥

प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम् ।

८ । ६२—"आयाहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥
धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
अवचष्ट ऋचीषमोऽवँता इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनुक्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमधश्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तवक्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वा वृधुर्मघवन्तवशर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १० ॥
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्संयुज्याव सनिभ्य आ ।
अराती वा चिदद्रिवोऽनु नौशूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥
सत्यमिद्वा उतं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महां असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः" ॥ १२ ॥

८। ६५—"यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
आयाहि तू यमाशुभिः ॥ १ ॥
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।
यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥
आत्वागीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे ।
इन्द्रसोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
आतइन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः ।
रथं वहन्तु विभ्रतः ॥ ४ ॥
इन्द्रगृणीष उ स्तुषे महाँ उग्रईशानकृत् ।
एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्रसाधारणस्त्वम् ।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥
इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥ ८ ॥
विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽतिख्यन्तूयमागहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
दाता मे पृषतीनां राजाहिरण्यवीनाम् ।
मा देवो मघवा रिषत् ॥ १० ॥

सहस्रे पृषतीनामधिश्चन्द्रं बृहत्पृथु ।
शुक्रं हिरण्यमाददे ॥ ११ ॥
न पातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः ।
श्रवो देवेष्वक्रत" ॥ १२ ॥
"इयमुते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या ।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥" (८ । ६३ । ८)
"वव्रुत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नो नुमः ।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥" (८ । ६३ । ११)
"अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायिपज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्मां अवन्तु देवाः ॥" (८ । ६३ । १२)

मेधातिथेरभ्यर्थनीयं वाग्ब्रह्म ।

८ १—"यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्द्धनम् ॥ ३ ॥
वितर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपोजनानाम् ।
उपक्रमस्व पुरुरूपमाभर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥
महेचन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता चेमे छदयेथः समावसो वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्रगायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥
ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमागहि ॥ ८ ॥
आ त्वाद्य सबर्दुघां हुवे गायत्र वेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥ ९ ॥
यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम्" ॥ १० ॥

"मा भूमनिष्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ (८।१।१३)
अथज्मो अधवादिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वागिरा ममा ज ता सुक्रतो पृण ॥ (८।१।१८)
मात्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ (८।१।२०)
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्चजनां अति ।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥" (८।३२।२२)

मेध्यातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

"एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रा युदरं सपीतिभिरासोनेभिरुरु रिधरम ॥" (८।१।२३)
आत्था सहस्रमाशत युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्म युजो हरय इन्द्र केशिनो व न्तु सोमपीतये ॥ (८।१।२४)
आत्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसोविवक्षणस्य पीतये ॥ (८।१।२५)
पिबात्वस्य गिर्वण सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ (८।१।२६)
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभिव्रतैः ।
गमत् स शिप्री न स योषदागमद्धवं न परिवर्जति ॥ (८।१।२७)
त्व पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्व भा अनुचरो अधद्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ (८।१।२८)
ममत्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपि [illegible] [illegible] ॥ (८ [illegible])
वयं घत्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि [illegible] ॥ (८ [illegible])
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक [illegible] ॥ (८ [illegible])

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवतः ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ (८ । ३३ । १०)
वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन् वृषणाहरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ (८ । ३३ । ११)
एन्द्र याहि पीतये मधुशविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ (८ । ३३ । १३)
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्य्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥ (८ । ३३ । १४)
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ (८ । ३३ । १६)
अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
माते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" ॥ (८ । ३३ । १९)

नीपातिथेरभ्यर्थनासूक्तम् ।

८ । ३४ "एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥
आत्वा ग्रावा वदन्निह सोमीघोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥
अत्रा विनेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥
आत्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाज सातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥
दधामि ते सुतानां वृष्णेन पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥
स्मत्पुरन्धिर्न आगहि विश्वतो धीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥
आनो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

आत्वा होता मनुर्हितो देवत्रावक्षद्‌ दीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥
आत्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेववक्षतः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥
आयाह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥
आनो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥
८।१ स रूपैराशुनोगहि संभृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥
आयाहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥
आनो गव्यन्यश्व्या सहस्रा शूर दर्द्दहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥
आनः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भर्गस्य प्रगाथस्याभ्यर्थनासूक्तम् ।

८।६१ 'उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ [illegible] ॥ १ ॥
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं [illegible] ते मनः ॥ २ ॥
आवृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ॥
विद्मा हित्वा हरिवः पृत्सु सासहिं मधृष्टं [illegible] ॥ ३ ॥
अप्रामि सत्य मघवन्तथे [illegible] क्रत्वा यथा [illegible] ।
सनेमवाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू [illegible] ॥ ४ ॥
शग्ध्यूषु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं नहि त्वा यशसं वसुविदमनु [illegible] ॥ ५ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवा मस्युत्सो देव हिरण्ययः।
न किहि दानं परिमधिषत्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥ ६ ॥
त्वं ह्येहि चेखे विद्राभगं वसुत्तये।
उद्वोवृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथादानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्र गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥
अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्रते वचः।
स प्रममन्दत्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम्।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥
न पपासो मनामहे नारायसो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्र वृषणं स चा सुते सखायं कृणवामहे ॥ ११ ॥
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिं मृणकातिं मदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनितारथी तमो वाजिनं यमिदूनशत् ॥ १२ ॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्नऊतिभिर्विद्विषो वृमृधो जहि ॥ १३ ॥
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्रगिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥
इन्द्रः स्पलुत वृत्रहा परस्पानो वरेण्यः ॥
सनो रक्षिषच्चरमं समध्यमं सपश्चात्पातु नः पुरः ॥ १५ ॥
त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र निपाहि विश्वतः।
आरे अस्मत्कृणु हि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥
अद्याद्याश्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वाचनो जरितृन्त्सत्पते अहादिवानक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्यायकम्।
उभाते बाहू वृषणा शतक्रतो निया वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥"

अथ दस्युपरिपीडितानामार्याणामिन्द्रशरणे गमनम्।

इत्थं कृतमतिराप्तप्रणयवचोयुक् स विह्वलः कुत्सः।
अन्यच्छरणमपश्यन्निन्द्रायैवामरावतीं प्रययौ ॥ १ ॥

२६—तत्र विज्ञानौपयिके सूर्य्येऽसुरप्रेरितानां दासानामागमनम् ।

देवानामिह सूर्य्यादुदगाद् वैज्ञानिक प्रभावः स्म ।
सौमिकयज्ञवशात् ते प्रापुर्लोकातिगां भूतिम् ॥ १ ॥
बलिनोऽसुरास्त एते कहाविभूति महाप्रभावं च ।
देवानामिह दृष्ट्वा यज्ञं कर्तुं यतन्ते स्म ॥ २ ॥
विज्ञानदुर्बलत्वादप्रारयन्तस्तु ते यज्ञे ।
विज्ञानोदयनार्थं सूर्य्येऽस्मिन्नाक्रमन्ते स्म ॥ ३ ॥
सूर्य्यः पृथिव्यां चक्रद्वयरूपः कश्चिदासीत् प्राक् ।
देवैर्विनिर्मितस्तं हर्तुं दासान् न्ययोजयन्नसुराः ॥ ४ ॥
यद्देवदासीयनियोधनं तद् यैर्यत्र येषामभवद् [illegible] ।
तज्ज्ञायते वेदवचोऽवधानात् तत्किंचिदत्रापि निदर्शयामः ॥ ५ ॥
प्राक् स्वर्णरं सप्तगुमभ्यवोचद् वैकुण्ठ इन्द्रः [illegible] ।
एवं कार्त्स्न्यतो जीवनकर्म्म तस्मिन् [illegible] ॥ ६ ॥

२७—मनुष्यामनुष्यभेदात् दासानां त्रैविध्यम् ।

स एष दासस्तु न देव आसीन्न दानवो नापि मनुष्य [illegible] ।
आर्य्यैर्द्विषन् कश्चिदनार्य्यवर्य्यः पृथग्विदेव [illegible] ॥ १ ॥
वर्वरभिन्नाः सभ्या आर्य्या दासा इति त्रिविधाः ।
आर्य्या बहुधा भिन्ना देवपितृप्रभृतयः कथिताः ॥ २ ॥
सभ्येष्वेकेऽनार्य्या जात्या दासा हि दस्यवो [illegible] ।
चौर्य्याद्भयाच्च दैन्यात् पलाय्य दासा [illegible] ॥ ३ ॥
अमनुष्याश्च मनुष्या इत्थं दासा अमी त्रिविधाः ।
भारतवर्षाभिजना वन्यनिषादा मनु[illegible] ॥ ४ ॥
तेषामार्य्यैः साकं क्वापि कदापि [illegible] ।
नैते जिता न चैते भारत[illegible] ॥ ५ ॥
दस्युनिवृत्त्यादस्मात् प्राग्वैदिकं [illegible] ।
लब्धात्तोऽनार्य्याणामार्य्याणां [illegible] ॥ ६ ॥

मनुना स्मृतौ त एते स्मर्य्यन्तेऽद्यापि दृश्यन्ते ।
भारतवर्षवहिःस्थास्त्वमनुष्या गिरिचरा दासाः ॥ ७ ॥
तेषां प्रभवं प्रकृतिं भेदान् वसतीश्च युद्धसंस्थानम् ।
तदभिज्ञानविशेषानत ऊर्ध्वं दर्शयिष्यामः ॥ ८ ॥

२८—अमनुष्यदासानां प्रभवः ।

ये देवयोनयस्ते दशधा भिन्ना अमीषु भूतगणाः ।
आसन्नेके तेऽपि द्विविधाः सभ्या असभ्याश्च ॥ १ ॥
सभ्यनिकाये भुक्ता आर्यनिदेशानुकारिणः सभ्याः ।
ये विपरीता एभ्योऽसभ्यास्ते दस्यवोऽपगणाः ॥ २ ॥
❀ प्रमथप्रमुखा वहवो गणाः सुराणां तु सैनिका आसन् ।
उत्सवसंकेताद्याः केऽपि गणाः भारते कथिताः ॥ ३ ॥ सभा—२७

❀ सभापर्वः अ॰ २७ पौरवं युध निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः ।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाडवः ॥ १ ॥
ततः काश्मारकान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
व्यजयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभिः सह ॥ २ ॥
ततः परमविक्रान्तो वाह्लीकान् पाकशासनिः ।
महता परिमर्द्देन वशे चक्रे दुरासदान् ॥ ३ ॥
दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः ॥ ४ ॥
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः ॥
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
लोहान् परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरानपि ।
ऋषिकेष्वपि संग्रामो वभूवातिभयंकरः ॥ ६ ॥
स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्य्यवान् ।
तं जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम् ॥ ७ ॥
सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः ।
गन्धर्वरक्षितं देशमजयत् पाडवस्ततः ॥ ८ ॥

एभ्यो ये विपरीता लुठचरान्तेऽपरीतय प्रोक्ता ।
मन्ये त एव सांप्रतमफरीदीत्याख्ययाख्याता ॥ ४ ॥
हरोदोतस एवान्-अपरीतईत्येवमाचष्ट । (Aparvtai)
तस्मात् पूर्वयुगेऽमी अपरीतय एव चाख्याताः ॥ ५ ॥
युद्धस्थलान्न येषां परिच्युतिन्तेऽपरीतय सुदृढा ।
परिगलितं यत्र स्यादपरीतत्व श्रुत तस्य ॥ ६ ॥
विश्वमना वैयश्वोऽप्रतिरुद्धं वक्तुमिन्द्रबलम् ।
अपि गौतमः क्रतून् प्रतिरुद्धान वामाह [illegible] ॥ ७ ॥
इन्द्र यथा ह्यन्तितेऽपरीत नृतो [illegible] ।
अमृताराति: पुरुकृत दाशुषे । (८ । २४ । ६) । ८ ।
आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीता—
स उद्भिदः ॥ देवानो यथा सदमिद् वृधे—
असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ ६ ॥ ([illegible])
([illegible])

अथवा ये प्रतिरुद्धा. परिच्युता अपरीतय [illegible] ।
एषां वेश्म समन्तात् प्रतिरुद्धं चापरीतिन्ते [illegible] ॥ [illegible]
दैवतरीत्यपकर्षादेषामपरीतिना गणानां [illegible] ।
अपकृष्टत्वादेषामपगणशब्देन [illegible] ॥ [illegible] ॥
त इमेऽफगाननाम्ना ऽफगान नाम्ना [illegible] ।
एषामेव तु वैदिकतनये [illegible] ॥ [illegible] ॥

२६—[illegible] ।

इमप्रकृतय आसन् [illegible] ।
घोरा द्रुह्यच योद्धं संनद्धा. [illegible] ॥

३०—[illegible] ।

एषा [illegible] ।
आसन् पुरापि [illegible] ।

३१—अमनुष्यदासानां प्रमुखाः कतिपये वेदे नामतो निर्दिश्यन्ते ।

वहवः श्रेण्य एषामेकैकश्रेणिनायको भिन्नः ।
प्रमुखा अराजकानां दासानां मन्त्रविश्रुताः केचित् ॥ १ ॥
शंवरः कुयव-शुष्ण-पिप्रवाःपड्गृभिः स्मदिभ-रोहिणाऽहय. ।
व्यंस-वेश-मृगया-इलीलिविशः-शूश्रुवांश्चमुरि-तुग्रकौ धुनिः ॥ २ ॥
पर्वतनिवासिशंवर एवा मर्मोच्यते तुजिवर्ची ।
दस्यव एते दासा असुरा वृत्राश्च सर्वं उच्यन्ते ॥ ३ ॥

३२—अमनुष्यदासानां हिमवत्प्रदेशे सिन्धुनदप्रान्ते निवासः ।

हिमवति च हेमकूटे यावन्तः पादपवतास्तेषु ।
सिन्धुनदोत्तरभागे द्रोण्यां निवसन्ति दासगणाः ॥ १ ॥
गान्धारोत्तरसीम्नि च निपधात् प्राच्यां य उज्जिहानदेशोऽस्ति ।
अद्यत्वे तं देशं म्लेच्छा आहुस्तु काफिरस्थानम् ॥ २ ॥
जाह्नवहाटकदेशौ संप्रति चित्राललद्दाखौ ।
कथितौ तत्र प्रान्ते दस्यव एते वसन्तिस्म ॥ ३ ॥
दुर्गमगिरिगहनेऽस्मिन् श्वेतगिरेः प्रगुपत्यकाप्रान्ते ।
विषमेऽङ्गणे निगूढे निवसन्ति स्मापरीतिनोऽपगणाः ॥ ४ ॥
गान्धराद्या देशा आर्य्याणामथ च हेमकूटाद्याः ।
दासानामुभये ते विभिन्नसप्तनदवास्तव्याः ॥ ५ ॥

३३—"सिन्धुनदप्रान्ते सप्तनदत्रयम्" ।

सिन्धौ तावत् सप्त सप्त स्रवन्त्यः संगच्छन्ते वामतो दक्षतश्च ।
सिन्धोः प्रच्यामन्यदन्यत् प्रतीच्यां तस्योदीच्यां सङ्गमस्थानमन्यत् ॥ १ ॥
प्रसप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामतिसिन्धुरोजसा ।
त्रिः सप्त सस्रा नद्यः ॥ २ ॥
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वता अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तृन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ३ ॥
(१० । ६४ । ८)

नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे । शविष्ठं नृणां नरम् ।
सनः कदाचिदर्वता गमदावाजसातये । गमद्वा मेधसातये । नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
ताहि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवीपृच्छ्यमाना सखीयते । सधीतमश्नुतं नरा । नभन्तामन्यके समे ॥
अभ्यर्च नाभाकवदिन्द्राग्नी यजसागिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवीमह्युपस्थे बिभृतोवसु । नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥

प्रब्रह्माणि नाभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।

या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत । इन्द्र ईशान ओजसा । नभन्तामन्यके समे ।
स्वागतमिन्द्राग्निभ्या मित्थं कृत्वा स नाभाक !
शुष्णवधाय विशेषादिन्द्रं प्रोवाच तत्प्रवक्ष्यामि ॥ ८ ॥

इन्द्रस्यातिथ्यपरिचर्या ।

इन्द्रः स्वाराण्निषधे तिष्ठन्नासीत्सा कुत्सस्य ।
अतिथिस्तेन सकुत्सा पर्य्यचरन् तं हि सवनोत्सवे ॥ १ ॥
देवानामविशेषात् प्राशनसमयास्त्रयो दिवा नियता ।
प्रातः सवनं माध्यन्दिनसवनं वा तृतीयसवनं वा ॥ २ ॥
कुत्सो विश्वामित्रं न्ययोजयत् तस्य भोजनार्थं ।
प्रातःसवने मध्यन्दिनसवनेऽथो तृतीयसवने च ॥ ३ ॥
ऋभुरथ विभ्वावाज पूषा वंतस्य देवराजस्य ।
सहभोजने नियुक्ताः पर्वतहर्म्यस्थपूर्वंप्रासादे ॥ ४ ॥
पूषा पशुशालानामध्यक्ष किन्तु सोऽतिथि [illegible] ।
देवेन्द्रः प्रियमाहनहर्म्येऽवान् यो [illegible] ॥ ५ ॥
इन्द्राय यत्र धानास्तृतीयसवने प्रदीयन्ते ।
तत्रभवे च धानायेन्द्रहरिभ्या च दीयन्ते ॥ ६ ॥
इन्द्रस्य पानभोजनसमये तत्र च [illegible]
पिबति च सोमनपूप [illegible] ॥ ७ ॥

भोजनसामग्र्या ये धर्त्तारस्ते जनाः प्रयस्वन्तः ।
सोमादिपानदाने परिचरितारस्तु जरितारः ॥ ८ ॥
सर्वेषां सोऽध्यक्षो विश्वामित्रो महर्षिरिन्द्रं तम् ।
आमन्त्र्य सूक्तवाकैर्मधुवाकैश्चोपचरति स्म ॥ ९ ॥

तत्र विश्वामित्रकृतो देवेन्द्राय भोजनसमये मधुवाकः ।

३।५२ "धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥
पुरोडाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च ।
तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥
पुरोडाशं च नोघसो जोषयासे गिरश्च नः ।
वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥
पुरोडाशं सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः ।
इन्द्रक्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥
माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्रकृष्वेह चारुम् ।
प्रयत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उपगीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उपशिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥
पूषण्वते च कृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहाशूर विद्वान् ॥ ७ ॥
प्रतिधाना भरत तूपमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवे दिवे सदृशोरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वां सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥"

३-६०-१-७ विश्वामित्रकृतस्तृतीयसवने ऋभुत्रयपरितोषार्थः प्राशनीयो मधुवाकः ।
"इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ॥
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिं वर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा [illegible] ।
नवः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि [illegible] ॥ ४ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥ ५ ॥
इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥ ६ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपयाहि [illegible] ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥

देवभेदेन सोमपानसमयभेदः ।

समयः पृथगिव नियतो देवानां सोमपानाय ।
आसीदित्यावेदितमाथर्वणनवमकाण्डेऽपि । ([illegible]) ॥ १ ॥
"यथा सोमः प्रातः सवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विनावर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ [illegible] ॥ ([illegible])
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
"यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ॥ [illegible] ([illegible])

निषधगिरौ समरारम्भणीयः सोमाभिषव प्रसङ्गान्तः—प्रागुक्त [illegible]
॥ [illegible]

तत्रेन्द्रस्य प्रीत्यै संमानार्थं महोत्सवं [illegible] ।
सोमाभिषवं नामाऽऽतेनेऽत्युत्साहसंभार ॥ [illegible] ॥
युद्धात्पूर्वं पश्चादासीन्नियतं तु वीरपानं [illegible] ।
उद्दिश्य वीरपानं कुत्सेनायं महोत्सव [illegible] ॥ [illegible]
धानापूपकरम्भामिक्षादध्याशिरादयो [illegible] ॥
सोमाग्रपेयपूर्वा गुणकीर्तनभक्तिभृ[illegible] ॥ [illegible] ॥
महतो यो माहात्म्यं दर्शयितुं [illegible] ।
प्रमहं मह इति चाहुः [illegible] ।
तत्रानेकसहस्राण्यासन्निन्द्राय [illegible] ।
विनिमयनार्था गाव [illegible]

विनिमयनव्यवहाराञ्जस्यार्थं राजशासनप्रख्यम् ।
अद्य यथा पश्यामस्ताम्रपणं रौप्यणं स्वर्णम् ॥ ६ ॥
एवं देवयुगे प्रागासीद् गोनाम विनिमयद्रव्यम् ।
तद् गौरेव हिरण्यं वान्यद्वेत्येवमनुचिन्त्यम् ॥ ७ ॥
अद्येव पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि ।
विनिमयनीयद्रव्याण्यावेद्यन्ते स्म ता गावः ॥ ८ ॥
आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य ।
प्रणयप्रदेयमर्थं स्वैः स्वैः काव्यैः सहार्पयामासुः ॥ ९ ॥
येयं प्रथते वैदिकमन्त्राणां संहितात्रितयी ।
काव्यानि तान्यृषीणामित्युक्तं शतपथेऽष्टमे काण्डे ॥ १० ॥
(शत० ८ कां० ३ प्र० ३ ब्रा० ४ कं०)

तत्र च कुत्सनियुक्तो विश्वामित्रो महर्षिरुत्थाय ।
दस्युवधायेन्द्रायावदेयदभ्यर्थनासूक्तम् ॥ ११ ॥
शुष्मिन्तमं च वनुते दस्युभ्यः स्वगृहराष्ट्ररक्षार्थम् ।
भोज्यान्नलाभहेतोर्द्युम्निनियुक्तिं च सोर्थते सोमम् ॥ १२ ॥

वीरप्रानप्रमहे विश्वामित्रकृतो दस्युवधाभ्यर्थनासूक्तपाठः ॥ ३ । ३७ ॥

विश्वामित्रो भोजनादिप्रबन्धाध्यक्षः क्लृप्तस्तेन पानोत्सवस्य ।
अध्यध्यक्षः सोऽभवत् तत्सभायां सम्वेरन्तेऽभ्यर्थनां सोऽध्यवोचत् ॥ १ ॥
३ । ३७ । "वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि ।
इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे ।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामी महे शतक्रतो ।
इन्द्रवृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च ।
इन्द्र साक्ष्वाभि मातिषु ॥ ७ ॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।
इन्द्रसोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो याते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥
अगन्निन्द्रश्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत. ।
ऊलोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि" ॥ ११ ॥

नाभाकः काण्वोऽपिदस्युवधाद्यभ्यर्थनात्स्मुनान (८ । ४० । ६—[illegible])

८।४० "अपिवृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य सम्भृत वस्विन्द्रेण विभजेमहि नभन्ता [illegible] ॥ ६ ॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा. ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम [illegible] ।
नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥

यानु श्वेतावव़ोदिव उच्चरात उपद्युभि ।
इन्द्राग्न्योरनुव्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो [illegible]
[illegible] ॥ ८ ॥

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुतप्रशस्तय [illegible] ।
वस्वो वीरस्यापृचो यानु साधन्त नोधियो [illegible] ॥

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं [illegible] ।
उतोनु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि [illegible] ।
[illegible] ॥ १० ॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो
नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्म्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम्" ॥ १२ ॥

ततो दस्युनिग्रहोपायचिन्तायां कुत्सेनोपायप्रदर्शनम् ।

अथ सुप्रसन्न इन्द्रो दस्यूनामभिजनस्थितिप्रचारादि ।
अपि तद्दमनोपायाद्यध्यवसातुं परामृक्षत् ॥ १ ॥
व्यज्ञपयत्तु स कुत्सो निषधादस्माच्च पूर्वतः सरिताम् ।
पारेऽञ्जस्यादीनां प्रत्यासन्ने 'शिफा' नद्याः ॥ २ ॥
कुयवग्रामं जाने किन्त्वञ्जस्यादयोऽतिदुष्पाराः ।
बलवज्जलसंवेगाः सन्ति पथि प्राणहारिण्यः ॥ ३ ॥
यद्यपि सरित्प्रवाहो हस्तद्विशतीमितोऽस्ति विस्तारे ।
किन्तु तथापि न नौभिर्गन्तुं शक्योऽन्तरश्मभिर्घातात् ॥ ४ ॥
जलवेगप्राबल्याद्दुच्चावचभूमिसञ्चारात् ।
सरितां पारं गन्तुं न बाहुतरणात्समर्थन्ते ॥ ५ ॥
दस्यव एते निपुणा गिरिशिखरप्रोतदोलवर्तन्याः ।
शिक्याभिर्मशकैर्वा यातायातं प्रकुर्वन्ति ॥ ६ ॥
दासातिरिक्तजनता त्वासां पारं समर्थते नेतुम् ।
तत्कृतदोलनिपातादवहन्तो मशकशिक्यानाम् ॥ ७ ॥
दोलाद्यारूढा अपि बहवो नद्यां निपातिता द्वेपात् ।
तस्मात्तेषां ग्रामाः सहसा द्रष्टुं न शक्यन्ते ॥ ८ ॥
मध्ये मार्गं च सन्ति रुन्धानाः ।
तस्मात्तेषां ग्रामा दुरधिगमा दुर्गमाः सन्ति ॥ ९ ॥
आसां ततो नदीनां निस्तारार्थं नियुज्यन्ताम् ।
आहूय राष्ट्रिशूराः आर्यो वनरक्षिणः कुशलाः ॥ १० ॥

दासानां पथि चरतां व्यामोहार्थं नियुञ्ज्यन्नाय ।
कृतदासवेषभूषास्तद्भाषायां च शिक्षिता मन्न ॥ १२ ॥

ततो दस्युनिग्रहार्थं कुत्सप्रदर्शितमार्गाश्रयणम् ।

इत्थं कुत्सादिष्टमार्गं स इन्द्रः सम्यग् मत्त्वा तत्तदेवादिदेश ।
दस्यूनेतान् संनिगृह्य स्वराज्ये भूयोऽप्यार्यान् [illegible] ॥ १ ॥
सिन्धोः पारे नैषधेऽद्रौ स इन्द्रः स्कन्धावारं [illegible] ।
गूढं दस्युस्थानमादौ विचेतु विज्ञान् द्रोण्यां प्रेषयामास [illegible] ॥ २ ॥
काले भूयस्यप्यनिश्चित्य तेषां शैलद्रोणीगह्वर्यान् [illegible]
प्रत्यावृत्तास्ते चरा आयुराजप्रेष्यास्तथाभिज्ञवेगान् [illegible] ॥ ३ ॥
आसीदायुः प्राक् प्रतिष्ठानराजो हैमाद्रि[illegible] ।
ये तद्भृत्याः केऽप्यटव्यां नियुक्तास्ते [illegible] ॥ ४ ॥

आयुराजस्य प्रतिष्ठानं पुराधिष्ठातुः प[illegible] ।

गन्धर्वराजपौत्रो बुधपुत्रो च पुरूरवा राजा ।
तत्पुत्र आयुरासीद् गन्धर्वेश प्रतिष्ठाने ॥ १ ॥
'गौरी' नदीसमीपे मूजवतः पर्वतात्[illegible] ।
गान्धारे प्रागासीदिदं प्रतिष्ठानम[illegible] ॥ २ ॥
अधुना केचिद्ब्रुवते भारतवर्षे[illegible] ।
'भूसी'-'प्रयाग'-सविधे पुरं प्रतिष्ठान[illegible] ॥ ३ ॥
राजा ययातिरवसद् [illegible] ।
तस्य निवासस्थानं विदु 'प्रतिष्ठान' [illegible] ।
अस्मिन् भारतवर्षे सन्ति हि [illegible] ।
वाह्लीक-वैतुलादि-प्रतिष्ठानि [illegible] ।
जाह्नवदेशप्रथिता 'जाह्नवी' नाम [illegible] ।
तस्याः कूले [illegible] ।
[illegible] ।
आयुः पौरवस्तु [illegible] ।

इन्द्रस्तस्मादायुराड्वन्यवर्गोत्तेषां भापावेशभूपादि साम्यम् ।
संपाद्य स्वांस्तत्र वर्गे प्रवेश्य स्थानं तेषामध्यवास्यत् क्रमेण ॥ ८ ॥

अप्रतिरथमहोवाकः ।

अथ तत्र देवसेना मारुत्या सेनया संयुक् सज्जा ।
समराङ्गणेऽवतरितु प्रतीक्षते स्म प्रभोराज्ञाम् ॥ १ ॥
अथ समराय मरुद्भिः संयुजं निषंधात् प्रतिष्ठमानं तम् ।
प्रोत्साहयितुं चैन्द्रोऽप्रतिरथ उपासते स्म ॥ २ ॥
आभिक्रमिकः सुभटः प्रास्थानिकसमयमालक्ष्य ।
राजनियत्याऽभ्यूचेऽप्रतिरथ ऐन्द्रो महोवाकम् ॥ ३ ॥

युद्धयात्रारम्भे राजपुरुषेणाप्रतिरथेनाप्रतिरथसूक्तपाठः ।

१०।१०३ "आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनो ना निमिष एक वीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥
संक्रंदनो ना निमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥
स इषुहस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा सयुध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्राँ अप बाधमानः ।
प्रभञ्जनत्सेनाः प्रमृणो युधाजयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्ररथमातिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाताअनुवीर यद्ध्वमिन्द्रं सखायो अनुसंरभध्वम् ॥ ६ ॥
अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥ ७ ॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम् ।
महामनसा भुवनच्यवानाङ्घोषो देवानाञ्जयतामुदस्थात् ॥ ६ ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वना मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषा ॥ १० ॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ ११ ॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परे हि ।
अभिप्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥"
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषाङ्कञ्चनो च्छिषः ॥ (६ । ७४ । १६)
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवो नाधृष्या यथासथ ॥
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना ।
ताङ्गूहत तमसाऽपव्रतेन यथामीअन्योअन्यन्नजानन् ॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ॥ (६ । ७४ । १७)
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु ।
मर्म्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तत्वानुदेवामदन्तु ॥" (६ । ७४ । १८)

नृमेधपुरुमेधौ बृहद्गानेन देवेन्द्रमभिष्टोतुं देवेन्द्रसहचारिणं प्रधानामात्यमिन्द्र-तनूनपातं मरुद्गणं तावदभ्यर्थयेते ।

८ । ८६ "बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवन् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा" ॥ ३ ॥

अथेन्द्राय तौ बृहद्गानं गायतः ।

अप्रतिरथे प्रयुक्ते मारुत्या सेनयेन्द्रमासक्तम् ॥
उपतस्थाते तु बृहद्गानं गातुं नृमेधपुरुमेधौ ॥ १ ॥

८ । ८६ "अभिप्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ॥
अर्षन्त्वापो जवसा विमातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥
यज्जायथा अपूर्व्यमघवन्वृत्रहत्याय ॥
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उतहस्कृतिः ॥
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥
आमासु पक्व मैरय आसूर्यं रोहयोदिवि ॥
धर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्" ॥ ७ ॥

८ । ६० आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ॥
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशान कृत् ॥
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥
ब्रह्मा त इन्द्रगिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ॥
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र याते अमन्महि ॥ ३ ॥
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्राभूरिन्यृञ्जसे ॥
सत्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाचं रयिमा कृधिः ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्यते ॥
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥
त्वमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधोभागमिवेमहे ॥
महीवकृतिः शरणा त इन्द्र प्रते सुम्ना नो अश्नवन्" ॥ ६ ॥

निषधात् प्रस्थितेनेन्द्रेण आदौ सरयुपरस्थमार्य्यराजद्वयं निहतम् ।

निषधाद्रिगिरेः प्रतस्थे मारुत्या देवसेनया च सह ॥
महतोत्साहेनेन्द्रोऽश्विर्विष्णुयुक् कुत्सयुग् बृहस्पतियुक् ॥ १ ॥

दस्यूनिन्द्रो हन्तुं शैलानेवाभियातुकामोऽपि ।
मध्ये मार्गं प्रथमं दावार्य्यौ प्रतिययौ हन्तुम् ॥ २ ॥
आर्य्याविमौ नरेशावार्य्यकुलध्वंसनोपायान् ।
परिदर्शयतस्तेषां दासानां प्रेमवशभूतौ ॥ ३ ॥
इत्याकर्ण्य स इन्द्रः प्रथमं तावेव धर्षितुं चकमे ।
रुग्भैषज्यात्पूर्वं रुक्प्रभवोत्सादनं श्रेयः ॥ ४ ॥
सरयोः सरितः पारे क्वचिदार्यावर्णचित्ररथौ ।
भूपो वसतः स्मैतौ दाससखौ तद्धितप्रवर्णौ ॥ ५ ॥

सरयुनदीपरिचयः ।

आत्रेयः श्यावश्वः सरयुं सह पठति सिन्धुना क्रुमया ।
क्रुम्वाथगयः प्लातोऽपि सिन्धुनापि च सरस्वत्या ॥ १ ॥
"मावोरसाऽनितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत ।
मावः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तुवः ॥ (५ । ५३ । ६)
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणी ।
देवीरापोमातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत" ॥ (१० । ६४ । ६)
एतेनेयं सरयुः सिन्धुगता काचिदन्तरिक्षेऽस्ति ।
न तु साऽयोध्याप्रान्तस्थिता श्रुता कुत्रचिद्वेदे ॥ २ ॥
तक्षशिलानगरी तलवहना या सिन्धुसंगमना ।
सा सरयुरिति सत्यव्रताख्यसामश्रमी प्राह ॥ ५ ॥
अपरे त्वेतां सरयुं हिन्दुकुशपर्वतप्रभवाम् ।
प्राहुस्तथाहि तस्याः परिचयमित्थं विजानीयात् ॥ ६ ॥
वेदे यक्षुर्योक्ता चक्षुर्जम्वूश्च सा पुराणोक्ता ।
'अक्सस'—इति तां म्लेच्छा आहु 'रमू' इति च तान्नाहु ॥ ७ ॥
तस्या दक्षिणकूले यक्षः पू 'रोक्सियाना' न्या ।
तद्देशस्था उक्ता यक्षव इति वेदमन्त्रे प्राक् ॥ ३ ॥
एतानेव तु पश्चान्म्लेच्छा विदु 'रोक्सियानी' ति ।
यक्षव आर्य्या आसन् पश्चान्म्लेच्छा बभूवुस्ते ॥ ४ ॥

यक्षुप उदक् तु शिम्रुर्नदी 'सुगद' उच्यते म्लेच्छैः ।
यक्षुपि सैति च सुगदप्रान्तोऽयं 'सुगदियाना' ख्या ॥ ५ ॥
सुगदनदी यद्गिरितः प्रवहति 'सुगदी' स पर्वतः कथितः ।
तद्गिरिशिखरे स ऋषिर्मार्कण्डेयः पुरायुगे न्यवसत् ॥ ६ ॥
अथ 'हिन्दुकुश'—'सुगदानिया' न्तरे यक्षुपोऽवाच्यांम् ।
प्रान्तोऽस्ति वक्ट्रियाना हिन्दूकुशजा नदीह 'दगिदुसा' ॥ ७ ॥
वाह्लीक एव 'वक्ट्रा' नाम्नाख्यातः पुरा म्लेच्छैः ।
स च वाह्लीकप्रान्तस्तैरुक्तो 'वक्ट्रिया' नाम्ना ॥ ८ ॥
शैलद्वयान्तराले प्रवहन्त्युत्तरमुखी तु 'दगिदुसा' ।
तृत्सुः सा तत्प्रान्ते 'जरियस्या' सैव 'वक्ट्रा' पूः ॥ ९ ॥
प्रान्तोऽस्ति 'मार्गियाना' पश्चिमतो 'वक्ट्रिया' प्रान्तात् ।
तत्र च हिन्दूकुशजा 'मरग्यु सो' दङ्मुखी नदी वहति ॥ १० ॥
४—योऽर्वाक् तु मार्गियानाप्रान्ताद् हिन्दूकुशोऽस्य दक्षिणतः ।
उद्भूय पश्चिमां प्रागथोत्तरामनु तु या नदी वहति ॥ ११ ॥
प्राक्सीम्नि 'हर्रसियाना' प्रान्तस्यौ 'च्छुस' नदीन्तु याऽन्वेति ।
या च 'सरीफी' पर्वतपश्चिमपार्श्वानुगोत्तरां याति ॥ १२ ॥
'अरियुस' नदी तु सोक्ता सरयुः स्यात् सा नदी वेदे ।
दक्षिणतोऽस्याः प्रान्तः प्रथते वा एरियानेति ॥ १३ ॥
प्रागेतदेरियानाप्रान्तात् प्रत्यक्तटे सुलेमानात् ।
प्रान्तो य इण्डियाख्यस्तत्र वसन्तिस्म भारातीयाः प्राक् ॥ १४ ॥
फरहनदी निर्गमने पारस्यानां तु 'पर्सिया'-नगरी ।
तस्या उत्तरतः सा सरयुर्या 'मरियुस' माह ॥ १५ ॥

अर्णचित्ररथयोः स्वजातिविद्वेषो वधे हेतुः ।

तस्याः सरयाः परितस्तावार्य्यावर्णचित्ररथौ ।
कुत्साद्यार्यगृहाणां परिस्थितिं दस्युषु स्म सूचयतः ॥ १ ॥
तस्मादार्य्यावेव तु समूलघातं जघान स प्रथमम् ।
इति वामदेव ऊचे तुर्यस्य त्रिंशके सूक्ते ॥ २ ॥

"उतत्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णाचित्ररथावधीः ॥ (४ । ३० । १८)

सरस्वतीप्रान्तवासिचित्रराजापेक्षया सरयुप्रान्तवासिनश्चित्ररथस्य भिन्नत्वम् ।

यं सोभिरस्तु काण्वो दातारं भूरि तुष्टाव ।
सोऽन्यश्चित्रो राजा सरस्वती तटवसन्नृपप्रवरः ॥ १ ॥
"चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुतादृदत् ॥ २ ॥
इन्द्रो वाघेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगाददिर्वसु ।
त्वं वा चित्रदाशुषे" ॥ ३ ॥ (८ । २१ । १७ । १०)

अर्णचित्ररथयोर्गन्धर्वत्वम् ।

अर्णश्चित्ररथो वा मन्ये स्यातामिमौ तु गन्धर्वौ ।
मन्ये तद्वधमेव त्वकीर्तयत्कुरुसुतिः काण्वः ॥ १ ॥
"अभि गन्धर्वमतृणद् बुध्नेषु रजः स्वा ।
इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे" ॥ २ ॥ (८ । ७७ । ५)

ततः सप्तदस्युराजराष्ट्राभिक्रमणम् ।

अज्ञस्याद्या दुस्तरा आपगाया आसंस्तासां पारमासाद्य कष्टान् ।
दस्युग्रामान् वीर आक्रम्य हत्वा कांश्चित् कांश्चिज्जीवतोऽपि न्यगृह्णान् ॥ १ ॥
सप्तभ्योऽशत्रुभ्यः शत्रुरभूदिन्द्र एष यानवधीत् ।
कुयवं शुष्णं शंवरमहिवंगृदरौहिणान् कृष्णम् ॥ २ ॥
एषां भुवनान्यासन् सप्तानां सप्तभिन्नतन्त्राणि ।
गणनागासुरभेदादेते सङ्कीर्णजातिका दासाः ॥ ३ ॥
अहिरत्र नाग आसीदसुरा कृष्णश्च रौहिणो नमुचिः ।
अपरेऽपगणा वृत्त्या दस्यव एतेऽसुरानगा अभवन् ॥ ४ ॥

पर्वतयात्रायां रासभरथादयः परिग्रहाः ।

रासभरथेन चेन्द्रो दस्युविदासाय पर्वतप्रान्ते ।
अचरद् विष्णुसहायः स बृहस्पतिरन्वितोऽग्निमान् ॥ १ ॥

हरयः पृष्ठानुचरा दश तु शतानीन्द्रमेतमनुचेरुः ।
मारुत्या सेनया भागत्रयमत्र सह भेजे ॥ २ ॥
हरिभिः सहस्रसंख्यैर्हरियानुक्तः सहस्राक्षः ।
स मरुद्भिस्तु मरुत्वान् न विना हरिभिर्मरुद्भिः सः ॥ ३ ॥
द्वौ तु हरी इन्द्राश्वौ खे भुवि चाभ्यामयं चरति ।
याति गिरीणां विषमं शृङ्गाच्छृङ्गान्तरं ताभ्याम् ॥ ४ ॥

रौहिणासुरनिपातः ।

दस्युकुलध्वंसायाभिक्रममाणं निम्य देवेन्द्रम् ।
स्वर्गं रिक्तं मत्वा तं जेतुं रौहिणश्चक्रमे ॥ १ ॥
तं द्यामारोहन्तं सत्वरमाक्रम्य रौहिणं परितः ।
निजघान वज्रहस्तो देवेन्द्रः कम्पयन् दासान् ॥ २ ॥

अहिनिर्यातनम् ।

आसन् केचित् पर्वतास्तत्र दस्युग्रामो वासाऽध्वादि निर्गूहतेऽलम् ।
तेषामन्तः क्वापि शैलस्य गर्भे दासग्रन्थोऽहिर्नागवंशोऽध्यवात्सीत् ॥ १ ॥
अहिरयमसुरः कुयवप्रभृतीनां दासमुख्यानाम् ।
साहाय्येन कदाचित् सिन्धोः स्रोतोनिरोधनं चक्रे ॥ २ ॥
सिन्धोः सप्तस्रोतांस्यन्यान्यग्रावगह्वरोद्भेदात् ।
तेषां यमदिग्वाहीन्ययनान्युपरोधयाञ्चक्रे ॥ ३ ॥
शैलद्रोण्यामद्रिद्वययोगेन पथि संकीर्णे ।
स्थूलोपलैः प्रपातैः प्रचितैः स्रोतांसि रुद्धानि ॥ ४ ॥
गिरिकूलगह्वरभागाः सर्वेऽप्यभवन् पयोभिराकीर्णाः ।
ओघः समुद्रवद्भूद्दुर्गैः कूटैरितस्ततः प्रचितः ॥ ५ ॥
वक्षण्यो याः सरितामद्रीणां याश्च वंक्षणा आसन् ।
तत्रापां बिलमखिलं प्रस्तरखण्डैर्निरोधयामासुः ॥ ६ ॥
स्रोतःसु त्ववरोधे रक्षार्थं दासपत्न्योऽन्याः ।
आसंस्तत्र नियुक्ता निरीक्षका यामिका बहवः ॥ ७ ॥

तत्र च पयःप्रसारेऽन्तरीपदेशे विशालशैलस्य ।
अधरशिलाविस्फोटात् तिर्य्यग्विवरं चकार दूरतरम् ॥ ८ ॥
जलमयमन्तर्विवरं प्लवगम्यं तत्परं तमसा ।
छन्नं वर्त्म ततस्तद्विशति गिरेरुदरमत्यजिरम् ॥ ९ ॥
तत्र च विविधाः शाला राजगृहाण्यपि गृहाणि भृत्यानाम् ।
दृषदुत्किरणात् सिद्धान्यत्र च भाः शिखरविवरेभ्यः ॥ १० ॥
इत्थं पर्वतगर्भे दृषदुद्धरणान्महाजिरे जाते ।
सिद्धेष्वनेकसदनेष्वहिरण्यमशेत संवृतोऽम्भोभिः ॥ ११ ॥
अम्भसि पर्वतगर्भे तमसाक्रान्ते विलेशयः सोऽहिः
लोकान् दृष्ट्वा दृष्ट्वा गिरिकुहरेऽह्नोष्ट दुष्ट आत्मानम् ॥ १२ ॥
"समुद्रे अन्तः शयत उन्द्नावज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम्" ॥ (८ । १०० । ९)
इन्द्रस्तेषां पर्वतानां च पक्षांश्छित्वाऽऽक्रम्योद्बोधयामास शुष्णम् ।
अत्युग्राहिं तं जघानाद्रिभेदात्तस्मादापोऽगुः समुद्रं सरस्तः ॥ १३ ॥
शैलद्रोण्यां वरुणाख्या अपां ये बन्धा आसन् दासपत्नीप्रगुप्ताः ।
ते च ध्वस्ताः शैलपक्षावभेदादापः सर्वाः सप्तसिन्धुष्वगुस्ताः ॥ १४ ॥
सगरो नामस्थानं तदन्तरिक्षं यतो मूलात् ।
सिन्धोः सप्तस्रोतास्युन्मोच्यावाहयत् सिन्धौ ॥ १५ ॥
तत्र प्रान्ते पर्वतश्रेणिबन्धे संरुद्धानां तद्वपां भूयसीनाम् ।
शैलोद्भेदात् स्रोतसाऽभूद् 'वितस्ता' भूमिप्रान्ते सिन्धुधारा प्रमाण ॥ १६ ॥
तत्रैकहेलयाऽपामोघविसारे पुराऽवरुद्धानाम् ।
कासां मूलं मध्यं वाऽन्तो वेत्यवगमे जना मुमुहुः ॥ १७ ॥

३—शंबरहत्यम् ।

प्रस्तोकाख्यः सृञ्जयपुत्रः कथितो दिवोदासः ।
'अतिथिग्व'श्च स एवाश्वथ उक्तो गर्गयजमानः ॥ १ ॥
'अतिथिग्वं तु 'कशोजुवं' मपीडयच्छंबरो दिवोदासम् ॥
अश्विभ्यां मयमिन्द्रस्तमरक्षच्छंबरं हत्वा ॥ २ ॥

अतिथिग्वशत्रुशंवरनिग्रहणायेन्द्र आदिशत् पूर्वम् ।
तद्भयतो गिरिगह्वरतमसि पयः संवृतः सोऽस्थात् ॥ ३ ॥
अत्युच्चपर्वतोपरि गृहमासीत् किञ्चिदस्यान्तः ॥
अवरोहणसोपानेऽभूदवतरितं तु कंदरद्वारम् ॥ ४ ॥
उत्कीर्णाश्मकृताजिरमासीदुदरं गिरेस्तत्र ॥
अन्तर्विविधाः शाला आसन् वर्त्मानि चत्वराणि सर ॥ ५ ॥
आरुह्यादौ शिखरं गृहान्तरद्वारमासाद्य ।
अवरोहणसोपानेनावतरन् विशति गह्वरायतने ॥ ६ ॥
इत्थं सोतिनिगूढं सुरक्षितं दुर्गमाश्रित्य ।
इन्द्रनियुक्तैश्चारैरलक्षितः शम्बरोऽजीवत् ॥ ७ ॥
चत्वारिंशद्वर्षाण्यात्मानं निन्हुवानः सः ।
शुष्णनिवर्होभिक्रमकालेऽकस्मादयं ददृशे ॥ ८ ॥
पर्वतशिखरस्योपरि शंवर एत्य स्थितो रिपुं द्रष्टुम् ।
शृङ्गान्निपात्य भूमौ तमश्विनौ जघ्नतुः क्रूरम् ॥ ९ ॥
"याभिर्महातिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंवरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरूपुरूतिभिरश्विना गतम्" (१ । ११२ । १४)
शतमश्ममय्य आसन् शम्बरपुर्य्यो दृढाऽऽसु या मुख्या ।
आयस्येका शंवरदस्योः सा राजधान्यासीत् ॥ १० ॥
नवनवतिर्य्याः पुर्य्यस्तासामीशाश्च नवनवतिः ।
बाहव इव ते चासन् वंशवदाः शंवरस्यास्य ॥ ११ ॥
निर्हत्यशंवरं प्रागतिथिग्वायाददात्पुरीं मुख्याम् ।
नवनवतिं तु पुरिस्ताः सर्वा विध्वंसयामास ॥ १२ ॥
मध्ये मध्ये श्रान्तः स्थगितः समरे बभूव यर्हीन्द्रः ।
तर्हि भरद्वाजः सहकाले तत्रार्पयत्सोमम् ॥ १३ ॥

"यस्यत्यच्छम्वरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोमः इन्द्र ते सुतः पिव ॥" (६ । ४३ । १)
"यात्सानो सानुमारुहद् भूर्य्यस्पष्टकर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णि रेजति (१ । १० । २) मधुच्छन्दाः ।

शंवरपुरी विभेदनकर्म्मणि राजा तु यो नियुक्तोऽभूत् ।
त्रसदस्युन्तं दासैः प्रहण्यमानं ररक्षतुर्दक्षौ ॥ १४ ॥
'वर्ची' शंवरसेनापतिरसुरस्तस्य वीरान् स ।
इन्द्रो विष्णुसहायः शतं सहस्रं न्यवधीत् ॥ १५ ॥
"सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टा. ॥"(६ । १०० । १२)
शंवरहत्ये नवति नव च पुरीरासुरीस्तु यद् व्यधमत् ।
यद्वा शतं सहस्रं वीरान् भूमौ न्यपातयत्साकम् ॥ १६ ॥
पर्वतभेदाच्चक्रे मार्गं सेनाभियानाय ।
कतिपयपर्वतपक्षानशातयत् सप्तसिन्धुषु यन् ॥ १७ ॥
स्रोतांसि दासरुद्धान्यचारयत्सागरं यावन् ।
महदिदमैन्द्रं वीर्य्यं प्रभाव उग्रोऽकृत कर्म्म ॥ १८ ॥
"पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुत ॥" जेता [illegible] (१ । ११ । ४)
इन्द्रो मानुष आसीदमानुषं कर्म्म यच्चक्रे ।
तत्सर्वं व्याचष्टे गृत्समदो वज्रिणं स्तुत्वा ॥ १९ ॥
अहिशंवरयोर्युद्धे पर्वतपक्षावभेदनादिन्द्रः ।
लेभे गोत्रभिदाख्यां पुरन्दराख्या तु पुरशतोद्भेदान् ॥ २० ॥
यच्छंवरसमकालो राजाऽऽसीद् भारते दिवोदासः ।
तदतो दस्युनियुद्धात्प्रागपि सभ्यस्थितिं विजानेऽत्र ॥ २१ ॥

४—कृष्णासुरत्वगुत्कर्तनम् ।

अंशुमती तु नदी या तस्यास्तीरेऽसुरस्तु कृष्णाख्य ।
अयुतानुचरोपेतस्तत्प्रान्ते नृन् प्रपीडयन्नासीत् ॥ १ ॥
पश्चिमतो दक्षिणतश्चोत्तरतस्तं बृहस्पतिर्न्यरुणत् ।
इन्द्रः पूर्वत इत्वा मध्ये सन्तं तमाहनन् ॥ २ ॥
सर्वोऽजय्यात्माभिमानेन दासस्तु [illegible]
अभ्यायान्तं वीरमिन्द्रं प्रशंसन् हान्ये [illegible] ॥ ३ ॥

स्तुतिमुखनिन्दां कुर्वन् राज्ञः पत्युः स्फुटं ब्रुवन् दोषान् ।
सन्धि चेच्छन् रत्नं चार्थयते योद्धुमाह्वयति ॥ ४ ॥

१० । ४२ "अस्तेव सुप्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्रभरास्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो निरामयजरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्रबोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुनान्युष्टमाच्यावय मघदेवाय शूरम् ॥ २ ॥
किमङ्गत्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि माशिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्रवसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना मम सत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना विह्वयन्ते समीके ।
अत्रायुजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टिशूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्यन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्सुतकान्प्रातरह्नो निस्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रून्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६ ॥
आराच्छत्रुमुपबाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्रयमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवानियं सन्नि सुन्वते वहति भूरिवामम् ॥ ८ ॥
उत प्रहामति दीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेनाजयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥ (१० । ४२)

१० । ४३ "अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगपवेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्मा निषदोऽधिबर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥ ५ ॥
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥
आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥
वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु" ॥ ११ ॥

१० । ४४ "आयात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैवते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरीरज्रा रेजमानाँ अधारयद्द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचिने धिषणे विष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येना रुजासि, मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सुते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु" ॥ ११ ॥

५—वङ्गृदादि दस्युग्रामाणां निर्मूलनम् ।

पौरुरवसस्यायोः शत्रुं वेशं तु नम्रतामनयत् ।
षड्गृभिरन्धयत् तं यः सव्यायार्दयत्पूर्वम् ॥ १ ॥

स्मदिभं तुग्रं कुत्सद्विषं श्रुतर्वद्विषं न्यहन् मृगयुम् ।
अश्मं चार्बुदमुरणं वल इभीकं रुधिक्रां च ॥ २ ॥

सुश्रवसः पुनराय्यस्यासन् विद्रोहिणो दासाः ।
वङ्गृदकरञ्जपर्णमुख्याः क्रूराश्च निःर्षपिनः ॥ ३ ॥

वङ्गृद एष ऋजिश्च द्वेषी, पर्णयकरञ्जौ तु ।
अप्यर्बुदोऽतिथिग्वस्यायोर्वेशः सपत्नोऽभूत् ॥ ४ ॥

शंबरवदस्य वङ्गृदनाम्नो दस्योः शतं पुर्यः ।
आसंस्ता अपि सर्वा मरुतो विध्वंसयामासुः ॥ ५ ॥

वङ्गृदकप्रमुखानामभिमर्दे निर्हता दासाः ।
षष्टिसहस्राणीति प्रोचे सव्यर्षिपक्षाशे ॥ ६ ॥ (सू० ५३)

६—शुष्णस्य निगडबन्धनम् ।

यो वा शुष्ण. सर्वतः पूर्वमागात्सूर्य्यस्थानं तत्र पुत्रीं दिवो च. ।
धृष्टोऽबध्नात् प्रेमपाशेऽथ तस्यै यातायातं भूयसा योऽत्र चक्रे ॥ १ ॥
सर्वाशान्तेर्हेतुरासीत् स तस्माज्जीवन्तं त तर्जयामास दस्युं ।
दाम्नाबध्नाचाऽऽयसेन प्रगाढं कारागारे चाऽऽयसे तं न्यगृह्णान् ॥ २ ॥

७—कुत्सकुत्रीयम् ।

सूर्यस्याधिष्ठाने शुष्णस्य निगडबन्धनं श्रुत्वा ।
कुयवः सहस्रसुभटैराक्रामीच्छुष्णतुमुद्धर्तुम् ॥ १ ॥
कुयवाक्रमणं रोद्धुं कुत्स. प्रतिचक्रमे सुभटै. ।
कुयवप्रबलाक्रमणात् कुत्सो विजितः पराभवं चापन ॥ २ ॥
विद्वान् प्रतूर्णिरिन्द्रः सहसाऽकस्मादुपस्थाय ।
कुयवाक्रमणात् कुत्सं परितत्रेऽन्यांश्च तत्रार्य्यान् ॥ ३ ॥
आक्रममाणं कुयवं प्रत्याक्रम्येन्द्र एष आहत्य ।
भूमौ निपात्य तरसा तस्य शिरश्छेदयामास ॥ ४ ॥
उन्नताधरधराधरस्थली स्यन्दनादिव शिफाप्रपातनिर्झरे ।
कृत्रिमोत्समुखसंपतत्पयः क्षीरवद्भवति शुभ्रमुज्ज्वलम् ॥ ५ ॥
क्षीरवद्धवलधारया तया कौतुकान् कुयव एव नित्यशः ।
स्नापयत्युदकमध्यगः स्वयं स्वे स्त्रियौ जलविहारहर्षित ॥ ६ ॥
स्त्रैण एष कुयवः स्वभार्य्ययो प्रेमपाशहृतचित्तमो हन ।
दासराजवधजातविस्मया दस्यवो व्यपगता हतन्नत. ॥ ७ ॥
लुब्धदासकुलमाकलय्य ते योषितौ च कुयवस्य तत्क्षणात् ।
स्वामिनं तमनुगन्तुमुद्यते योद्धुमेत्य निहते बभूवतु ॥ ८ ॥
निहते तु दस्युराजे कुयवे शुष्णे च संयते चापि ।
सर्वेऽपि कान्दिशीकाः शेषा भेजुर्दिशो दासा ॥ ९ ॥

८—पञ्चाशत्सहस्रदस्युनिग्रहणम् ।

समापीत्थं दासराजान् हिमाद्रेर्[illegible] ।
हत्वा चैषां सैनिकानां सहस्रा [illegible] ।

इन्द्रः पञ्चाशत्सहस्राणि तेषां नीत्वा प्राधाच्चायुराट् पारवश्ये ।
सम्यक् तेषां सभ्यताशिक्षणार्थं सोऽनेनाभूदायुराजो नियुक्तः ॥ २ ॥
इत्थं प्राप्तो निग्रहं दस्युसंघः प्रत्यष्ठोपि प्राक् प्रतिष्ठानराष्ट्रे ।
सोऽयं सभ्यः शिक्षितो वीरयोद्धा प्रातिष्ठानोऽभूत्प्रसिद्धः पुरात्वे ॥ ३ ॥
ये चेदानीं म्लेच्छवर्गे पठाना इत्याख्याता आयुराट्-शिक्षितास्ते ।
प्रातिष्ठानाः क्षत्रियत्वे पुराऽऽसन् पश्चान्म्लेच्छैर्म्लेच्छतां प्रापितास्ते ॥ ४ ॥
पूर्वे म्लेच्छा आहुरेके 'पतान'स्यापभ्रंशात्तं पठानेति शब्दम् ।
किन्त्वेकस्यासीत्पतानत्वमिष्टं नैते सर्वे तस्य वंशे प्रसूताः ॥ ५ ॥

अपहृतराजेभ्यः कुत्सादिभ्यः पुनरिन्द्रकर्तृकं प्राग्वद् स्वस्वविभागदानम् ।

यद्यत् क्षेत्रं यद्धयपां स्रोत आसीदन्नानां वा स्तूपमासीत्तृणानाम् ।
द युक्तिश्चं सूर्य्यधामापि तत्तत् प्राग् यस्यासीत्तस्य तत्तस्ससान ॥ १ ॥
इत्थं निगृह्य दस्यूनिन्द्रो राज्ञां स्वकं धनं प्राग्वत् ॥
कुत्सादिभ्यो विभजन् व्यभजत्सूर्य्यं च तद्वदेवैभ्यः ॥ २ ॥
भूमेर्जलाशयानां सूर्यस्य च दस्युभिर्गृहीतानाम् ॥
तेभ्यो विभागदानं यद्भूद् वर्षागिरास्तदेवाहुः ॥ ३ ॥

"एतत् त्यत् त इन्द्रं वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राधः ॥
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीष. सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥
दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिवी शर्वा निवर्हीत् ॥
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्येभिः सनत्सूर्य्यं सनदपः सुवज्रः ॥
समन्युमीः समदनस्य कर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्य्यं सनत् ॥
अस्मिन्नहन् सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती" ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञान-
शास्त्रसंबन्धिनो विज्ञानेतिवृत्तवादस्य
द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयार्य्यो-
पाख्याने दस्युसंहाराख्य-
श्चतुर्थः प्रसङ्गः
संपूर्णः ॥ ४ ॥

अथेन्द्रविजयाभिनन्दनं पञ्चमः प्रक्रमः प्रारभ्यते ।

(१)—विज्ञानशालायां भारतीयार्य्यैः कृतः कृतज्ञतासूचको विजयमहोत्सवः ।

सारस्वते सूर्य्यसदने विजयाभिनन्दनमहोत्सवः प्रमहाख्य. ।

दस्यूनां निग्रहणादार्य्याणां च स्वराज्यसंप्राप्तेः ॥
सुस्थेऽत्र सर्वलोके स्वर्गायेन्द्रः स गन्तुमभ्यैच्छत् ॥ १ ॥

आर्य्याणामधिवक्तुर्देवेन्द्रस्याद्य संमानम् ॥
कर्तुं स कुत्स ऐच्छज्जनतास्तत्राभ्यमन्त्रयत प्रमहे ॥ २ ॥

निषधगिरिस्थस्कन्धावारे शिविरेऽभवत् मह प्रथमम् ॥
अद्य तु सूर्यस्थाने सोमाभिषवोत्सव पुनर्व्यतनोत् ॥ ३ ॥

सूर्यस्याथ सदने प्रमहो विजयाभिनन्दनीयो च ॥
तत्रेन्द्रमस्तुवन्निति विश्वामित्रश्च वसि [illegible] ॥ ४ ॥

"युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्य [illegible]
विवस्वत सदने अस्य तानि विप्रा [illegible]" । [illegible]

"न्यूषु वाचं प्रमहे भरामहे गिर इन्द्राय [illegible]
नू चिद्धि रत्न ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु [illegible]"

([illegible] । १।४। [illegible])

उपकर्तृ कृतोपकृति कीर्तयितुं यो [illegible] ॥
उत्तरमहस्तदुक्त तत्र च पानागने [illegible] ॥ ५ ॥

बहुभिः सयुङ् नृपान् [illegible]
प्रमहे चक्रे हर्षान् तस्मिन् [illegible] ॥ ६ ॥

वीरपानप्रमहाध्यक्षो विश्वामित्रो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रमभिनन्दयामास ।

३ । ३२ "इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ॥
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ॥
शयानमिन्द्र चरतावधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तु विजात तव्यान् ॥
न ते महित्वमनुभूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

यज्ञो हित इन्द्र वर्धनोभूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत्" ॥ १२ ॥

३ । ३४ 'मखस्यते तविषस्य प्रजूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

महो महानि प्रनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्स पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

ससानात्याँ उत स सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ६ ॥

इन्द्र ओषधीरसनो दहानि वनस्पतीं रसनोदन्तरिक्षम् ।
विभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभि क्रतूनाम्" ॥ १० ॥

"सखा ह यत्र स खिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्त्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्" ॥ (३।३६।५)

अथ शान्तिकवीरपानानन्तरं प्रमहप्रमुखेन कुत्सेन कृतमिन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्तम् ।

१।१०१ "प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना य शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुष न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावा पृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धव. सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशीय आरित कर्मणि कर्मणि स्थिर ।
वीलोश्चिदिन्द्रोयो असुवन्तो वधो मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
य सूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्योधावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभिसंदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथुज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद्वा मरुत. परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आयाह्यध्वरं नो अच्छात्वाया हविश्चकृमा सत्यराध ॥ ८ ॥
त्वायेन्द्र सोम सुषुमा सुदक्ष त्वा या हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्व. स गणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आत्वा सुशिप्र हरियो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धु पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥
१।१०२ "इमां ते धियं प्रभरेमहो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः स स बिभ्रति द्यावा क्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥
तं स्मा रथं मघवन् प्रावसात ये जत्र न ते [illegible] ।
आजान इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो [illegible] ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिव सुगं कृधि प्र [illegible] ॥ ४ ॥

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः
अस्माकं स्मा रथमातिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमिर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा शत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः" ॥ ११ ॥

१।१०३ "तत इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
आहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उप प्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्विपुरः शंबरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः" ॥ ८ ॥

१।१०४ "योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारितमा निषीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसाया श्वान्दोषावस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नूं चित्तान्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्यश्चम्नन्ते न आवक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अवत्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफाया ॥ ३ ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अंजसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रतियत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छासदनं जानती गात्।
अधस्ममानो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परादाः ॥ ५ ॥
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मानो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मानो वधीरिन्द्रमा परादा मान प्रिया भोजनानि प्रमोषीः।
आण्डा मानो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा न पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ८ ॥
अर्वाङेहि सोमकाम त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आवृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः" ॥ ९ ॥

इन्द्रविजयाभिनन्दनसूक्ते वार्षागिराणां [illegible]

ऋज्राश्वाद्याः पञ्च वार्षागिराख्या राजानः [illegible]
दस्युध्वंसेऽस्युग्रमैंद्रं चरित्रं सम्प्रयुज्याऽऽत्मानं [illegible] ॥ १ ॥
पञ्चदशाब्दं न्यास्थन् संस्थितिं स्वं [illegible] पुरा।
चतस्रावन्ते कौत्सात् संस्थितिम् [illegible] ॥ २ ॥
संरक्षकतामेते याचन्ते तेन [illegible]।
अभ्युपगम्यात्मानं [illegible] ॥ ३ ॥

वार्षागिराणामात्मसमर्पणम् ।

इन्द्रविजयाभिनन्दने वार्षागिराणां कुत्ससहयोगेनात्मसमर्पणं सूक्तम् ।

११।१०० "स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥
दिवो न यस्य रेतसोदुघाना पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
स नीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ॥
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥
स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ॥
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ॥
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ॥
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वत. सीम् ॥
स परिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापु. ॥
स प्ररिका त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ॥
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभिगृणन्ति राध ॥
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥
दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा निबर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभि. श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्र ॥ १८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः " ॥ १९ ॥

इतः परं कुत्सवदन्येषामप्यार्याणां यत्र प्रमहे धन्यवादरूपाः उद्गाराः ।

कुत्स वदन्येषामप्यार्य्याणामूतिरिन्द्रेण ।
काले काले बहुधा कृतेति तेऽप्यानमन् प्रमहे ॥ १ ॥
किन्त्वेषामखिलानां ये यावन्त. प्रतिष्ठिता प्रवराः ।
आसन् त एव सूक्तान्यवेदयितुं नियोजिता अभवन् ॥ २ ॥
तत्र हिरण्यस्तूपः-सव्यभरद्वाजवामदेवाश्च ।
अपि दुर्मित्रः कौत्सो बृहदुक्थो वामदेव्यश्च ॥ ३ ॥
वत्सश्रुष्टिगुमेध्यागर्गसुहोत्रौ च शुनहोत्र ।
गौतमनोधः कक्षीवन्तस्तद्वत् परुच्छेप ॥ ४ ॥
गृत्समदोऽथावस्युर्वभ्रुर्गातुस्तथाऽगस्त्यः ।
विश्वामित्रो विमद संवरणो,या प्रजापते पुत्र ॥ ५ ॥
अपि च वसिष्ठो वसुकृद् वालुन्नो गौरिवीतिश्च ।
अष्टादंष्ट्रोऽन्योऽन्य शतप्रभेदन [illegible] ॥ ६ ॥
वैखानसस्तु वभ्रो मरुन् निरस्यौर्[illegible] वा ।
एषां पश्चादिन्द्र [illegible] ॥ ७ ॥

इत्थं तत्र सभायामार्य्यनृपाः सप्तगोत्रजा ऋषयः ।
असुरा मरुतो देवाः सर्वे भक्त्या सभाजयामासुः ॥ ८ ॥
एते तत्र तदानीं घटान् सहस्राणि सोमानाम् ।
गाश्चोपायनविधया सर्वस्वं च न्यवेदयन्तास्मै ॥ ९ ॥
विनिमयनव्यवहाराङ्गस्यार्थं राजशासनात् सिद्धम् ।
अद्य यथा पश्यामस्ताम्रपणं रौप्यकं स्वर्णम् ॥ १० ॥
एवं देवयुगे प्राग् 'गो' नाम विनिमयद्रव्यम् ।
गौर्वा तत्र हिरण्यं वाऽन्यद् वेत्येवमनुभाव्यम् ॥ ११ ॥
अद्ये व पूर्वकाले क्रयविक्रयवत् प्रभूपहारेऽपि ।
विनिमयनीयद्रव्याण्यावेद्यन्ते स्म ता गावः ॥ १२ ॥
कवयोऽमी खलु तस्मै चक्रु विजयाभिनन्दनं हर्षात् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं चन्गुणकीर्तनं तस्य ॥ १३ ॥
यद्वत् कुत्सस्तद्वदन्येऽपि भूपाः काले काले स्वस्वरक्षोपलक्षे ।
आहूयेन्द्रं सोमयज्ञोत्सवेऽस्मै सोमं सुत्वाऽवेदयन् भक्तिसूक्तम् ॥ १४ ॥
यद्वत् कुत्सोऽयं स्वसूक्ते परेषां राज्ञामिन्द्राद्रक्षणं विब्रवीति ।
अन्येप्येवं कुत्सरक्षां ब्रुवाणा दस्योर्युद्धं चक्षते स्वस्वकाव्ये ॥ १५ ॥
यद्यत्पूर्वं यच्च दस्युप्रबाधे कर्मार्याणामिन्द्र ऊत्या अकार्षीत् ।
सर्वं तत्तद्वर्णयामासुरार्याः स्मारं स्मारं सख्यमुख्याः स्वसूक्ते ॥ १६ ॥
बार्हस्पत्या गाव आसन् कदाचिद् दुष्टैश्चोरैर्दस्युभिर्लुण्ठिताः प्राक् ।
तच्च श्रुत्वा देवराजः सवीरो दस्यून् हत्वा प्रापयद् ब्रह्मणे ताः ॥ १७ ॥
एवं ये ये चोपकाराः कृताः प्राग् देवेन्द्रेणानेन तानत्र सर्वान् ।
स्मारं स्मारं कीर्तयन्तः स्वकाव्यैरार्य्याः प्रोचुः स्वं कृतज्ञत्वमस्मै ॥ १८ ॥
दस्योर्युद्धादल्पकालेन पूर्वं भूयोऽप्यासंश्चोरिता गाव एताः ।
तासां भूयोन्वेषितानामलाभात्केचिद्देवा विह्वलास्तत्र चासन् ॥ १९ ॥
दस्युग्रामध्वंसनादिन्द्रवीर्य्यं प्राशस्त्यार्थेऽस्त्युत्सवेऽस्मिन् प्रवृत्ते ।
गोरक्षार्थं दैवतैः प्रार्थनापि स्तुत्यैवोपस्थापिताऽस्मै तदानीम् ॥ २० ॥
तेषां काव्ये दस्युयुद्धप्रसङ्गो दृष्टो यावानुल्बणो यत्र वाक्ये ।
तावद्वाक्यं दर्श्यते संगृहीतं सर्वं सूक्तं तावतैवोपलक्ष्यम् ॥ २१ ॥

तत्र तावद्धिरण्यस्तूपो नामाङ्गिरसो ब्रह्मर्षिरार्ष्यपन्थाय देवेन्द्रायाभिनन्दयितुं [illegible]।

आङ्गिरसोऽयं विद्याविशेषतः प्रीणयन्निन्द्रम्।
स हिरण्यस्तूपत्वं लेभे चेन्द्रेण शाश्वत सख्यम् ॥ १ ॥
महती पुरा प्रतिष्ठाऽसीदिन्द्रेण सख्यतास्तिर्या।
लब्ध्वा हेम्नः स्तोमं स हिरण्यस्तूप इत्यभून् प्रथित ॥ २ ॥
स इदानीमिह कुत्सप्रमहे संमन्त्रित समागम्य।
अनुकुत्सं भगवन्तं देवेन्द्रं तमभिनन्दयामास ॥ ३ ॥

हिरण्यस्तूपः।

१।३२ "इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेनाविवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥ ५ ॥
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

अतिष्ठन्ती नाम निवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य नरायं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
दासपत्नीरहि गोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीवृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्रसृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूरसोममवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून् ॥ १२ ॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनि च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा विजिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्नेमिः परि ता बभूव" ॥ १५ ॥

१ । ३३ "एतायामोपगव्यन्त इन्द्रमस्माकं सुप्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केत परमावर्जते नः ॥ १ ॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीं रसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधिप्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधिविषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
पराचिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्रसुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वत सीम् ।
अमन्यमानाँ अभिमन्यमानैर्निर्ब्रह्माभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥
अनुस्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धतमध्या आनाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मना हन्नभिद्यून् ॥ ११ ॥
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृलहा विशृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभिसिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणापुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्रस्वां मतिमतिरच्छाशदान ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

सव्यः ४ ।

सव्यो नामाङ्गिरसो राजर्षिगर्योपकारिणे स्वराजे कृत[illegible] ।

पुत्रो मे स्यादिन्द्रतुल्यो मनीषीन्येवं [illegible] ।
तस्मात्पुत्रः सोऽयमिन्द्रावतारः सव्यो [illegible] ॥
ऋग्वेदाद्ये मण्डले कामसूक्तादिन्द्र [illegible] ।
तेभ्यो दासायोधनं रूपयन्ती संदर्शयन्ति [illegible] ॥ [illegible] ॥

१५१ "त्वमपामपिधानावृणोरपाधारय पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादिन्द्र [illegible] ।
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधम स्वधाभिर्ये [illegible] ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं [illegible] ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय [illegible] ।
महान्तं चिदर्बुदं निक्रमीः पदा सनादेव [illegible] ॥

विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रताना भूमिरिन्द्रः श्नथयन्ननो भुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो विजघान संदिहः ॥ ९ ॥
तक्षद्यत्त उशना सहसासहो विरोदसी मज्मना वा धत्ते शवः ।
आत्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आपूर्यमाणमवहन्नभिश्रवः ॥ १० ॥
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधितिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसा सृजद्विशुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥ ११ ॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्रवृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम" ॥ १५ ॥

१।५२ "स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नप ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयो यवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः" ॥ १० ॥

१।५३ "न्यूषु वाच प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससत मिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठया तिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो निचक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः" ॥ ११ ॥

१।५४ "त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४ ॥
नियद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्याचित्कृणवः कस्त्वापरि ॥ ५ ॥
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वत ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते" ॥ १० ॥

१।५६ "स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि" ॥ ३ ॥

१।५७ "त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः" ॥ ६ ॥

गृत्समदो दस्युवधं कीर्तयन्निन्द्रं महयति ।

२।११ "सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥
इन्द्रो महा सिन्धुमाशयानं मायिनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥ १० ॥
पिबा पिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
आपृणन्तो जठरे वावृधाना[illegible]

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय" ॥ १९ ॥

२ । १२ "यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वच्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
यः शंबरं पर्य्यतरत् कसीभिर्यो चारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुजनं यस्मिन्नामूर्च्छत् स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
यः सोमकामो हर्य्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शंबरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः" ॥ १४ ॥

२ । १४ "अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशाय एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै" ॥ ७ ॥

२ । १५ "प्रधान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार" ॥ ९ ॥

२ । १९ "स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ् मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥
स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य" ॥ ६ ॥

२ । २० "सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ५ ॥
स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्य १ मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर [illegible] ॥ ८ ॥

वामदेवः ४

वामदेवो दस्युवधमनुकीर्तयन्निन्द्रमभिनन्दयति [illegible]

४।१६ "आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते [illegible] ।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा वि [illegible] ॥ [illegible]
यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य [illegible] ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥ [illegible]
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः [illegible] ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन [illegible] ॥ [illegible]
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने [illegible] ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वप सहस्रा [illegible]

४।१७ "त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनुक्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँ रहिना जग्रसानान् ॥ १॥
त्वमध प्रथम जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रतिप्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्विवृश्चः ॥ ७ ॥
अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ" ॥ १४॥
४।१८ "ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य संपिणग्वधेन" ॥ ९ ॥
४.१९ "अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण विकीरिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्णवातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृलहा न्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
अभि प्रदद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्रययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्रसिन्धून् ॥ ५ ॥
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्" ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य वामदेवः प्रियतम आसीदयं हि देवस्य ।
इन्द्रस्य मूर्त्तिपूजां प्रचारयामास लोकेऽस्मिन् ॥ १ ॥
ऋक्संहिता तुरीयकमण्डलसूक्ते चतुर्विंशे ।
दशमर्च्यैन्द्रप्रतिमां व्यक्रीणाद् धेनुभिर्दशभिः ॥ २ ॥
सर्वप्रथमं मन्ये देवयुगे वामदेव एवायाम् ।
देवप्रतिमापूजां प्रचारयामास मानुषे लोके ॥ ३ ॥
यद्यपि ततोऽपि पूर्वं सारस्वतसूर्य्यसदनेऽभूत् ।
अपि सूर्य्यचक्रमूर्त्तेरुपासनारम्भ इत्याहुः ॥ ४ ॥
विज्ञानार्था सेयं किन्त्वासीत् सूर्य्यचक्रस्य ।
दृष्टिपरीतोपासा देवप्रतिमार्चना नैवम् ॥ ५ ॥
योगस्त्रिधा क्रियाया भक्तेर्ज्ञानस्य भेदेन ।
भक्तेस्ते चत्वारो हठलयसन्मन्त्रराजयोगाख्याः ॥ ६ ॥

देवप्रतिमोपासा प्रकल्पिता मन्त्रयोगविधौ ।
मन्त्राराधितदेवः प्रत्यासन्नोऽवति प्रायः ॥ ७ ॥

'देवानामिदवो महत् तदावृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये' ॥

उत्कृष्टं वहुमूल्य विक्रीणन् द्रव्यमल्पमूल्येन ।
पूजाफलोपलब्धौ समयं प्रत्यर्पणाय चक्रे सः ॥ ८ ॥

अत एवेन्द्रस्तमृषिं महयितुमिव वामदेवस्य ।
प्रमहोत्सवेऽभिगरमनु वक्तुं प्रतिगरमिहान्तरोक्तम्यौ ॥ ९ ॥

वामदेवं प्रतीन्द्रः स्वं चरितमनुवर्णयति ।

४।२६ 'अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः [illegible] ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं [illegible] ॥ ३ ॥
अथवा देवेन्द्रस्य व्याहृतिमयनेव वामदेव [illegible] ।
प्रतिनिधितयेन्द्रभाव स्वस्मिन्नारोप्य [illegible] ॥ [illegible] ॥

पुनर्वामदेवोऽनुकीर्तयन्निन्द्रं [illegible] ।

४।२८ "त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो [illegible] ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव [illegible] ॥ १ ॥
त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं [illegible] ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं [illegible] ॥ २ ॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा [illegible] ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां [illegible] ॥ ३ ॥
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून् [illegible] ।
अक्राधेयामकृणुतं नि [illegible] ॥ [illegible]

४।३० "नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥
सत्रा ते अनुकृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः ।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधः ।
यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते ।
मुषाय इन्द्रसूर्यम् ॥ ४ ॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् ।
त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥
यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्रसूर्यम् ।
प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन्मन्युमत्तमः ।
अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
एतद्घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् ।
उषासमिन्द्र सम्पिणक् ॥ ९ ॥
अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥ १० ॥
एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या ।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।
परिष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्रमृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ॥ १३ ॥
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि ।
अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।
अधि पञ्च प्रधींरिव ॥ १५ ॥
उत त्यासद्य आर्य्या सरयोरिन्द्रपारतः ।
अर्णा चित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् ।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥
अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया" ॥ २१ ॥

४ ३२ "प्रते वोचाम वीर्या३या मन्दसान आरुजः ।
पुरोदासीरभीत्य ॥ १० ॥
ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या ।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्र मीमहे ।
शतं सोमस्य खार्य' ॥ १७ ॥
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि ।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।
भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि" ॥ २० ॥

जेतामाधुच्छन्दसः स्तौति ।

"पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुत" ॥ १ ॥ (११ । ४)
"मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर" ॥ २ ॥ (११ । ७)

सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः स्तौति ।

१० । १०५ "शतं वा यदसुर्य प्रतित्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्यास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम्" ॥ ११ ॥

बभ्रु रात्रेयोऽभिनन्दयति ।

५ । ३० "परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम विभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥ ५ ॥
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्रमायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।
अत्रादासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्रचक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥

अवस्युरात्रेयोऽभिनन्दयति ।

५ । ३१ "इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो यातिप्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टावज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निःषीमद्भ्यो धमथो निःषधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि" ॥ ९ ॥

गातुरात्रेयोऽभिनन्दयति

५।३२ "अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानां अरम्णा ।
महान्तमिन्द्रपर्वतं वियद्वः सृजो विधारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानां अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ॥
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री निजघान शुष्णम् ॥ ४ ॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन निदुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम्" ॥ ८ ॥

संवरणः प्राजापत्योऽभिनन्दयति ।

५।३३ "पुरु यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नामचिन्" ॥ ४ ॥

५।३४ "न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः" ॥ ६ ॥

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद् वासुक्रो वाऽभिनन्दयति ।

१०।२२ "आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥ ७ ॥
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥
मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥ १० ॥

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः" ॥ १४ ॥

वसुक्रोऽभिनन्दयति ।

१० । २६ "प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्यानृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान्" ॥ २ ॥

अष्टादंष्ट्रो वैरूपो महयति ।

१० । १११ "इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
मही चिद्यामातनोत्सूर्य्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥ ५ ॥
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥ ६ ॥
सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धानु वेद ॥ ७ ॥
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्ववो नूनमन्तः ॥ ८ ॥
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्रविविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुत्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥ ९ ॥
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः" ॥ १० ॥

शतप्रभेदनो वैरूपो महयति ।

१० । ११३ "वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मना वर्धन्नुग्रमहिमानमिन्द्रियम् ॥ ३ ॥
भूरि पक्षेभिर्वचनेभिरृक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्रवोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये" ॥ ९ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः श्लाघते ।

१० । ५४ "तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ १ ॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥ ७ ॥
क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ” ॥ ३ ॥

वत्सः काण्वोऽभिनन्दयति ।

८ । ६ ‘ विचिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ॥
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे” ॥ १४ ॥

श्रुष्टिगुः काण्वोऽभिनन्दयति ।

८ । ५१ “प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः” ॥ ९ ॥

मेध्यः काण्वोऽभिष्टौति ।

८ । ५३ “य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवे दिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे” ॥ २ ॥

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनावभिनन्दयतः ।

८ । १४ ‘ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः” ॥ १४ ॥

नोधा गौतमोऽभिनन्दयति ।

१ । ६१ “अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ” ॥ १५ ॥

१।६३ "त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन्" ॥ ३ ॥

अङ्ग और्वोऽभिनन्दयति १—६।

१०।१३८ "तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्।
यत्रादशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥ १ ॥
अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम्।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य्य ऋतजातया गिरा ॥ २ ॥
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः।
दृलहानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥ ३ ॥
अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमाददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥ ४ ॥
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥ ५ ॥
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम्।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता" ॥ ६ ॥

कृतज्ञतास्तुतिसूक्तपाठानन्तरमिन्द्रेण कुत्साय वेशभूषापरिच्छदैः स्वसारूप्यं सोमसन्धिश्चे
द्विविधं प्रीतिप्रसाददानम्।

इत्थं तत्र सभायां सभासदै राजभिर्मनुष्यैश्च।
ऋषिभिर्देवैरसुरैः सभाजितोऽभून्महोत्सवे स्वाराट् ॥ १
आराध्याः संभ्रान्ताः संभावितसज्जनाश्च समवेत्य।
सप्रश्रयं सविनयं न्यवेदयन् श्रद्धया कृतज्ञत्वम् ॥ २ ॥
तेषां कृतज्ञतां तामभिनन्द्य हृदा स्वभक्तिभावत्वम्।
प्रतिपद्य च सौहार्दं दर्शयितुं समयमनुमेने ॥ ३ ॥
महसि च मघवानिन्द्रो महसा परितोषितः प्रददौ।
कुत्साय तत्र तस्मै सोमे सन्धिं स्वसारूप्यम् ॥ ४ ॥

तत इन्द्राकुत्साभ्यां सहभावं सह च सोमसवम्।
भूषावेषपरिच्छदपरिचरसाम्यं च तत्राभूत् ॥ ५ ॥
इत्थं मह.समाप्तौ विश्वामित्रः सभां विसर्जयितुम्।
मन्त्रं विसर्जनीयं प्रत्युत्थायेन्द्रमन्वाख्यत् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण कृतो यावानुपकारस्तं पुनः प्रथयन्।
स्वीयां कृतज्ञतां च प्रदर्शयन्निन्द्रमस्तौत्स. ॥ ७ ॥

देवेन्द्रस्य पुनः स्वर्गे गमनम्।

सभाविसर्जनावसरे जिगमिषुं देवेन्द्रं प्रति विश्वामित्रस्य प्रणयवचनम्।

३।५३ "इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीरा।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेयां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परागाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभेत इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम्।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १० ॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२ ॥

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम्" ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः" ॥ १४ ॥

इन्द्राकुत्सयोर्वेषादिसाम्यकृतसारूप्ययोः स्वर्गाय सह प्रस्थानम् ।

कुत्सः सहानुगन्तुं मनो दधे शक्रसत्कृत्यै ।
इन्द्रोऽपि तत्र कुत्सं सत्कर्तुं पथि पुरश्चक्रे ॥ १ ॥

इन्द्रसमानैर्मानैः कुत्सस्याभूत् पुरो यानम् ।
तत्पश्चात् पथि शक्रः स्वपरिकरैर्यानमारेभे ॥ २ ॥

अस्ति सहस्राश्वीने पथि लोकः स्वर्ग इत्येवम् ।
व्याचष्ट ऐतरेयः सहस्रमेतत्त्वनेकार्थम् ॥ ३ ॥

इन्द्राकुत्सौ त्वश्वैस्त्रिभिर्दिनैर्जग्मतुः स्वर्गम् ।
सह च सहस्रं हरयः किञ्चित् पश्चात्तु मारुती सेना ॥ ४ ॥

अमरावत्यां देवाः श्रुत्वा वैकुण्ठमागमिष्यन्तम् ।
पुरतः कृत्वेन्द्राणीमुपह्वरे स्वागतायागुः ॥ ५ ॥

अभ्यायान्तौ दूराद् दृष्ट्वेन्द्रौ द्वौ शचीन्द्राणी ।
चकितातिविस्मिता सा प्रेषितपत्यर्त्तने च संमुमुहे ॥ ६ ॥

मरुदुद्बोधितवृत्ता स्वामिनमवधार्य पूजयामास ।
सारूप्यदानविषये संवादं केन्द्रतश्चक्रे ॥ ७ ॥

स्वर्गे विजयाभिनन्दनीयः प्रमहः ।

अमरावत्यामिन्द्रः स्वीय सदनं समासाद्य ।
सत्कारदानमानै कुत्सं सभावयामास ॥ १ ॥
मानुषलोके कुत्सप्रस्थान दस्युसंहारम् ।
इन्द्रविजयमुपलब्ध्य च महोत्सव. कल्पितो देवै ॥ २ ॥
तत्र बृहस्पतिनुन्न. सप्तगुरिदिन्द्रं महोत्सवे प्रमुखः ।
विजयितमभितुष्टाव प्रोच्य विजयसिद्धनेतदुत्कर्षम् ॥ ३ ॥
आर्य्यं वर्णं दस्युभिरुपद्रुतं यो द्रुतं समाश्वास्य ।
उदजापयत् तमिन्द्रं सप्तगुमुखतः सुरास्तदाऽभ्यगृणन् ॥ ४ ॥

तत्रेन्द्रस्तुतिविधानाय नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रसात्वेयं मरुद्गणमभिलक्ष्य मन्त्रयतः ।

८८६ "बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥
अभि प्रभर धृषता धृषन्मन. श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्व" ॥ ४ ॥

अथैतौ नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रमेवाभिलक्ष्य महयतः स्म ।

"यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्र हत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम ॥ ५ ॥
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृति ।
तद्विश्वमभि भूरसि यज्जात यच्च जन्त्वम ॥ ६ ॥
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्ट गिर्वणसे बृहत्" ॥ ७ ॥

पुनरेतौ नृमेधपुरुमेधौ देवेन्द्रमभिवर्णयतः।

८।६० "आनो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचोपमः॥ १॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तु विद्यु म्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः॥ २॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियते अनतिद्भुता।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि॥ ३॥
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि॥ ४॥
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता॥ ५॥
तमुत्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्रते सुम्ना नो अश्नवन्"॥ ६॥

तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुतोऽभिनन्दयति।

८।९६ "अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥ १३॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥ १४॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥ १५॥
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥ १६॥
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः॥ १७॥
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः"॥ १८॥

नभ्रो वैखानसः स्तौति ।

१०।६६ "स द्रु ह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषद्‌र्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजात पुरोभिनदर्हन्दस्यु हत्ये ॥ ७ ॥
सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ॥
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥ ८ ॥
स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ॥
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥ ९ ॥
अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसाभूत्" ॥ ११ ॥

अथ प्रमहप्रमुखः सप्तगुः स्वर्णरः प्राधान्येनेन्द्रं महयति ।

१० । ४७ "जगृम्भाते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ १ ॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ २ ॥
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुत ऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ ३ ॥
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ ४ ॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ ५ ॥
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ ६ ॥
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः ॥ ७ ॥
यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः" ॥ ८ ॥

अभिगरप्रतिगरनियमः

सदसि पुरातनसमये संवादेऽभ्यर्चनासु या नरनाम् ।
प्रथमं यद्वक्तव्यं सोऽभिगरः प्रतिगरस्तु तत्र परः ॥ ? ॥

यं प्रत्यभिगर उक्तः सोऽभ्युपयन् प्रतिगरं कुरुते ।
सोऽपगरोऽभिगरं चेदाक्षिपति त्रुटिमुदाहरँस्तस्य ॥ २ ॥
स्वर्गे विजयमहोत्सव-संसदि सप्तगुकृतेऽर्थनाऽभिगिरे ।
प्रतिगरतया महेन्द्रोऽभ्युपयन्नूचे पुराकृतं त्राणम् ॥ ३ ॥

सप्तगुमुखेन देवानामभिगरे देवेन्द्रस्य प्रतिगरः ।

१० । ४८ "अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥ १ ॥
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमाददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥ २ ॥
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥ ३ ॥
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरु सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥ ४ ॥
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥ ५ ॥
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥ ६ ॥
अभीदमेकमेको अस्मि निष्षालभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ ७ ॥
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥ ८ ॥
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥
प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥ १० ॥
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम्" ॥ ११ ॥

स्वर्गप्रमहेण दस्युविजयनीयेन्द्रचरितपूर्णताख्यानम् ।

इत्थं स्वाराड् दस्युनाशं व्यधात् प्राग् वैकुण्ठेन्द्रो नैपवेऽन्तेऽस्थित नन ।
कुत्सं राज्ये स्थापयित्वा स दस्यु नायो राष्ट्रं तान्निगृह्य स्वरागान् ॥ १ ॥
कुत्सो राजाऽन्ये च राजान एते सिन्धो. प्रत्यग् नीवृति प्राग् यथाऽऽसन ।
सर्वे सभ्या आर्य्यराजास्त एते स्वं स्वं राज्यं प्राग्वदन्वाच्चतिष्ठन् ॥ २ ॥
अथोदयनीयं परिशिष्टाख्यानम् ।

अथ दस्युभिः सारस्वतसूर्य्यापहरणम् ।

इत्थं देवस्वाराट् प्रतापतः सर्वरूपायाम् ।
विहितायामपि शान्तौ नातिष्ठत् सा चिरं शान्तिः ॥ १ ॥
धृष्टा रुद्ध तद्धृदयाः कुर्वाणा पुनरुपद्रव भूय ।
आक्रममाणाः सूर्य्यस्थाने पुनरप्यशातिमातेनुः ॥ २ ॥
वैकुण्ठद्विषि हन्तुं देवकुलं प्रस्थितेऽसुराधीशे ।
प्रह्लादे त्वार्य्याणा त्तोभाद् दस्युभिरयं हृत सूर्य्यं ॥ ३ ॥
गान्धारस्थं सूर्य्यं विद्वेषाद् ध्वंसयन्तोऽन्ये ।
असुरा यवनप्रान्ते पुनरैच्छन् त निधापयितुम् ॥ ४ ॥

सीरियादेशे वालवकभवननिर्माणम् ।

शामो रोमकतनयस्तद्वायः शामदेशो च ।
स च पश्चादवरुद्धः सुरैस्तत सीरिया नाम ॥ ५ ॥
तस्मिन् देशे हेलि. पौलस्त्यो निर्म्ममे सौरम् ।
भवनं वालवकाख्यं तस्मिन्शालाऽद्भुतस्तम्भा ॥ ६ ॥
अद्याप्येकः स्तम्भः श्वेताश्ममयोऽत्र दृश्यते भुग्न ।
चत्वारिंशत् सप्त च हस्ता ऊर्ध्वं परिस्तृतौ तु नव ॥ ७ ॥
तैरिदमद्भुतमासीत् सुदृढविशालैः शिलास्तम्भैः ।
भवनं तत्र च शाला विहितासीन् पूर्वसान्वेन ॥ ८ ॥
नासीत्तत्र तु चक्रं शालैवासीद्विशालैषा ।
चक्राभावात् तस्मिन् प्रतिबिम्बार्थं च नयुरन्यारि ॥ ९ ॥

❀ अचरन् देवाश्चक्रं शालं त्वसुराः समाश्रिता आसन् ।
इत्थं शतपथ उक्तं काण्डे षष्ठेऽष्टमाध्याये ॥ १० ॥
सैषाऽस्ति हि परिभाषा सर्वत्रैवोपनीयते तस्मात् ।
चक्रमनस्तच्छालं कुम्भीत्येवं हविर्ग्रहणे ॥ ११ ॥
चक्रं त्वश्मा पृश्निः शालं यन्त्रं तु सूर्य्यविज्ञाने ।
चक्रं परित्यजन्तः शालामेवाऽसुरा व्यदधुः ॥ १२ ॥

सरस्वत्याख्यब्राह्मीसूर्य्यप्रतिनिधेनाब्राह्मीसूर्य्यप्रतिष्ठापना ।

सिन्धुसरस्वत्योः प्राक्कूलात् प्राच्यां पुरा स्थितः सूर्य्यः ।
सिन्धोरब्राह्मया अपि नद्याः प्राच्यां प्रतिष्ठितः पश्चात् ॥ १३ ॥
भूमध्यसागरस्य प्राक्कूले वहति या नाम्ना ।
इवरिम नदीयमेवाब्राह्मी तां क्वचिदडोनिसं चाहुः ॥ १४ ॥
संवत्सरे कदाचिज्जलमब्राह्मया भवत्यस्याः ।
नद्या लोहितमचिरात् तत्र न जानन्ति कारणं केचित् ॥ १५ ॥
अब्राह्मी तु नदी या वालवकं नाम यद् भवनम् ।
क्रोशा विंशतिरनयोरनन्तरमस्तीह पश्चिमेऽस्ति नदी ॥ १६ ॥
उज्जयनमध्यरेखापश्चिमदेशान्तरे स्थितं तदिदम् ।
चत्वारिंशप्राये धाम चतुस्त्रिंशकेऽक्षांशे ॥ १७ ॥
ऊनचत्वारिंशकेऽशे सप्तविंशतिसाधिके ।

(३६ । २७ । भारतीयपश्चिमदेशान्तरे)

उज्जयिन्याः पश्चिमतः स्थानं वालवकं स्थितम् ॥ १८ ॥
तद् ग्रीनवीचस्तु प्राच्यां षट्त्रिंशके सपादेंऽशे ।

(३६ । १५ ग्रीनविचपूर्वदेशान्तरे)

वालवकाख्यं सौरं सद्माद्भुतमसुरनिर्म्मितं रेजे ॥ १९ ॥
तत्र च वालवकाख्ये भवने यं स्थापयामासुः ।
सूर्य्यमदेवाः सोऽपि च तत्रागारे तमोमये विबभौ ॥ २० ॥

❀ देवाश्चक्रमनुचरन् शालमसुरा आसन् । ते देवाश्चक्रेण चरन्त एतत्कर्मापश्यन्—(वनीव – हनम्) । तस्मादनस एव पौरोडाशेषु यजूंषि—अनसोऽग्नौ—(शत० ६ । ५ । ५ । १)

पूर्वभारतस्य पश्चिमसीम्नि सूर्य्येऽस्तमिते पश्चिम भारतस्य पश्चिमसीम्नि किञ्चित्कालं सूर्यदर्शनम् ।

सूर्य्योऽस्ति यत्र दिशि तत्र भवन्ति देवास्तत्पृष्ठदिश्युपनमन्त्यसुरा पृथिव्याम् ।
सूर्य्येऽसुराक्रमणतोऽस्तमितेऽथ पश्चात् तामासुरीं दिशमनुव्रजनेन सूर्य्ये ॥ १ ॥
इयं वैज्ञानिकी संस्था नित्यं दृष्टाऽधिदैवतम् ।
साम्यं तथाविभूतं च प्रकृतेहानुवर्तते ॥ २ ॥
असुरै. प्रत्याक्रमणात् सूर्य्य. सारम्वतो जगामास्तम् ।
भूमध्यसागरस्य प्राची कूले पुन' स उदियाय ॥ ३ ॥
स्वभावतः सूर्य्य उदेति पूर्वत. प्रातः प्रतीचीं स इतोऽस्तमेति च ।
पुन. पुरस्तात् स उदेति चक्रवत् क्रमान् पुनर्भारतमेव पश्यति ॥ ४ ॥

भारतवर्षीयवैदिकधर्म्मस्योत्थानपतनयोर्द्वयो हेतुः ।

पश्चिमदेशीयसूर्योदयानन्तरं पुनः पूर्वदिशार्य्यसूर्योदयः ।

अथ गान्धारे देशे क्षोभणतः क्षोभणादित्यम् ॥
आर्य्याः क्षोभस्मृत्यै मार्त्तण्डं स्थापयामासुः ॥ १ ॥
स्कान्दे प्रभासखण्डे कथितोऽयं शीलयाध्याये ॥ (१३६)

❀ चित्रादित्यस्तवने गान्धारे क्षोभणादित्यः ॥ २ ॥
गान्धारे चित्रपथा चित्रा वा ब्रह्मकुण्डसंनिहिता ॥
नद्यस्ति सुप्रसिद्धा प्रावृट्काले वहत्येषा ॥ ३ ॥
चित्रादित्य इहासीच्चित्रेण स्थापितः सोऽयम् ॥
चत्वारिंशशतेऽस्मिन्नध्याये (१४०) वर्णितः स्कान्दे ॥ ४ ॥

कश्मीरे श्रीनगराद्ग्निदिशि क्वाप्यदूरवद्देशे ॥
मट्टनसाहिबनाम्ना कुण्डः कोऽप्यस्ति तीर्थमार्य्याणाम् ॥ ५ ॥
तत्रैव पूर्वमासीदन्यन्मार्त्तण्डमन्दिरं तस्य ॥
भग्नावशेषमद्य तु कौरवपाण्डवमिति प्राहुः ॥ ६ ॥
अर्चामन्दिरमेतन्न तु तद्विज्ञानमन्दिरं सौरम् ॥
अनृषिभिरेव च जुष्टं तदपि यशःशेषतां यातम् ॥ ७ ॥

अन्तर्हितोऽत्र सूर्य्योऽप्यभवन् काले स दस्युनिकृतत्वात् ॥
स यथा राहुग्रस्तो दिवि सूर्य्योऽन्तर्हितो भवति ॥ ८ ॥
विज्ञानकूप आसीत् तमिदानीं चोह वाविलत्याख्यम् ॥
म्लेच्छा विदुरिह निगडबद्धौ हारूतमारूतौ ॥ ९ ॥
विज्ञानकुण्डमपि तं मटनेत्याख्यं वदन्ति ते म्लेच्छाः ॥
वैज्ञानिकी व्यवस्था सर्वा विध्वंसिताऽनार्य्यैः ॥ १० ॥

---

*चित्रादित्यं ततो गच्छेद् ब्रह्मकुण्डसमर्पित ॥ तत्र गच्छेत्ततः पूर्वं नदीं चित्रपथाभिधाम् ॥ १ ॥
ब्रम्हकुण्डसमीपस्था चित्रादित्यस्य मध्यतः ॥ प्रतिष्ठा सागरे चित्रा नदी चित्रपथोच्यते ॥ २ ॥
तस्मिन्कलियुगे सेयमन्तर्द्धानगता नदी ॥ प्रावृट्काले तु दृश्येत दुर्लभं तत्र दर्शनम् ॥ ३ ॥
यदैव दृश्यते तत्र चित्रा चित्रपथा नदी ॥ प्रमाणदर्शनं तस्या न कालस्तत्र कारणम् ॥ ४ ॥
भुक्तो वाऽप्यथवा भुक्तो रात्रौ वा यदि वा दिवा ॥ पूर्वकालेऽथवाऽकाले पवित्रो वाऽथताशुचिः ॥ ५ ॥
तस्या स्नात्वा नरो यस्तु चित्रादित्यं प्रपश्यति ॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ ६ ॥
[स्कान्दे प्रभा॰ख॰ ३६ अ॰]

नीचप्रकृतिर्दस्युः परकीर्तिध्वंसकृद् भवति ॥
प्रतिपन्थो जगतामयमकारण द्वेषमाचरति ॥ ११ ॥

वैदेशिकदस्युभिः परिपीडितानां भारतीयानां स्वदेशीयानामन्तिमो विजयः ।

त्रेधा लोक कल्पितोऽयं यदासोदिन्द्रः स्वर्गे पूर्वकाले तदासीत् ॥
आसन्नस्मिन् भारत तर्हि विद्या शौर्यं लक्ष्म्यः सिद्धयश्चानवद्याः ॥ १ ॥
ब्रह्मवीर्य्यपरिवृद्धिहेतवः सूर्य्यसोमरसयज्ञवेनवः ॥
क्लेशसिन्धुतरणाय सेवत संहता अथ विधर्दधे नव ॥ २ ॥
क्षत्रियाय इह सूर्य्यसोमजा ब्राह्मणाय इह यज्ञमूत्रिणः ॥
विड्व्रजा य इह वेनुगालकास्तेपु सन्ति विजया चिय. निय ॥ ३ ॥

ग्रन्थसंपूर्तिः ।

इतिवृत्तं सदसद्वा रजस्तथाऽऽकाशमपरं च ॥
आवरण च तथाम्भोऽथामृतमृत्यू अहोरात्रौ ॥ १ ॥
दैव संशयवादः सिद्धान्तश्च श्रुतावुदिता ॥
द्वादशवादा विहिताः शास्त्रेऽस्मिन् ब्रह्मविज्ञाने ॥ २ ॥
तेष्वाद्यं विज्ञानेतिवृत्तव द्वे प्रकरणानि ॥ (५)
ब्राह्म दैवं भारतमार्षं विज्ञानसूत्रं च ॥ ३ ॥
तत्र च भारतवृत्ते पञ्च निरुक्ताः परिच्छेदा ॥
भारतपरिचय आद्यस्तथार्य्यदासीय इत्यन्यः ॥ ४ ॥
विज्ञानभवनसंज्ञो दस्युवधो विजयकीर्तनप्रमहः ॥
पञ्चप्रसङ्गमित्थं भारतवृत्तं शुभायास्तु ॥ ५ ॥

इति मधुसूदनविद्यावाचस्पतिप्रणीतस्य ब्रह्मविज्ञान [illegible] द्वितीयपर्वणि भारतवर्षीयाख्योपाख्याने इन्द्रविजयाभिनन्दनं नाम पञ्चम [illegible]

मधुसूदनकृतमार्य्यविजयकाव्यं सम्पूर्णम् ॥





॥ श्री ॥

* शुद्धि-पत्रम् *



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	अग्निलोक	अग्निलोक:
,,	,,	इन्द्रलोक	इन्द्रलोक:
,,	१४	वायंभुवा:	स्वायंभुवा:
२	२१	भारतवर्प	भारतवर्षे
३	४	विष्टप	विष्टपं
,,	२४	सप्रति	सम्प्रति
४	१७	सव	सर्व
,,	३१	अमाल्लोक	अस्माल्लोका
,,	३३	लोव	लोक
५	१२	ऋृपभो	ऋषभो
,,	१६	ऋृपभाद्	ऋषभाद्
६	१	र्यमुनामनु	यमुनामनु
,,	६	यत्वार्ष	यत्त्वार्ष
,,	१५	(३०)	(३३)
७	८	समुद्रैर्ष्यमा	समुद्रैर्युग्मा
,,	६	ऋृग्वेदस्य	ऋग्वेदस्य
८	७	देवेमभिंतुपे	देवेभिर्मानुपे
,,	८	सप्तमानुप	सप्तमानुप
,,	१२	वि:पति	विस्पति
,,	१४	यत्तेधीति	यत्तेधीतिं
६	२०	हिन्दुत्तान दागत	हिन्दुत्तानदागत
११	४	अनयोराति	अनयोरन्ति
,,	१६	सिन्दुस्थानाख्य	सिन्धुस्थानाख्य ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२०	पार थानं	पारस्थानं
,,	,,	पु तिना	पुरतना
,,	२४	पंठ न सना	[illegible]
,,	२५	शपरिच्छेद पेस	[illegible]
,,	,,	अत्रपि	[illegible]
१२	११	भूद्दोद्दिशो	[illegible]
,,	२३	तत्रानवारिज्य-नाग्नेता	[illegible]
१३	८	सत्ता	[illegible]
,,	१८	[illegible]	[illegible]
१४	३	नन्दिम्या तु	[illegible]
,,	,,	मूढ्न्यादाय	[illegible]
,,	२३	धेऽति	[illegible]
१५	१०	[illegible]	[illegible]
,,	१५	[illegible]	[illegible]
१६	[illegible]	[illegible]	[illegible]
,,	[illegible]	[illegible]	[illegible]
,,	२५	[illegible]	[illegible]
१८	४	[illegible]	[illegible]
२०	,,	[illegible]	[illegible]
२१	१८	[illegible]	[illegible]
२४	२६	[illegible]	[illegible]
२५	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	१५	रुत्तजितेन	रुत्तेजितेन
,,	१८	वृद्धानं	वृद्धानां
,,	२२	अप्राथितः	अप्रार्थितः
२६	५	तस्मिनिन्द्रभटा	त्तस्मिन्निन्द्रभटा
,,	२३	अनिद्रा	अनिन्द्रा
२७	१८	वैरिभक्तकः	वैरिभक्तक
२८	१६	वलजाता	वर्लजात
३०	२४	सरन्त्वो	सरन्त्यो
३१	२२	अपस्वर्ग्नि	अप्स्वर्ग्नि
,,	२३	प्रयंद्व	प्रयुंद्व
,,	,,	निरूपण	निरूपणम्
,,	,,	प्रवर्न्याय	प्रवर्ग्याय
,,	२४	अपूर्वेपुः	अपूर्वेपु
३२	१	नवीनवारं	नीवीनवारं
३३	२०	थानिस्थाना	यानिस्थाना
,,	२३	सौभाग्ययाय	सौभाग्यस्य
३४	१४	पूर्ण शक	पूर्णयशस्कं
,,	१७	प्रोच्चारयः	प्रोच्चारय
३५	६	बृहद्दीवाया	बृहद्दिवाया
३६	२०	प्रविषं	प्राशवं
,,	२६	स्तमितं	स्तभितं
३७	६	देवष्वधि	देवेश्वधि
,,	७	दिव	दिवं
,,	१५	त्रिमात्रा	त्रिमात्रा
,,	१६	राचित	राचितं
३८	१	सीमाभिपवार्थं	सोमाभिपवार्थं
३९	१२	कले	काले
,,	२०	द्विमोचयतु	विमोचयतु
,,	२१	करणेद्व च	करणे न च
३९	२२	द्विभवम्	विभवम्
४०	१०	उराश्रित	उपश्रित
,,	१३	परक्शोद्भूतं	पखशोद्धतं
,,	,,	तत्कालजे	तत्कालजं
,,	२२	ववित्रे	वर्षित्रे
,,	,,	भत्रे	भर्त्रे
,,	२४	अन्नवर	अन्नवन्
,,	,,	क्वः	च
,,	,,	उपगनः	उपगतः
४१	४	सिद्धो	सिद्धौ
,,	८	पस्पशरिन्द्रा	पस्पर्शादिन्द्रा
,,	१८	उपेमस्थुर्जोष्टार	उपेमस्थुर्जोष्टार
,,	२१	विपस्य	विप्रस्य
४२	२	सुष्टुति	सुष्टुति
,,	६	सूर्यमैरय	सूर्यमैरयतं
,,	७	मायितो	मायिनो
,,	१८	अग्नेरिहापि	अग्नेरिहापि
४६	५	पद्म	पद्म
,,	८	पद्म पुराणेषु	पद्मपुराणेषु
,,	१८	वाम्यायां	याम्यायां
४७	१७	कशेरुभास्ताम्रपर्णो	कशेरुभारुतम्रपर्णो
४८	८	कसेरु	कसेरुः
,,	२४	दधिकशोत्तरा	दधिक्रदशोत्तरा
४९	१८	भारतीयस्त्वं	भारतीयत्वं
५०	१२	भावात	भावात्
,,	,,	भारतीयत्व	भारतीयत्व
५१	१४	प्रितिज्ञाय	प्रतिज्ञाय
,,	१६	व्यवहृला	व्यवहृता
,,	२०	द्वेधाः	द्वेधा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१	२१	लक्षिमा	लक्षिता
,,	२२	गान्वारणां	गान्धाराणां
५२	५	अथौत्तर	अथोत्तर
,,	,,	इत्येव	इत्येवं
,,	२४	विजघानापशु	विजघानाशु
५३	=५	मार्कण्डेयो	मार्कण्डेयं
५४	६	पवता	पर्वता
,,	१३	वासिम्य	वासिभ्यः
,,	१५	नापलपितं	नापलपितं
,,	१७	केचम	केचन
,,	२४	ऋजिश्व	ऋजिश्व
,,	,,	भगजातीय	मगजातीय
५५	१०	ऋग्वेदोऽथ	ऋग्वेदोत्थ
५६	६	भारतस्थ	भारतस्य
,,	१५	लाहित	लोहित
,,	२७	कस्मात्	कस्मात
५७	६	श्रुतेर्हेलिरयं	श्रुतेर्हेलिरय
,,	१८	चक्र	चक्रु
,,	२८	वपपूर्वा	वर्षपूर्वा
५८	३	प्रत्यत	प्रत्यन्त
,,	१७	इत्यव	इत्येव
६०	१७	ऋषिवत्	ऋषिवत
६२	११	सर्वत	सर्वत्र
,,	१४	स्यान्त्रो	स्यादन्नो
,,	१८	वक्रज्ञो	यज्ञान्नो
६३	१२	भूमीत्पृक	भूमिस्पृक
,,	२१	स्यातं	स्यातुं
,,	२६	दुन्वेजातो	दन्दुजातो
६४	२६	श्रयसै	प्रायसै

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६५	११	धारावगाह	धारावगाह्
,,	२२	तू.	न
,,	२३	तूरात्यत्र	तूरात्यत्र
६७	२२	स्याग्रयम्	स्याम्यम्
,,	२४	नोभिनत	नाभिनत्
६८	१०	निम्मितान्या	निर्मितान्या
,,	११	अक्रूवाया	[illegible]
६९	३	इलावृत्तता	[illegible]
,,	५	तेन	तेन न
,,	७	देवेद्विभि	[illegible]
,,	६	मर्त्य	[illegible]
,,	२२	स्कारान्द	[illegible]
७०	४	शैलादिषु	[illegible]
,,	६	दूश	[illegible]
७२	१४	सिन्धुल्यानन्य	[illegible]
७४	१७	द्वीपानदिभूय	[illegible]
,,	१६	इन्द्रधुम्नेदनो	[illegible]
७५	८	ऋपभा	[illegible]
,,	१३	ययार्न्य	[illegible]
,,	१८	प्ररन्धीना	[illegible]
७७	८	[illegible]	[illegible]
,,	१७	[illegible]	[illegible]
,,	२३	भारतीय	[illegible]
७८	७	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	१८	[illegible]	[illegible]
,,	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७९	२	भारतवर्ष	भारतं वर्ष
,,	१०	एघ	एव
,,	२१	इत्यवश्य	इत्यवश्यं
८०	६	दीव	दीवा
,,	११	प्रात्ता	प्रान्त
८१	१०	अश्क्नुवन्मस्ते	अशक्नुवन्सस्ते
,,	१६	तव्दल	तद्वल
,,	२३	कालेनी	कालेनो
,,	२७	दीवादि	दीवादि
८२	१२	यार्य्य	यार्य्य
,,	२२	भेद्गाः	भेदः
८३	२	खिघा	खिधां
,,	४	पःणिने	पणिनेः
,,	,,	समथे	समये
,,	६	द्रचलिता	प्रचलिता
,,	७	मुक्छेदादुक्छि	मुच्छेदादुच्छि
,,	२३	बाक्	वाक्
,,	२४	त्वनौ	त्वातौ
८४	१२	हैंन्दवी	हैन्दवीं
८६	७	दृष्टि	दृष्टिः
८८	४	विंलिखेन	विंलिखने
,,	७	कस्या	कर्यां
,,	,,	चित्कलायां	चित्कलाखायां
,,	१२	विष्टारपंक्ति	विष्टारपक्ति
,,	१५	वाङ्मय	वाङ्मय
,,	१६	वृहस्पति	वृहस्पति
८९	४	कुत्स	कुत्स
,,	१६	हरिभिरूप	हरिभिरूप
,,	,,	कण्ठस्यमुण्ड	कण्वस्यमुण्ड
९०	६	ऋषि.	ऋषिः
,,	६	खरोष्टीं	खरोष्टीं
,,	१३	मतोनुगा	मतानुगा
,,	१४	भ्येस्य	भ्येत्य
,,	२४	वामानि	वामावर्ति
,,	,,	जन्मदी	जन्मदो
९१	१०	पुरातनेके	पुरातने काले
,,	१८	सिपयो	लिपयो
,,	२७	तुसं हिता	तु संहिता
९२	५	राजशोकात्	राजाशोकात्
९३	५	देशानो	देशाना
,,	८	सवमानवाः	सर्वमानवाः
,,	११	ग्रानं	ज्ञानं
९३	१६	द्रपीड़िता	प्रपीड़िता
,,	२४	त्रिभति	विभर्ति
९४	८	भरत	भारत
,,	१३	धर्म्मा	धर्म्मो
,,	२	शान्मि	शान्ति
९५	१	योवा	योगा
,,	११	याजयेत	यजेत्
,,	१२	धनाड्य	धनाढ्ये
,,	१६	शुक्लनया	शुल्कतया
,,	१८	ब्राह्मणो	ब्रह्मणो
,,	१९	स्वराजो	स्वराजौ
,,	२१	अनयोरपि	अनयोरपि ब्रह्म
,,	२४	ब्रह्मत्वं	ब्रह्मस्वं
,,	२५	प्रतपन्थि	प्रातर्पान्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९५	२६	त्तात्र	त्तत्र
„	„	च्युतो	च्च्युतो
„	२७	थितु	थितुं
„	„	विप्रत्ति	विप्रति
९६	१	तहि	तर्हि
„	„	च्युतो	च्च्युतो
„	„	धर्म्मं	धर्मं
„	३	मण्डल	मण्डलं
„	६	गृहीतारस्त्वेते	गृहीतास्त्वेते
„	७	समाजामा	समाजात्मा
„	१४	प्रतिस्विको	प्रतिस्विधो
„	२१	तीर्थाम्रयाणां	तीर्थाम्रथाणां
९७	१६	जीवन्निव	जीवन्निव
„	२०	ध्रवं	ध्रुवं
„	२३	विकर्म्म	दु खप्राप्त्यै विकर्म्म
„	२७	भारतीये	भारतीयैः
९८	४	सर्वमपीदं	सर्वमपीदं
„	८	सर्वो	सर्वा
९९	१६	घनिष्ट	घनिष्ठ
१००	६	हैतु	हेतु
„	१३	शय्यं	शय्य
„	१७	धनेना	धनेन
„	२२	धनोन्नतेनि	धनोन्नतेर्नि
„	२४	सर्वो	सर्वा
१०१	१	धनोन्नतिर्भत	धनोन्नतिर्भूत
„	„	वात्तविकी	वास्तविकी
„	१२	स्याद्धन	स्याद्धन
„	१४	सुपेत्म	सुपेत्य
„	२०	मान्मा	मान्मा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	८	वर्पेऽपि	वर्षेऽपि
„	१८	विरुमन्य	[illegible]
„	२२	विज्ञानानीर्म्ये	[illegible]
„	२५	वान्त्या	[illegible]
१०३	५	धर्म्मं	[illegible]
१०४	४	प्रवर्द्धते	[illegible]
„	„	वीर्य्ये	[illegible]
„	५	प्राणेऽन्या	[illegible]
१०५	११	[illegible]	[illegible]
„	१२	विप्रभेदा	[illegible]
„	१५	[illegible]	[illegible]
„	„	[illegible]	[illegible]
„	१८	[illegible]	[illegible]
„	२२	[illegible]	[illegible]
„	२३	[illegible]	[illegible]
„	२५	[illegible]	[illegible]
१०६	६	[illegible]	[illegible]
„	१३	[illegible]	[illegible]
„	१५	[illegible]	[illegible]
„	१६	[illegible]	[illegible]
„	१६	[illegible]	[illegible]
„	„	[illegible]	[illegible]
१०७	१८	[illegible]	[illegible]
„	२३	[illegible]	[illegible]
१०८	[illegible]	[illegible]	[illegible]
„	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१०९	३	[illegible]	[illegible]
„	५	[illegible]	[illegible]
„	१३	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	२२	भावर्द्धनम्	भारवर्द्धनम्	११६	१८	दुर्वोत्थया	दूर्वोत्थया
,,	२५	राक्षसैं नुत्थाप्य	राक्षसैरनुत्थाप्य	,,	१६	संज तां	संजप्तां
११०	४	पनाधारेण	पवनाधारेण	,,	२१	कविस्व	कवित्व
,,	,,	सुल्ललघे	सुल्ललंघे	,,	२२	दैवष	दैव
,,	५	त्यत्र	न्यत्र	,,	२३	व्हूहः	व्यूहः
,,	११	मनोवृत्य	मनोवृत्त्य	,,	२७	सवेदनाब	संवेनाबद्
,,	१७	रौधित	रोधित	११७	१	शंकराचार्य्यौ	शंकराचार्यो
,,	,,	तस्यें	तस्यै	,,	३	वेनस्य	वेनस्य
१११	२	नवासौ	नैवासौ	,,	,,	उनमार्ग	उन्मार्ग
,,	१५	ननुमत्स्यो	मनुमत्स्यो	,,	४	योऽपजह्नु	योऽपजह्नुः
,,	२४	अतिता	अतीता	,,	५	संधनम्	सन्धानम्
,,	,,	चिरकाल	चिरकाला	,,	८	पयामास	पर्यामास
११२	१४	वेद्व्य स	वेद्व्यास	,,	६	परित तो	परितप्तो
,,	१५	घ्रूय	घ्राय	,,	१८	ब्रह्मवंध्या	ब्रह्मवध्या
,,	२७	यंकल्प	संकल्प	,,	२१	पृष्ठ	पृष्ट
११३	६	प्रजापत्य	प्राजापत्य	११८	६	मप्यैव	मप्यत्रैव
,,	१३	लोकं	लोका	११६	६	क्षीण	क्षीणां
,,	२७	अतं	अयं	,,	१६	तहावलाः	महावलाः
११४	४	कतिचिद्	कंचिद्	१२०	१	औषधिः	ओषधिः
,,	८	कि	किं	,,	४	परित्तृ	परित
,,	१४	मवलुब्बयाग्नौ	मवलुंच्याग्नौ	,,	,,	पत्तीय्य	पत्तीर्य्य
,,	१५	जटत्कारा	जटाकारा	,,	१४	न्नर्य्य	न्नप्य
११५	३	मुंनि	मुंनि.	,,	२३	युधिठिरं	युधिष्ठिरं
,,	६	सभासद्भया	सभासद्भयो	,,	२५	न्मात्रेनैक	न्मात्रेणैक
,,	१५	कातरयो	कातराया	,,	,,	तपिते	तर्पिते
,,	,,	स्तस्या	स्तस्याः	,,	,,	मात्यनां	मात्मनां
,,	२०	निविषादः	निर्विपादः	१२१	४	द्दृवायान्तं	द्दृष्ट्वायान्तं
११६	२	तयौं	तयो	,,	२१	कण्टेऽथ	कण्ठेऽथ
,,	१०	मध्वे	मध्ये	१२२	६	द्वारानुग्रह	द्वारानुग्रहं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	१२	लक्ष्मणादी	लक्ष्मणादीं
"	२२	मू र्छनया	मूर्च्छनया
"	"	नश्रीम	नश्रीय
"	२५	नदी	नदीं
"	२८	विराम	विरामनिषेध
१२३	२	भृतम्।	मृतम्।
"	६	आमामीय	आगमीय
"	११	भहोषधि	महौषधि
"	१४	कच:	कच:
"	१७	पुमश्चैत	पुनश्चैत
"	२१	तानाज्ञां	तानार्वा
"	२४	विजानन्ति	विजानन्ति
"	२७	तम्र	तत्र
१२४	३	महोपधि	महौपधि
"	"	मिहामय	मिहानय
"	४	विशल्यक	विशल्य
"	५	संधानी	संधानीं
"	६	लक्ष्मणस्थ	लक्ष्मणस्य
"	"	स्वमानय	त्वमानय
"	८	ददो	ददौ
"	६	गंधमाघ्राय	गन्धमाघ्राय
"	१२	महोपधि:	महौपधि:
"	१७	ऋपि:	ऋषि:
"	१६	प्रीगाति	प्रीवाति
"	"	शल्ल	शत्र
"	२१	चिद्मिश्रिय:	चिद्भिन्निय:
"	२३	शिरछे	शिरश्छे
"	२४	कृत्वाशिर:	कृत्वाह्यशिर:
"	"	संवोज्य	संयोज्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११५	६	सुवर्ण	सुवर्णे
"	११	महोप	महौप
"	२३	द्रुवे	द्वये
१२६	१	दक्षिण्ये	दाक्षिण्ये
१२७	४	वृहक्ति	[illegible]
"	२६	बधाय	वधाय
१२८	४	त्कारं	[illegible]
"	५	द्रालगो	[illegible]
"	१३	निपूणेनिम्मितं	निपुणैर्निम्मितं
"	२०	पक्षिल्पम	[illegible]
"	"	स्त्रेभुमि	[illegible]
१२६	१	कर्न्मं	कर्म्मं
"	७	प्रयो·ादि	प्रयोगादि
"	१४	[illegible]	[illegible]
"	१५	संभवन्यत्र	[illegible]
"	२२	पुनपन्तुम	[illegible]
१३०	४	यत्नान	[illegible]
"	२०	[illegible]	[illegible]
३१	१	वीर्य्यं	[illegible]
"	१७	[illegible]	[illegible]
"	२३	वायने	[illegible]
"	२५	[illegible]	[illegible]
१३२	२	[illegible]	[illegible]
१३३	१६	[illegible]	[illegible]
"	२४	[illegible]	[illegible]
१३४	१८	[illegible]	[illegible]
"	२०	[illegible]	[illegible]
१३५	[illegible]	[illegible]	[illegible]
"	१३	[illegible]	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२५	सशतन्त्रा	सशतन्त्री
१३६	१७	कासः	कासु:
१३७	५	क्वा	क्व
,,	६	हस्तेः	हस्तैः
,,	१०	मोष्ण्यं	मौष्ण्यं
,,	१६	भारतवर्षे	भारतवर्षे
,,	१६	वीर्य्या	वीर्य्या

❋ द्वितीय प्रकरण ❋

— आर्यदासीयाख्यः । —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	धेनुर्गङ्गा	धेनुर्गङ्गा
,,	११	पूर्वाऽस्या	पूर्वोऽस्या
२	१२	पाणि	पाणिं
,,	१८	वणितं	वर्णितं
,,	२०	यद्दुपोद्बल	तद्दुपोद्बल
,,	२६	भूयसास	भूयसासन्
३	४	प्रत्नौकस्तद्	प्रत्नौकस्तद्
,,	१८	प्राचमेषां	प्राचामेषां
४	२	आखिला	अखिला
,,	१७	पाणभि	पणिभि
५	१	माय्यैः	मार्य्यैः
,,	१४	गीड्डु	वीड्डु
,,	२२	निषेद्दु	निपेद्दुः
६	१०	बिवुनोति	विद्दुनोति
,,	२६	रात्रि	रात्रिं
८	२	गन्तं	गन्तुं
६	१४	चक्रेऽसो	चक्रेऽसौ
,,	१८	स्वग	स्वर्ग
१०	१८	यो य	योऽयं
१२	१	चावन्न	चार्वन्न
,,	२४	देवनि	देवान
१६	१	पुरोहिन्त	पुरोहित्त
,,	४	स्वार्थेक	स्वार्थैक
,,	१५	संपसै	संहसै
१८	१	स्वर्ग	स्वर्गं
,,	२	गन्धर्व	गन्धर्व
२०	१४	महान्तं	महान्तं महान्तं
,,	२०	नीतो	नीतौ
,,	२२	चन्त्तस्मिन्काले	चन्द्रतस्मिन्काले
,,	२६	इत्येतरेय	इत्यैतरेय
,,	,,	ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणस्य
२१	६	प्राधिनिध्येन	प्रातिनिध्येन
,,	१३	नीति	निति
,,	२३	वित्तस्य	वित्तरस्य
२२	१	ज्तोतिर	ज्योतिर
,,	१८	प्रतिरन्त्र	प्रतिरन्त
२३	६	चतृर्विंशति	चतुर्विंशति
,,	१२	यितस्तो	वितस्तो
,,	१८	वाद्दुः	स्वाद्दुः
२४	४	सोक	सोम
,,	२३	महान्त	महान्तं
२५	४	कहा	महा
,,	६	यप्रारयन्त	दर्पारयन्त
,,	६	निमित	निर्मित
२६	१२	युधं	युधिं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	१३	गणानुस्सव	गणानुत्सव
,,	२४	मुह्यकर	गुह्यकर
२७	३	हरो	हीरो
,,	२३	घौरा	घोरा
,,	,,	द्रहश्च	द्रुहश्च
,,	,,	योद्धं	योद्धुं
२८	४	कुयव	कुयव
,,	७	सर्वं	सर्वं
,,	९	पवता	पर्वता
२९	५	इमं	इम
,,	८	प्रच्यां	प्राच्यां
,,	१७	वनद्ये	वर्णनद्ये
,,	२०	समन्वें त	समन्वेति
३०	१	हिरण्यावतीम्	हिरण्वतीम्
,,	,,	सुवास्तं	सुवास्तु
,,	१२	राप्यांणम्	राप्यांणाम्
,,	१८	मितिह्वासीत्	भिह्वासीत्
३१	८	मीमाचतुष्टयी	सीमाचतुष्टयी
,,	११	मध्यग	मध्ये
,,	१८	सीमाचतुष्टयं	सीमचतुष्टयं
,,	२५	भारतवर्पे	भारते वर्पे
३२	१५	मारत	भारत
,,	२०	युद्ध	यद्ध
३३	९	म्रवते	म्रुवते
,,	१४	श्रुतव्यांर्थे.	श्रुतर्यनार्थैः
,,	२५	ध्वहन्ति	ध्वंसन्ति
३४	११	फानस्रिने	म्लानस्रिने
,,	२५	स्पष्टः	स्पष्टः
,,	,,	स्पचा	स्पचो
३५	७	विधं	विधं
,,	१०	कथ्यन्नवोषत	कथ्यन्नवोषत
,,	११	चह्वावयितुं	च्यावयितुं
,,	१२	व्यतकयन्	व्यतर्कयन
,,	१६	त्वष्ट	त्वष्टु
,,	२१	यश्चयन	यज्ञन
,,	२३	प्रोतुल्नाह्वाय	प्रोत्नाह्य
३६	६	वाह्नानी	वाह्नानि
,,	२३	शिल्पानी	शिल्पानि
३७	८	प्रवाचने	प्रवाचन
,,	१५	यद्देवा	यद्देव
३८	२४	द्वर्यांची	द्वधीचो
,,	२६	देया	[illegible]
३९	५	स्वर्ग	स्वर्गे
,,	७	परनिष्टि	परिनिष्ठि
,,	१०	देय न	[illegible]
,,	१३	पृष्टां[illegible]	[illegible]
४०	४	[illegible]	[illegible]
,,	१२	[illegible]	[illegible]
,,	१३	[illegible]	[illegible]
,,	१४	[illegible]	[illegible]
४१	१	[illegible]	[illegible]
,,	९	[illegible]	[illegible]
,,	१४	[illegible]	[illegible]
,,	२६	[illegible]	[illegible]
४२	३	[illegible]	[illegible]
,,	४	[illegible]	[illegible]
,,	१०	[illegible]	[illegible]
,,	११	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२०	अह्नमिमा	अह्नामिमा
४३	२	घत्त	भत्त
,,	८	एक	एकं
,,	१३	कंर्त्त	कर्त
,,	१८	समभुभिः	सभृभुभिः
,,	२३	षरिवर्तते	परिवर्तते
,,	२७	अभगन्म	अभवन्
४४	१	निश्चर्भणो	निश्चर्मणो
,,	६	रोयत्पोषं	रायस्पोषं
,,	८	विषश्चित	विपश्चित
,,	१५	घृन	घृत
,,	१६	पीत्रो	पीवो
४५	१२	ऽप्यमासीत्	ऽयमासीत्
,,	१५	वासाकार्षुः	वासानकार्षुः
,,	१८	त्पूर्वनेवात्र	त्पूर्वमेवात्र

❋ तृतीयप्रकरण ❋

—विज्ञानभवनम्—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७	६	वेत्तं	वेत्तुं
,,	२३	स्तप्सर	स्तत्सर
४८	२	तस्य	तस्या
४६	२७	गयः	स्यः
५०	१६	मिपातोत्र	निपातोत्र
,,	१८	यास्तंभावे	थास्तंभावे
५१	३	द्वै	द्वे
,,	१०	सोते	सोम
५२	१	गर्भो	गर्भा
,,	२१	पद्दोर्थाः	पदार्थाः
५३	१५	ऋग्वेद्	ऋग्वेद्
५५	१६	लम्पटेस्येति	लम्पटस्येति
,,	२३	छद्माना	छद्मना
५८	१२	वहव्यः	वह्व्यः
५६	१६	पूर्ण	पूर्णं
,,	२०	सोभगम्	सौभगम्
६०	६	वर्णा	वर्णाः
,,	,,	याजसो	पाजसो
,,	१५	वियाजो	विपाजो
,,	१६	ऋतावरी	ऋतावरी
,,	१६	पुरत्रा	पुरुत्रा
६१	१६	केपुरुषस.	केतुरुषसः
,,	१७	वढुला	वहुला
६२	१०	यूय	यूयं
,,	२३	सषितेव	सवितेव
६३	२	थूयं	यूयं
,,	१८	भुतजामहै	भुनजामहै
६५	२३	तभसाप	तमसाप
,,	२४	विषुरुपे	विपुरूपे
,,	२६	सद्दशींरिद्ु	सद्दशीरिद्ु
६७	८	व	व
,,	११	परीहरणम्	परोहरणम्
,,	२२	मागयामास	मार्गयामास
७०	६	मनुष्त	मनुष्य
७२	१५	इतिमा	इतीमा
,,	२०	विष्टपस्तत्र	विष्टपन्तत्र
,,	२२	धरूपाख्य	धरुणाख्य
७३	४	मही	मही
,,	,,	सर्य्येण	सूर्य्येण

❋ चतुर्थ प्रकरण ❋

— दस्युनिग्रह —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१४	कृष्णा	कृष्ण
,,	१५	नौम्यो	नौभ्यो
,,	२१	च	स
८०	२४	सवर्दुघां	सर्वदुघां
८१	११	स्थिरम्	स्फिरम्
,,	१४	अत्वा	ओत्वा
,,	,,	शेय्या	शेप्या
,,	१७	पत्थते	पत्यते
,,	१८	दसना	दूसना
,,	२०	त्व	त्वं
,,	,,	वधैः	वधैं
,,	२२	प्रतित्वे	प्रापत्वे
८३	१३	गन्य	गव्या
८४	२	न किहि	नकिर्हि
,,	११	पपासो	व्यपासो
,,	१२	यदिन्विन्द्र	यदिन्विन्द्रं
८५	२	ह्रियं	ह्रिदयं
८६	२१	तन्मध्यदिपु	तन्मध्यादिपु
८८	१६	वर्णन्	वर्णम्
९०	१६	वृत्रहा	पृत्रहा
९३	१७	अस्माकेभिन्रूभि	अस्माकेभिनृभि
९४	२३	च	यद्दयोदामा मार्ग च
९५	६	नकुयन्	नर्दर्नन्
९७	६	भवन्तत्मों	भवन्त्वस्मों
,,	९	क्रज	क्रत
९८	२०	शवस्त्यते	शवस्नंन्यते
९९	२	दावा	द्वावा
,,	८	प्रवर्णो	प्रवर्णौ
१००	६	दगिदुसा	दर्गिदुसा
,,	६	दगि	दर्गि
१०२	८	निम्य	निराम्य
,,	१६	साहय्येन	साहाय्येन
,,	२३	वक्षण्यो	वंक्षण्यो
१०३	२	विवर	विवरं
,,	१०	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
१०४	१२	शुष्णा	शुष्ण
,,	२१	निर्हत्य	निर्हत्य
,,	२२	पुरित्ताः	पुरोत्ता
,,	२७	यात्साने	यत्माने
१०५	१२	उग्रोऽक्तनं	उग्रोऽदृनुतं
,,	२७	प्रशासन्	प्रशंसन
१०६	२	मान्वि	मन्वि
१०७	११	मन्द्रः	मन्द्र
,,	१२	जोरदानवे	जीरदानवे
१०८	१७	दल	दलं
११०	३	प्रत्यह्वोपि	प्रत्यह्वापि
,,	११	दुर्गाण्टं	[illegible]

❋ पञ्चम प्रकरण ❋

—:विजयाभिनन्दनम्:—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१११	११	हीर्नविन	[illegible]
११३	६	न	[illegible]
,,	२८	[illegible]	[illegible]
११४	१७	[illegible]	[illegible]
११५	१०	[illegible]	[illegible]
,,	१३	[illegible]	[illegible]
,,	१६	[illegible]	[illegible]
,,	,,	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११७	१७	सूक्तान्य	सूक्तान्या
११८	११	त मै	तस्मै
११९	९	वज्रो	वज्री
,,	११	अहन्नहि	अहन्नहि
१२१	५	आनार्य्यानाम्	आनाय्यानाम्
,,	९	अभिसिध्यो	अभिसिध्मो
१२२	१४	सूर्य	सूर्यं
,,	२१	निरुन्धानो	निरुन्धानो
,,	२७	त्माविथ	त्वमाविथ
१२३	२७	आपवृणो	आपावृणो
१२४	६	श्वघ्नीय	श्वघ्नीव
,,	१४	भंजमानं	ग्रजमानं
१२५	१	वोचम्	वोचम्
१२६	१०	प्रवर्त्त	प्रवत
१२८	१३	यद्दर्हणा	यद् हंणा
,,	२०	नियऽर्सी	नित्यर्सी
,,	२७	पर्वता	पर्वता
१३१	१	अदद्	अदर्द
,,	४	अहिं	अहिं
,,	८	हर्म्य	हर्म्ये,
,,	२२	यद्धनागानुपम	यद्धन्नमानुपम्
१३६	२३	प्रेषित	प्रोषित
,,	२४	दुव्दो	दुद्वो
,,	२५	केन्द्र	चेन्द्र
१३७	६	नेतदुत्कर्षम्	मेतदुत्कर्यम्
,,	९	तत्र	तत्रे
,,	१८	वेवेन्द्र	देवेन्द्र
१३८	१२	मिवेमहे	मिवेमहे
,,	२१	शत्ररिन्द्र	शत्रुरिन्द्र
,,	२३	प्वं	त्वं
१३९	४	विदन्नो	विदन्तो
,,	१७	समद्वाजं	सनद्वाजं
१४०	६	स्यति	स्पति
,,	१४	ग	न
१४३	१२	वं	ध्रुवं
,,	१५	धर्म्मं	धर्म
,,	१६	च्छायथन्	च्छापयत्न
,,	१९	धर्म्म	धर्म
,,	२३	ध्रवं	ध्रुवं.
१४४	२२	समपित:	समीपत:
,,	२६	वाऽथता	वाऽथवा
१४५	१५	तेष्वाद्य	तेष्वाद्यो
,,	२१	शस्त्र	शास्त्र

॥ इतिः ॥